लेखक का निवेदन

इतना कहना है कि इस आयास का उद्गम मेरी श्रद्धा के मानस से है। मानव-इतिहास मे गान्धी के जितनी सर्वाङ्गीण हरियाली मुझे दूसरी जगह नहीं मिली। बस यहीं, हृदय और ज्ञान'को आपस मे लड़ने के बजाय पूरी तरह और व्यापक आधार पर मदद करते देखा। किसी भाग को कम या ज्यादे विकसित नहीं पाया। कमजोरी और ताकत दोनों को महा शक्ति के अमित तेजोमय और मधुर रूप मे देखा। आत्मा और शरीर की ऐसी एक भाषा, जो भाग्य से आज सामने है, कल्पना से भी सुनने में नहीं आई।

इस वरेण्य महामानव ने राम और भरत की देने की घटना को, प्रत्येक पल हरेक परिचय मे आने वाले के साथ निबाहने में कोर-कसर नहीं रक्खी। सत्य के तलवार-धार से रास्ते चलते रहकर हृदय की भाषा का प्रकृत निर्वाह कितना दुष्कर है। भरत के आग्रह को चित्रकूट के व से वापिस अयोध्या भेजना, राजपाट छोडने से कहीं ज्यादा कठिन है। और सीता-त्याग तो दुष्कर घटना है। इतनी वेदना का वडवानल राम-हृदय जैसे नीरधि मे ही रह सकता है। जिस एक दिल मे इतना प्रेम और इतनी वज्र-निर्ममता बस सकें, उससे बड़ा भगवान, आदमी की शकल मे और क्या होगा ?

मेरे चरित्र-नायक का परिवार, हिन्दुस्तान और शायद सारी दुनिया है। बहुत बड़ा कुटुम्बी है यह। इसीलिये इसका प्रेम और निर्ममता व्यापक परीक्षण करते है। राम के रास्ते का यह राहगीर

विना रुके-थके चलने का मार्मिक विशेषज्ञ है। घट-घट में बैठा राम आदमी को जिस रास्ते चलते देखना चाहता है, उसका इतना महान् पथ-प्रदर्शक ऐसा दूसरा कहां मिलेगा ?

भगवान विष्णु का निवास विश्व-हृदय के क्षीर-सागर में है। विश्व-रागिनी रमा उन शेषशाई के पांव पलोटती है। वह, जो विश्व-हृदय के इस महान् सत्य को आंख से देख कर पकड़ले, उस महामहिम प्रेमी को मोहिनी माया उलझाना छोड़कर पूजने लगजाती है। क्योंकि विराट् हृदय के क्षीर-सागर-वासी प्रभु प्रेमदेव, सत्यनारायण के ऐसे मूर्त्त रूप है जिनको मानव पा सकता है, और पाकर उन-जैसा—वही हो सकता है। सत्यनारायण की अर्चा की भाषा अहिंसा है। इन घट-घट-वासी तक पहुँचने की यह अहिंसा नामकी पगडडी, चलने से पहले और थोड़ा चलने तक तलवार-धार जैसी होती है, पर कुछ आगे वढने से इस असि-धार पर स्वर्ग के सुमनों को चादर चढी मिलती है, और तव पथिक को असली सुख मिलने लगता है। कही कहीं वीच मे फूल गायव से हो जाते है लेकिन बलवान और नैष्ठिक राहगीर अग्नि-परीक्षाओ मे प्रभु-कृपा के सहारे पार चला जाता है।

आज सहस्रो वर्ष वाद हमने हमारा अमिताभ पाया है। सौभाग्य है हमारा कि हम इसके समकालीन है। पर क्या हम इस प्राप्ति के पात्र हैं ? अभी तो हमारे रूढि के दुर्ग में हरिजन, परदा और इतनी ज्यादा आर्थिक विपमता जैसी लौह प्राचीरें है। लेकिन पात्रता का निर्णायक तो वह है, जिसने हमको गान्धी दिया। पता नहीं कव आने वाले किस स्वर्गीय युग का यह महान् 'मॉडल' हमे अव मिला है। कमजोर से कमजोर को सपूर्णं तक पहुँचने के सर्वसाधारण के लायक राज-मार्ग को इसने हमारे लिये खोल दिया है। दभ-बल जिस क्षुद्र निर्वलता को देख कर उपेक्षा

े हँसता था, वह हाड-मांस की कमजोरी कैसी अमोघ शक्ति की
ोतस्विनी हो सकती है। हम हिन्दुस्तानियों ने यह आश्चर्य
ेख लिया है। इस महान् आश्चर्य के आविष्कारक—इस महातेज
े नम्र निवेदन को हमारा कोटिशः प्रणाम है।

इस 'मानस' की रचना सेंट्रल जेल जयपुर में हुई। स्वर्गीय
महादेवभाई देसाई और सेठ जमनालाल बजाज ने इस क्षुद्र
ारण को प्रोत्साहन दिया था। श्री देसाई ने तो स्वेच्छा से काव्य
ी भूमिका लिखने की स्वीकृति देदी थी। देश-रत्न डा० राजेन्द्र-
्रसाद और श्रीयुत् घनश्यामदास बिरला ने कृपा का योग
दिया। आचार्य विनोबा भावे और श्रीयुत् श्रीकृष्णदास जाजू ने
काव्य के अंश सुन कर ठीक सलाह दी। लेखक के पूज्य अग्रज
श्री बैजनाथ भगेरिया ने अमित स्नेह दिया। और लिखने की
ेरणा—आवश्यक साहित्य को जेल में भेजना आदि, मेरे आदर-
णीय स्नेही श्री जैनेन्द्रकुमार की कृपा से हुआ। सुहृद् श्री रंगलाल
ामडायत और पन्नालाल कौशिक भानजे चि० बनवारीलाल
ाकरलाल रामगोपाल और भतीजे चि० राधाकृष्ण से मुझे
आवश्यक आत्म-विश्वास का बल मिला। मित्र श्री स्वामी गोविन्ददास
से व्यावहारिक मदद यथेष्ट मिली।

मेरे लिये इन सब कृपालुओं को धन्यवाद देने के बजाय,
उनके कर्ज को स्वीकार कर लेना ज्यादा ठीक है।

चिड़ावा
दीपोत्सवी
संवत् २००२

विनीत—
मातादीन भगेरिया

श्री गान्धी-मानस

(पूर्वार्द्ध)

मंगल-स्तवन

नियत-चक्र-धर विश्व-चक्र के

जयति चक्रवर्त्ती सम्राट !

प्रीति-ज्योति-गति चक्र सूर्य सा

ईति-भीति-रति हरे विराट !

प्रिया-प्रकृति-हित जब प्रभु स्रष्टा बनते नागर कविवर,
कभी युगों मे तब गान्धी सा रचते छन्द, मनोहर।
अगम अगोचर नेति नेति प्रभु उन्हें कहो कैसे जानें ?
जहाँ अधिकतम ज्योतित है वे क्यों न वहीं उनको मानें ?
विपुल विश्व-वपु मे विकार लख करते है विभु नया प्रयोग,
जय सञ्जीवन क्रान्ति-केन्द्र वह जगे हरे जो भव-तन-रोग।

प्राणोदय-हित हम सब सविनय

भरें हृदय में शुभ-श्रद्धा-लय ;

कहें कोटि कण्ठों से निर्भय

जयति महात्मा गान्धी की जय।

श्री गान्धी-मानस

प्रथम सोपान

१

नमो नमो हे मानव-त्राता !
भव में कितना वैभव लाता !
अमर प्रभाती गाते आये,
जीवन ज्योति जगाते आये।
प्रभु ईसू को गोप श्याम को,
शुद्ध बुद्ध गुण-धाम राम को,
भाव मात्र मैंने था जाना,
कभी न भव में सम्भव माना।
साकार किया तुमने उनको,
आधार दिया भूले मनको।

तुम्हें देव हे ! देना भाता,
नहीं तनिक भी लेना आता।
छोड़ा क्या पर तुमने दानी ?
क्या न लिया हे मोहन मानी ?
निधियां तुम्हें खोजतीं सारी,
सुगति उन्हे दो चरखा-धारी।

नमो नमो हे दिव्य भिखारी ! प्रभु मेरे शिव-राम नमो,
हे पनहारे ! सुधा-कलश ले, सदा यहा सुख-धाम रमो।

कहो, कहा से लाये माली,
सदा खिले फूलों की डाली ?
तमसावृत थे धरती-अम्बर,
चमक उठे तुम अमर कलाधर।
बुद्धि-वाद के मद में फँसकर,
मोहानल में स्वय झुलस कर.
मानव आहत-भ्रान्त पडा था,
दिशा-ज्ञान उसका बिछुडा था।
तुम सज्जीवन लेकर आये,
बालारुण से नभ में छाये।
जगती ने नयनाम्बुज खोले,
खग-मृग मीठी वाणी बोले।
हँसी खिली वन-शोभा आली,
भुवन-भुवन फैली हरियाली।

लगी पूजने विश्व-भारती,
आर्द्र कंठ से करी आरती।

नमो नमो बालारुण मोहन! खग कुल के प्रिय गीत सुनो;
देवि भारती! तुम सुमनों के ओस-अर्घ्य के विन्दु चुनो।

नमो शारदे! सुधाभाषिणी!
कलामयी हे चारु हासिनी!
सहज पूत तुलसी-दल देवी!
रहे सदा वे प्रभु-पद-सेवी,
तुम उनके मानस में रमकर,
जाना भूल गई मा! जमकर।
किस विरते यह दास बुलावे?
कैसे तुमको न्योत पठावे?
महा गीत कवियों ने गाये,
मधु वीणा पर तुम्हें सुनाये।
हूं अयोग्य, यदि कहूं अनय यह,
सभी कहेंगे नव अभिनय यह।
क्षमा-विनय उपहास हमारा,
देवि! दया का एक सहारा।
एक बूंद तव मानस-घरसे,
मेरे उर का ऊसर सरसे।

दयामई! स्वीकार करो मा! अर्घ्य-सुमन दल अनुचर का,
झूठा भी विश्वास रहे जो, हूं अयोग्य, पर हूं घर का।

दोष-भरी तुक-बन्दी कोरी,
सभी जगह तुलसी की चोरी।
पर तुलसी की धन्य नकल भी,
पापपूर्ण तो व्यर्थ असल भी।
कौन कहेगा इसको कविता?
इसे मिला पर नायक सविता।
पंकिल रज यह चमक उठेगी,
महातेज से दमक उठेगी।
है प्रसंग यह पुरुषोत्तम का,
पुण्य चरित है पावनतम का।
कौन कहे यह दीपक कैसा?
मृदु प्रकाश जब इसमें ऐसा।
प्रभु-प्रतिमा यह नहीं माधुरी,
घड़ना ही है कला-चातुरी।
टेढ़ी-सीधी भक्ति-कहानी,
काव्य-दोष कब देखे ज्ञानी।

सभय हृदय की श्रद्धाञ्जलि यह, गान्धी बापू भाव धनी,
खोट सभी इस ओर छिपेंगे इस पर्वत की ओट बनी।

चलो, वहाँ अब पाठक प्यारे,
जहाँ प्रकृति ने साज सँवारे।
यह देखो, साबरमति सरिता—
कलरव-मिस रचती है कविता।

निशा रूपसी छोड बिछौना,
खेल रही है खेल सलौना।
एक चन्द्र है, अगणित तारे,
मानो निशिने मोती वारे।
एक चन्द्र, पर बहुत हुये वे,
कोहनूर से निखर गये वे।
भूरि भाग्य सरिता के निर्मल,
चमक रहा नीलम सा आचल।
लहर लहर में हीरक सोहें,
किसे न यह जल-शोभा मोहे?
रत्नमई रत्नाकर—रानी,
कितने मोती कितना पानी!

मलयानिल है पखा झलता, सुरभि सखी का हाथ गहे,
नाच रही है चारु चन्द्रिका, सञ्जीवन—सगीत बहे।

सुनो, सुना यह मीठी वाणी,
अमर राग-सी चिर कल्याणी।
अभी रात तो बीत न पाई,
पर किसने यह गीता गाई?
"वैष्णव जन तो कहते उसको—
पीड पराई होती जिसको"
स्वय निशा ने इसको गाया,
किसने यह सन्देश सुनाया?

आज समय की यह स्वर-लहरी
या पुकार है प्रभु की गहरी ?
कौन कौन यह कौन तपस्वी ?
महा प्राज्ञ यह कौन यशस्वी ?
महाधीर यह तप पुञ्ज सा
तेजोमय पर शान्ति-कुञ्जसा ।

नमो नमो गौरव-गिरि गान्धी ! हे युग के अवतार नमो,
अमर यज्ञके महा विधायक, भारत-प्राणाधार नमो।

यह जो बैठे पलथी मारे
प्यारे बापू यही हमारे ।
अरे इन्होंने ये हैं गान्धी,
जागे में है दुनिया बांधी ।
काता इनने कच्चा धागा
उसे देख पर लोहा भागा ।
अर्थ-शास्त्र को, राज-नीति को,
सत्य, अहिंसा, दया, प्रीति को,
सबको है चरखे में काता,
थाह न इसकी कोई पाता ।
यन्त्र अनोखा है यह चरखा,
सभी दिशा में इसको परखा ।
और कातने—बुनने वाला,
यह रुई का धुनने वाला,

बड़ा विकट है वृद्ध जुलाहा,
कभी न रुकता इसका चाहा।
सीधा ताना सीधा बाना, सोने का संसार बुना;
भीम-काय यन्त्रों के युग में, खादी का व्यापार चुना।

कभी न कुछ भी तन पर पहने,
आया विश्व-व्यथा को सहने।
घुटनों तक की धोती बांधे,
सत्य साधना निशि-दिन साधे।
भारत के अधनंगे राजा!
बजे विश्व में तेरा बाजा।
वस्त्र नहीं यदि कोटि तनों पर,
हुआ तुम्हें क्यों कपड़ा दूभर?
कोटि कोटि यदि भूखे हैं तो,
तुम्हें पीड़ क्यों सूखे हैं तो?
भारत है यदि शोषित भूखा,
बता भूख से तू क्यों सूखा?
महा भूख का भार गहे हो,
अस्थि-मात्र अवशेष रहे हो।
रूखी-सूखी काया नंगी,
स्वयं बने हो प्रभु, तुम भंगी!

व्यथा हलाहल पीते इतना! हे अद्भुत! तुम शंकर हो,
कुछ भी हो, पर वैभव सुख में बापू, बड़े भयंकर हो।

लगी हुई थी दुनिया धन्दे,
नित्य नये रचती थी फन्दे।
दिन दिन वैभव-धन बढता था,
बुद्धि-तेज नभ में चढता था।
नई नई रचना के सुन्दर,
चमक रहे थे शहर मनोहर।
नई नई खोजो के मानी,
बडे बडे शोधक विज्ञानी,
नित्य नये यन्त्रों को रचते,
जीवनभर 'थे शोधक पचते।
शोध-युद्ध में जूझ रहे थे,
उन्हें नये पथ सूझ रहे थे।
अग्नि-वायु को इनने साधा,
विजली की लहरों को बाधा।
तेज चाल के यन्त्र रचाये,
जल-चर नभ-चर यान बनाये।
गन चुम्बि महलों के भीतर, कला-पूर्ण सामान सजे,
वाचार के नये जोश ने, सब अतीत के ध्यान तजे।
नगर नगर में बढा-बढी थी,
शक्ति-प्राप्ति की चढा चढी थी।
मानव को यह बुद्धि मिली जो,
है विकास-वश आप खिली जो-

"क्यों न बुद्धि का फल हम पावें ?
सुख के साधन क्यों न जुटावें ?
बढ़ो बढ़ो प्रतिभा के बलसे,
बढ़े चलो बस जलसे-थलसे।
आगे बढ़ना ध्येय हमारा,
यही ज्ञात है ज्ञेय हमारा।
यही धर्म है, यही कर्म है,
बल का शासन सत्य-मर्म है,
और सभी झगड़े है झूठे,
भाग्य सदा निर्बल के रूठे।
स्वय मदद जो अपनी करता,
प्रभु भी उसकी जेबें भरता"।

यही तर्क कानून बना था, लीलामय की माया से,
बुद्धि-वाद मानव मे झलका, जिस छलिया की छाया से।

नशा राजसी बल-सग्रह का,
कारण बनता है विग्रह का।
बनी विविध विकराल मशीनें,
त्रिविध काम मानव के छीनें।
जो था शासक होने आया,
उसे लौह ने दास बनाया।
काले काले यन्त्र लगाये,
या विनाश के बीज उगाये ?

ऊपर नीचे दायें बायें,
अपने हाथों जाल बिछाये।
विविध माल के मेरु उगल कर;
मानव की सब शान्ति निगल कर,
चिल्लाते यन्त्रों के दानव—
भूख लगी कुछ लारे, मानव !
मनुज-रक्त से भूख मिटेगी,
सुरा-पान से क्लान्ति घटेगी।

लौह-दैत्य के विकट पेट ने, मानव को मजबूर किया;
यन्त्र-शक्ति की क्रूर सुरा ने, उसे नशे में चूर किया।

रुक सकता था कैसे मानव,
घेर रहा था उसको दानव।
हुआ नशे में महा क्रूर वह,
समझा निज को महा शूर वह।
शस्त्र मृत्यु बरसाने वाले,
प्रलय-दृश्य दरशाने वाले।
लगा जोड़ने, भरा जोश में,
पागल था वह विजय-घोष में।
सृजे भयावह बम के गोले,
जिनके रव से धरती डोले।
नील गगन के, जल के, थल के,
भाँति भाँति के अतल-वितल के,

महानाश के वाहन काले
नित बनते थे यान निराले।
कहीं भाप में, कहीं किरण में,
खोज मृत्यु की थी कण-कण में।

प्रभु ईसू के अमर मार्ग का, जो था कभी बटोही,
खोज रहा था मृत्यु-नगर को, वही पथिक निरमोही।

काँप रही थी धरती थर थर,
डोल रहा था ऊपर अम्बर,
महा सिन्धु का हृदय विकल था,
दशों दिशा में कालानल था।
महारुद्र का भैरव-नर्त्तन,
प्रलय-काल का पुनरावर्त्तन।
किलक किलक कर दैत्य-यन्त्र वे,
छोड रहे थे मृत्यु-मन्त्र वे।
उजड रहे थे नगर सलौने,
टूट रहे थे मनुज खिलौने।
महा दनुज था चहुँ दिशि छाया,
मृत्यु-श्रोत था अगणित लाया।
चिर वैरी वह प्रभु अनुचर का,
शोणित पीने आया नर का।
कोटि कोटि का रक्त बहा कर,
मानो पिछला वैर चुका कर—

आज तनिक शैतान सफल हो, मृत्यु-खेल में फूला था;
प्रभुता-मद के शैल-शिखर पर, सुरा-पान में भूला था।

वैभव-गिरि के हेम-भवन में,
विद्युत मणि के सिंहासन में,
दानव-पति शैतान सँवर कर,
भव्य वेष में महा शक्ति-धर—
बैठा था, कुछ बोल रहा था,
मन की गाठें खोल रहा था।
महामोद था उसे विजय का,
भय न रहा था अरुणोदय का।
नयन मदिर थे सुरा-पान से,
झूम रहा था विजय-गान से।
ऋद्धि-सिद्धि का तो वह स्वामी,
विभव-कोष है उसका नामी।
जिस पर दुनिया सब कुछ खोती,
पत्थर जिससे होते मोती,
उस पानी की कदर यहां क्या?
बहते है दरिया के दरिया!

विभव कहे जिस धनको दुनिया, वह इनको कंकर पत्थर,
दानवेश का साज देख कर, खा जाते ऋषि-मुनि चक्कर।

किरण-झालरें, मुक्ता-मणियां,
तरल ज्योति की गूथी तणियां,

रग विरगी कणि की लड़िया,
सर प्रकाश की अगणित कड़िया,
कनक-किरण का सदन सलौना,
कुछ वेसा सन्ध्या का सोना,
इन्द्र-धनुष से मिलते जुलते,
रग पुते किरणों के खिलते।
अलकार—आभूषण सारे,
धातु तत्व थे उनके न्यारे,
महा ज्योति का सार भरा था,
किरण-कोष कितना विखरा था!
ज्योति-उत्स ये वहा उछलते,
इच्छा से सव दृश्य वदलते।
रति सी सुन्दर मधु वालायें,
काम-कुसुम की नव मालायें—
रूप-राज्य की ये प्रमदायें, हँस हँस चँवर डुलाती थीं;
लचकीले अंगों की शोभा, गति मे कला मिलाती थी।
लोभादिक सामन्त सजीले,
महावीर मानी गरवीले,
सजे हुये थे वीर-वस्त्र में,
अपने अपने कवच-शस्त्र में,
वीरासन से सव वैठे थे,
शौर्य-दभ में वे ऐंठे थे।

बाजों की झनकार नसीली,
स्वर-व्रहार थी तीव्र सुरीली,
चन्द्र-किशोरी, थिरक-थिरक कर,
घाल रही थी सुन्दर घूमर।
केलि-कली—वह किरण-कुमारी—
दानव-पति की अतिशय प्यारी,
दिगम्बरा वह सुरा ढुला कर,
वन-शोभा की सुरभि मिला कर,
तमसाधिप को पिला रही थी,
नशा रसा में घुला रही थी।

सुरा पात्र अब दानव को दे, विश्व-कामना मुसकाई,
फिर मुग्धा के चन्द्र वदन पर, झीनी अरुणाभा छाई।

देख मुग्ध हो, दानव बोला—
"धन्य मदिर मुखडा यह भोला।
विश्व-मोहिनी, रूप-आगरी,
सुनो सुनो हे नवल नागरी,
रूपसि! अपने मद-दोनों को—
—दोनों नयनो के कोनों को—
तिरछा करके इसमें पिलाओ,
एक बून्द नीचे ढुरकाओ।
विजयोत्सव है आज हमारा,
बहे सुरा ी मादक धारा।

मानव आज हमारा चेरा,
मर्त्य-लोक सब मेरा डेरा।
एक बून्द ले, विभव-सार से
पिला मनुज को लाड-प्यार से,
आज जकड कर बांध दिया है,
लोभ-मोह से अवश किया है।
तीव्र नशे में मस्त हुआ नर-व्यस्त रक्त की होली में,
नर मुण्डों को काट काट कर, डाल रहा इस झोली में।
कभी न धन से बुझने वाली,
महाप्यास मानव ने पाली।
तनिक समर से श्रान्त हुआ अब,
इसी लिये कुछ भ्रान्त हुआ अब।
प्रमदे! उस पर दया-दृष्टि हो,
चल चितवन की सरस सृष्टि हो।
अगर थकावट नहीं मिटेगी,
युद्ध-क्लान्ति यदि नहीं हटेगी,
श्रद्धा उसकी हट जायेगी,
भक्ति हमारी घट जायेगी।
देवि! दीन पर दया करो अब,
उधर हेर कर खेद हरो सब।
एक बून्द नीचे ढुरकाओ,
काम-कला की झलक दिखाओ;

फिर मेरा सामन्त मनोभव—
रचा करेगा नित नव उत्सव ।

मोहिनि ! फिर क्या छोड सकेगा, यह मानव नादान हमें ?
लोभ-काम मिल पहरा देंगे, कभी न रति के गान थमे ।

विजयी मानव, विजित नरो को–
लूट लूट कर भरे घरों को,
उन्हें चूस कर महल रचेगा,
क्रान्ति-कला का कीच मचेगा ।
प्रेयसि ! तेरी अद्भुत चितवन,
बँध जायेंगे जन-मन-लोचन ।
विश्व-कामने ! अपना तन-मन,
तुझे करेगा मानव अर्पन ।
रह न सकेगी दिल में धडकन,
उड जायेगी सारी अड़चन ।
पट मोटा जो सदा चमकता—
माया से जो रहे दमकता,
नर-उर के अन्तर पर पड कर,
ढक लेगा वह आगे अड कर;
फिर विवेक का भय न रहेगा,
नर नित मेरे चरण गहेगा ।

प्रमदा, मदिरा, रमण कला से, काम-महल वह भर लेगा;
विजय-गर्व में विजित राष्ट्र की, सौख्य-शान्ति सब हर लेगा ।

सुमन, सुरभि, मदिरा, मधु, उबटन,
कुंज, विटप, बल्लरी, वन, उपवन,
चारु, चन्द्रिका, उषा-अरुणिमा,
सन्ध्या-सुषमा, प्रकृति-मधुरिमा,
नृत्य-कला, नव चित्र-चातुरी,
काव्य-कला, संगीत-माधुरी,
सब चीजों में मोह भरेगा,
पूजा मेरी नित्य करेगा।
फिर प्रभुता का दंभ बढ़ेगा,
राज-वंश का नशा चढ़ेगा,
स्वयं सभ्य अरु उच्च बनेगा,
शासित को नित नीच गिनेगा।
ज्यों ज्यों रुचि का मान बढ़ेगा,
त्यों शासित का रक्त कढ़ेगा।
सभी भाँति शासित का शोषण,
समझेगा वह अपना पोषण।
भूपति होकर कृषक-वर्ग को नाना विधि से पीसेगा,
धन क्या, उनके थके वदन का रक्त मांस भी चूसेगा।
कृषक पिलेगा बारह महिने,
झुकी कमर पर चिथड़े पहिने,
पूरा पेट न कभी भरेगा,
लौह-दण्ड से सदा डरेगा।

शासक फिर व्यापार करेगा,
शासित का सब विभव हरेगा।
राज्य करेगा भेद-नीति से,
लूटेगा पर सभ्य रीति से।
अधभूखा अधनंगा शासित—
दलित पतित नर-पशु सा त्रासित—
कर देगा निज तन-मन-यौवन
दुराचार मदिरा को अर्पन।
एक पेट का पशू बनेगा,
इधर दूसरा विभव चुनेगा।
एक स्वार्थ का कुचला पुतला,
और दूसरा दंभी उजला।
उभय पक्ष में भक्ति हमारी, प्रति दिन बढती जायेगी;
इधर ईर्ष्या द्वेष आदि की, फौजें चढती आयेंगी।
उधर वासना नाच करेगी,
इधर भूख निज ताल भरेगी।
महल बनेंगे उधर अनोखे,
मदन-भवन में मणि-मय चोखे,
इधर दलित नर रुदन करेंगे,
टूटे छप्पर आह भरेंगे।
इधर ग्रीष्म वरदान बनेगा,
बिना वस्त्र जब काम चलेगा,

वे गर्मी में सैर करेंगे—
गिरि-शृंगों पर जा विचरेंगे।
शिशिर पड़े जब तीखा पाला,
सूखे इनका जीवन-नाला।
ये शरदी में ठिठुर ठिठुर कर,
बर्फ बनेंगे जीवित मर कर।
जब ये हिम से बचने भागे,
रोते बालक रोटी मांगें।
आहत उर की इन आहों से, जाडे उनके गरम बनें,
इनकी हड्डी के ईन्धन से, उनके घर आराम बने।
ये अछूत है—महा शूद्र हैं,
वे पवित्र हैं—राजपुत्र हैं।
ये असभ्य बदकार घिनौने,
देव-पुत्र वे नरपति छौने।
उन्हें सभ्यता संस्कृति सूझे—
कला-ज्ञान में रुचि से रीझे।
ये शिक्षा-आचार सुधारें,
दिन-भर अपना शील सँवारें,
याकि शीश पर मल ढो लावें—
जूठन खाकर भूख मिटावे।
विजित जाति में, विजई नर में,
देश देश में फिर, घर घर में,

इसी तरह जब भेद बढेगा,
प्रतिहिंसा का जोश चढेगा।
बस बदले का भाव भरेगा,
पाप-पुण्य से नर न डरेगा।

नष्ट हृदय के लेन-देन को, मानव-पशु बिल्कुल भूले;
मेरी डाली उलझन में फँस, माया का झूला झूलें।

मानव मेरी शिक्षा पाकर,
बन्धन की यह भिक्षा खाकर,
शान्ति-नाम में क्रान्ति करेगा-
शस्त्र-युद्ध में पुनः मरेगा।
परंपरा यह लगी रहेगी,
रक्त पिपासा जगी दहेगी।
शस्त्रों को झनकार रहेगी,
सदा खून की धार बहेगी।
'गाली की प्रतिध्वनि है गाली'
शिक्षा यह मानव ने पाली।
'हिंसा ही हिंसा का बदला
मार काट से डरती अबला'
यह सीधा सिद्धान्त मनोहर,
मन्त्र यही है मेरा सुन्दर,
इसी मन्त्र के महा जाप से-
विश्व तपेगा महाताप से।

ये जितने पूजा के मन्दिर, गिरजा मस्जिद ये सारे,
पुण्य तीर्थ नर जिनको कहता, तीर्थ हमारे वे प्यारे।

वही हमारी वैभव-माया
पूजा में भी उसे विठाया।
ये मठधारी धर्म पुरोहित,
ये भी नर का पीते लोहित।
लोक-धर्म के ये हैं शासक,
मानवता के पूरे त्रासक।
भूरि विभव की मदिरा पीते,
मोह वासना में हैं जीते।
धर्म-नाम दे भेद पालते,
महा फूट के वीज डालते।
विविध मतों की देकर शिक्षा.
करते निज वैभव की रक्षा।
बजा हमारी जय का डंका,
अब न रही है कुछ भी शंका"।
अरे अरे यह "दानव बोला—
"कैसे सहसा आसन डोला!"

"देखूँ, कैसा विघ्न हुआ है" उठा वेग मे यों कह कर;
ज्योति कवच था झलझल करता, फड़क रहा था तड़ित-अधर।

३

असुर-राज जब व्यस्त इधर था,
अमर-नगर का दृश्य मधुर था।
मधु-प्रभात सी सुखमय वेला—
शीत-घाम का कुछ न झमेला।
हरित भूमि की छटा निराली,
सजी प्रकृति की मंगल-थाली।
विविध वर्ण फूलों के गहने,
हरे रग की साडी पहने,
वेल-बूटिया कढ़ी हुई थीं;
भक्ति-भावना बढ़ी हुई थीं।
रोज आरती प्रकृति उतारे,
प्रभु-स्वागत-हित साज सँवारे।
मन्द गन्ध कुसुमों की क्यारी,
पारिजात-फुलवारी न्यारी,
हरी दूब थी कितनी कोमल!
विछी हुई थी मानो मखमल।

लता कुञ्ज से भवन बने थे, सभी दृश्य था शान्तिभरा;
अमरलोक का अन्तर बाहर, था शैशव सा सरस हरा।

सुमन-सुरभि में, खग-कलरव में,
मधु-वन में, तुतले शैशव में,
विश्व-गिरा निज गीत सुनाती,
अमर राग की झलक दिखाती।

कूज कूज कर कोयल काली,
दुरकाती है रस की प्याली।
ये छोटे हरिणों के छौने,
अजा लोमड़ी शशक सलौने,
हरी घास पर धूम मचाते,
मृग-पति को हैं खूब चिढ़ाते।
यहा प्रकृति ही हाट लगाती,
मीठे मेवे फल उपजाती।
पीने को सरिता का पानी,
यहां न धन की खैंचा-तानी।
सहज भाव से देकर हंसना,
सदा स्नेह सरसाती रसना।

लेकर देना, देकर लेना, जंगल का कानून नहीं;
भरा यहा के प्रेम-राज्य में—जीवन का संगीत सही।

सुर-बालायें बाग सींचतीं,
मानो श्रम से स्वास्थ्य खींचतीं।
कठिन कार्य तरुणों को प्यारे,
यहा न श्रम से कोई हारे।
खिले कमल से नागर मानी—
सभी यहा प्राणों के दानी।
अपने अपने योग्य कर्म में,
व्यस्त रहें सब देश-धर्म में।

श्रम करना व्यापार यहा का.
अमित स्नेह आधार यहा का।
विविध भाति से खेलें बालक,
—क्रीडा-गृह के पटु सचालक—
खेल-कूद मे नाच-गान मे,
मुदित रहें मिल स्नेह-दान में।
सब की खातिर पुष्कल भोजन,
अपनेपन का यहा न बन्धन।

कल की चिन्ता नही किसी को, सभी यहा निज काम करें।
फल निर्णय का या संग्रह का, नहीं शीश पर भार धरें।

यहा प्रेम को अमरित कहते,
और उसी के दरिया बहते।
इसी प्रेम से अमर हुये सुर,
इससे होता मृत्युंजय नर।
हवा यहा की स्नेह भरी है,
प्रीतिमई सब भूमि हरी है।
लाड-प्यार के झरने झरते,
कण कण में सजीवन भरते।
स्नेह-सनी चिडियो की बोली,
मानो मधु में मिश्री घोली।
कल किशलय के झुरमुट कोमल,
मन्द वायु की मीठी हल चल।

विहग यहाँ निज नीड बनावें,
हिलमिल झूलें और झुलावें।
व्याध-बाण की बात नहीं है,
यहा मधुप को रात नहीं है।
अन्तर बाहर बिखर रही है ज्योति प्रेम की कण-कण मे,
यहा किसी को खेद न होता तन मन धन के अर्पण मे।
वेद-विज्ञ बहु ऋषि मुनि ध्यानी,
तपोधनी वे त्रिभुवन ज्ञानी,
वे भी शिशु से सरल हृदय हैं,
जटा जटिल पर तरल सदय हैं।
ज्ञान वृद्ध भी, रहें अबुध से,
सभी यहा शिशु शुद्ध बुद्ध से।
महा ज्ञान की सहज क्रिया यह,
याकि अज्ञ की दिनचर्या यह?
रीति यहा की यह है कैसी!
मूर्ख-राज्य में होती जैसी।
यहा न योद्धा पडित—मानी,
शूर, सभ्य, सस्कृत या ज्ञानी।
अपने घर में वैभव भरना,
बुद्धि-शक्ति से पर—धन हरना,
या निज रुचि का मान, बढाना,
शील कला का दभ दिखाना—

छल महत्व की इन बातों में, यहा न मानें सार जरा:
इस अमरों के ऋतु-लोक मे कनक मान है साफ गिरा।

श्रम करके नित खाना-पीना,
हसना-गाना, हिलमिल जीना,
मौन-भाव में तन्मय होना,
प्रभु-चिन्तन में मन को खोना
ला ला कर सामान निराले—
यहा न जन जडते हैं ताले।
यहा न कोई बोझ बढाता,
भूल न मन की शान्ति गॅवाता।
मोती-पत्थर लाकर धरना,
फिर उनकी रक्षा में मरना,
स्वामी होना, सेवक करना,
प्रभुता के कीचड में गिरना
मान-प्रतिष्ठा, महत्कामना;
शस्त्र-वस्त्र का कठिन सामना,
मलिन वासना, ममता, माया
झूठे सुख की झूठी छाया।

एक पीठ पर भार भयङ्कर, क्यों न धैर्य मन खो देगा?
बहुत पेट की यह गठरी ही, बहुत इसे जो ढोलेगा।

Gold standard

बोझ पीठ पर जब बढ जाता,
उसे न प्रभु का गान सुहाता।
महा भार से दिल दब जाता,
बात बात पर मन झुँझलाता।
पथिक-इष्ट है हलका रहना,
यही यहा अमरो का कहना।
जिसको हम सब कहें अयाना,
अमर-लोक में वही सयाना।
यहा बुद्धि से पेट न भरते,
अत• नहीं वे पर-धन हरते।
सभी यहा सेवा के दानी,
यहा न स्वामी ज्ञानी-मानी।
काम हाथ का रोटी खाना,
नहीं बुद्धि का काम कमाना।
सत्य-शोध-हित बुद्धि मिली है,
विश्व-ज्ञान की कली खिली है।

स्थूल पेट की सेवा खातिर, प्रभु ने सब को हाथ दिये,
जब विवेक से प्रतिविम्बित को, दिल-दर्पण को साथ लिये।

जो सुमनों का सुभग चितेरा,
वन-शोभा मे करे बसेरा,
जो प्राची पर रग रचाता,
अरुण उपा की झलक दिखाता,

जो शुक पिक के स्वर में बसता,
बालक के मुखड़े पर हँसता,
जो त्रिभुवन में सुरभि बसाता,
मलय-वायु ऋतु-पति को लाता,
जो सरिता झरनो में झरता,
अमर शहीदो के मिस मरता,
जो रमणी के मन को खोता,
जननी के आचल में सोता,
जिसके बल पर विश्व टिका है,
मानवता का नाश रुका है,
जो विराट के पथ पर बढता,
सदा 'क्रास' पर हँसता चढता,

महा-महिम उन प्रेम-देव की, यहा मधुर वशी बजती,
शान्ति, सरलता और भारती, कभी न सुर-पुर को तजती।

ये जो बैठे नदी किनारे,
सौम्य तपस्वी प्रभु के प्यारे,
लिये मेमना एक गोद में,
बैठे है जो महा मोद में!
तृण के अकुर उसे खिलाते,
धीरे से है पीठ खुजाते।
प्रभु ईसू हैं ये ही भाई,
जिनने जग की कीर्ति बढाई।

जब मानव को दिशा-भ्रान्ति थी,
विमुख मार्ग की कठिन श्रान्ति थी,
अमृत-मार्ग पर 'क्रास' लगाया,
नर को प्रभु का पथ दिखलाया।
प्रभु ईसू से थोड़े हट कर
महा सिद्ध जा बैठे डट कर,
दाढ़ी वाले और मनस्वी,
बुद्धि मान गुणवान यशस्वी—
अरब देश के पैगम्बर थे, जिनने नर को ज्ञान दिया,
कुफ़्र छुड़ाया, ऐक्य सिखाया, निर्गुण का ईमान दिया।
दोनों ही थे मौन भाव में,
प्रभु-चिन्तन के मग्न-भाव में।
पर दोनों ही चौंके सहसा,
विघ्न हुआ यह क्षण में कैसा।
आर्द्र कंठ से ईसू बोले—
"बधिक रहे ये कैसे भोले?
अस्त हुआ फिर मर्त्य-लोक है,
पुनः विश्व में भरा शोक है।
विश्व-वायु ने यह क्या गाया?
यह कैसा सन्देश सुनाया?
घर घर में है क्रन्दन फैला,
हुआ रसा का आङ्गण मैला।

इधर खडा पीड़ित चिल्लाता,
उधर क्रुद्ध शासक झल्लाता।
रोता शोपित दलित पतित नर,
उधर दंभ में खडा दण्डधर।

उमड रही हैं घोर घटाएं, प्रभुवर, भव पर दया करो,
मानव की मेधा है थोडी, दीन जान कर क्लेश हरो।

तुझे हुआ क्या हाय ईसाई,
विजय-गर्व में बना कसाई।
हाय, 'क्रास' को लिये डोलता,
और जगत में ज़हर घोलता।
व्यर्थ सभी ये बम के गोले,
इन्हें दैत्य सा लेकर डोले।
विश्व-हृदय में पडे फफोले,
भडके प्रतिहिंसा के शोले।
मृत्यु-द्वार क्यों मानव खोले?
अरे विजय यह झूठी भोले।
दानव ने है तुझे हराया,
जीत नहीं यह उसकी माया।
शासित को क्यों बहुत दबाता,
अपने जाने रोप जमाता।
विश्व-शान्ति को क्यों खोता है?
बीज क्रान्ति के क्यों बोता है?

मेरे पर्वत के प्रवचन को, फसा, भूलकर, नर चंचल,
इस माया के कनक कोट मे—भीतर है भीषण दलदल।

एक तुम्हारा भूला भाई,
जिसने दिल की शान्ति गवाई,
दानव ने देकर के झासा,
जिसके भोले मन को फासा,
अगर तुम्हे वह बहुत सतावे,
अपना निर्बल हृदय दिखावे,
विनय करो तुम उसकी खातिर
प्रभु-वियोग में वह अति आतुर।
उलझा है वह महा मोह मे
उसे न छोडो क्षणिक क्षोह मे।
उस मोहित को हृदय लगाओ,
उस पर सारा स्नेह लुटाओ।
अन्तर उसका धुल जावेगा,
वही स्वय फिर पछतावेगा।
व्यापक प्रभु की सुधि जब आवे,
परम मोद मे मन भर जावे।

यही तथ्य त्रिभुवन का जीवन भर कर पी, इसका प्याला
प्रणाधिक की पुण्य प्रभा से हो अन्तर में उजियाला ?

इस गीता की ध्वनि जब छाई
आधी दुनिया बनी इसाई।

अब तो धरती स्वर्ग बनेगी,
माया छिपकर शीष धुनेगी.
इसी हर्ष में मैं था फूला,
उधर दनुज ने डाला झूला।
कहां गया वह दृश्य मनोहर ?
कहा छिपी वह शोभा सुखकर ?
कहा भ्रमर, ऋतुराज तुम्हारा ?
कोयल, तेरा सरस सहारा ?
प्राची, तेरा पट क्यो सूना ?
अरुण रत्न है आंचल ऊना ?
महा तमस मण्डराता आता,
निविड तिमिर है नभ में छाता।
चादर पर चादर है काली
ला ला कर प्रेतो ने डाली।

नटवर प्रभु ! तेरी लीला का ओर छोर क्या कहीं नहीं ?
दानवेश की माया में भी क्रीड़ा तेरी फैल रही।

यह सुन बोले यो पैगम्बर—
"सचमुच बिलकुल पागल है नर।
जगत–पिता का प्रेम भुलाया,
अपना सब ईमान लुटाया।
प्रेम—काव्य—पूर्वार्द्ध अहिंसा,
सीधी मेरी श्रद्धा—शिक्षा।

सरल मंत्र था मैंने साधा,
नहीं विघ्न की थी कुछ बाधा,
उसे मुसलमां ! तैंने छोड़ा,
प्रभु चरणों से मुँह को मोड़ा।
भेद-भाव में ज्ञान कहां है?
पशु-बलि में बलिदान कहां है?
कहां कुफ्र की यह कुरबानी?
यह तो नरकी है नादानी।
ऊपर से अल्लाहो अकबर,
फूट दम्भ की भरली अन्दर।
धर्म खुदाई खिदमत करना, प्रेम पताका फहराना;
ग़ाफिल को इस्लाम सिखाना, एक पंक्ति में लेआना।
अलगीयत को जड़से खोना।
एक पाक तसबीह पिरोना।
व्यक्ति-वाद का गर्व घटाना।
विभु विराट का रूप दिखाना।
मोह दम्भ की बलि देने से,
प्रभु-चरणों की रज लेने से,
मंजिल सुख से तै हो जाती,
आधि व्याधियां निकट न आतीं।
इसे भूल कर नर है लड़ता,
झूठे मजहब पर है अड़ता।

आपस में लड रक्त बहाना !
धर्म-नाम पर धूम मचाना !
झगडे ने कब धर्म बढाया ?
यह कुमन्त्र कह, किससे पाया ?
सीचो इसको स्नेह-सलिल से,
तभी धर्म का बिरवा बिलसे ।
बढने दे नर, इस तरुवर को मिले छांह अरु मीठे फल;
हाय ! अभी से पशु सा इसके चरता क्यों पल्लव कोमल ?
यों कह उनने मौन गहा था,
अद्भुत सुख का स्रोत बहा था,
नबी मग्न थे सुधा-स्राव में,
नयन मुंदे अब भक्ति-भाव में ।
बैठ गये वे घुटनों के बल,
प्रभु-अर्चा में होकर निश्चल ।
पारिजात की सौरभ लाकर,
किया वायु ने स्वागत आकर ।
इन नबियों की मधुमय वानी,
इन मेघों का मीठा पानी,
स्वाति-बुन्द ये जब जब आतीं,
गिरा-चातकी चुनती जाती ।
धीरे से फिर ईसू बोले—
—सुधा-कोष वाणी ने खोले—

"पशु ही यदि यह मानव होता,
तो न कभी मैं चिन्ता ढोता

ईश-कृपा-वश भव विकास से, मानव को है बुद्धि मिली;
नन्दन-वन की मधुर कली यह, मन-उपवन में आप खिली।

मिला उसे फिर दिल का स्पन्दन,
पर-पीड़ा का प्रिय संवेदन।
अलग-अलग ये दिल के मोती,
आब एकसी इनमें होती।
स्नेह-सूत्र में गूँथ सजाना,
हिलमिल इनका हार बनाना,
यही हृदय का इङ्गित होता,
भेद-भाव संवेदन खोता।
यही एकता बुद्धि सिखाती,
प्रभु से जन का योग मिलाती।
इसी लिये है धर्म अहिंसा,
दिव्य ऐक्य की सुन्दर शिक्षा।
हिंस्र भाव जब पशु में आता,
पेट भरे पीछे मिट जाता।
हिंसा उसका ध्येय नहीं है,
क्षुधा उसे तो पेल रही है।

व्याघ्र-भेड़िये हिंस्र जन्तु ये, कभी नहीं हिंसा करते;
पर-पीड़ा का ज्ञान नहीं, ये, उदर-मात्र अपना भरते।

पर मानव जब बुद्धि लगाता,
भीषण हिंसा—यज्ञ रचाता।
अमरों की यह शक्ति दुधारी,
तीव्र बुद्धि की मार करारी।
डोल उठे त्रिभुवन का आसन,
अगर बुद्धि का बिगड़े शासन।
इस कालों की क्रूर भूल से,
महा रुद्र की प्रखर शूल से,
जग मे हाहाकार मचा है,
केवल अत्याचार बचा है।
अग्नि-शिखाये धधक उठी हैं,
प्रलय-ज्वाल सी भभक उठी है।
नर-मुण्डों का बना हिमाचल,
मरें-कटें सब अतल-वितल-दल।
अगर भूख होती तो मिटती,
पर न बुद्धि की तृष्णा घटती।

ज्योति झांकती जिसमें प्रभु की, उसके बल की कौन कथा?
उसी बुद्धि से हिंसा करना, यही जगत की कठिन व्यथा।

कोटि कोटि फूलों को मल कर,
आशाओं के बाग कुचल कर,
मनुज बिन्दु भर इत्र बनाता,
घ्राणेन्द्रिय की प्यास बुझाता।

इतने ही से नहीं मानता,
निल्य नये हठ मनुज ठानता।
कुचल काट कर, विजई बनता,
पुनः विजित को प्रतिदिन धुनता।
कभी न उसको मरने देता,
सास न सुख से भरने देता।
कोटि कोटि को दास बनाता,
सुख-विलास से नहीं अघाता।
शासित का सब मास नोच कर.
निर्बल रखता नीति सोच कर,
नहीं आत्म-बल रहने देता,
उसे न प्रभु-पद गहने देता।

भाति भाति की नीति सुरा से, शासित्त को पागल रखता;
उसके दिल का खून जला कर, उस प्रकाश का सुख चखता।

शासित पर सुख-सेज बिछाता,
क्यो न मनुज तू आज लजाता ?
बांध बाध कर मन्त्र-जाल में,
भर देता है भूस खाल मे।
हृदय मसल कर हाय बिधाता!
मानव को 'मैशीन' बनाता।
सारा सम्भ्रम मान मिटाता,
देश-द्रोह का पाप कराता।

कहीं किसी में, जलमें-थलमें,
अपने मनमें या प्रभु-बल में—
निष्ठा उसे न रखने देता,
शासित का सब सबल लेता।
बहुत धान शासित उपजाता
पर वह उतना लेने पाता—
जितने से वह मर न सके जो,
कभी पेट भी भर न सके जो।

शोषित श्रम के रक्त-तार से, कपड़ा ढेरों बुनवाता,
श्रमिकों को अधनङ्गा रखता, जिनसे करघे चलवाता।

भाई भाई को भिडवाता,
उल्टे-सीधे पाठ पढाता।
शासित का इतिहास मिटाता,
संस्कृति, भाषा, वेष हटाता।
अपना गौरव-गान सुनाता,
सब नकली इतिहास बनाता।
नकल जयी की शासित करता,
गला घोंट कर जेबें भरता।
जो स्वेच्छा से गौरव खोता,
दास वही विश्वासी होता।
पीठ ठोंक कर ऐसे नर की,
नकल सिखाता अपने घरकी।

ऐसों को हुक्काम बनाता,
उनसे अत्याचार कराता।
ठाठ बाठ निज कायम रखता,
विभव दम्भ के सेवे चखता।
मार-पीट कर दास बनाना, पाप यही है बहुत बड़ा;
हाय! पाप के किस गड्ढे में मानव रे तू, कूद पड़ा!
भेद-नीति के जाल जुटा कर,
नैतिक बल का ज्ञान घटा कर,
नर का भीषण पतन किया है,
सरल हृदय को गरल दिया है।
स्वेच्छा से नर करे गुलामी—
राजी-राजी भरे सलामी!
सहज बात डर कर के गिरना,
किन्तु, अहित राजी से करना—
यह नैसर्गिक धर्म नहीं है,
जीवित नर का कर्म नहीं है।
कैसा निर्मम त्रास दिया है?
आत्म-तेज का ह्रास किया है।
रक्त शोष कर, दास बना कर,
कुटिल क्रूर जय-घोष सुना कर,
अरे निठुर! क्या तू न थका है?
अभी न निर्दय! हाथ रुका है?

दानवेश के पाप कर्म का, क्यों बनता है तू साक्षी ?
तेरी नय्या फँसी भवर में, डूबेगी गाफिल माँझी।

विभव-मद्य का पान कराया,
तुझे दनुज ने बहुत गिराया !
शासित नर को व्यर्थ डाटना,
है अपना ही गला काटना।
अरे ! भूल मत झूठे विजई,
क्षमा मांगले होकर विनई।
क्षमा-सिन्धु वे क्षमा करेंगे,
अगति-बन्धु सब कलुष हरेंगे।
जब तू पश्चात्ताप करेगा,
अपने मन को खोल धरेगा,
नयन-थाल में मोती भरके,
चरण गहेगा जब हरिहर के।
एक दृष्टि में पीडा भागे,
मन मे सच्ची व्रीडा जागे।
खिले फूल सा हलका होकर
जागा हो तू जैसे सोकर—

जैसे रवि की पुण्य किरण से, पद्म कोष है खिल जाता,
वैसे प्रभु की नख-ज्योति से, पूर्ण-तोष है मिल जाता।

पर तुझको तो नशा चढा है,
झूठी जय का जोश बढा है।

मानव ! तुझको हाय हुआ क्या ?
कहा गई वह तेरी प्रज्ञा ?
फिर घन कब जीवन बरसेगा ?
कब धरती का पट सरसेगा ?
कब होगा वह सरस सवेरा ?
क्यों बढता यह गहन अँधेरा ?
"इसी लिये तो, गहन अँधेरा—
ताकि अधिक हो सरस सवेरा"
किसने यह उद्बोधन गाया ?
सहसा मधु का घट ढुरकाया
मेघ-घटा में दामिनि दमकी
या चपला-मिस आशा चमकी ?
अमा-निशा सन्देशा लाई,
शुक्ल-पक्ष की आशा आई ।

कहां पास में बजी भैरवी, प्राणों में करुणा भरती ?
आर्द्र-करुण झनकार सुरीली, कोयल को बेसुध करती ।

लो, ये आये ज्ञान—गुण-कर—
शुद्ध बुद्ध सुख-राशि सुधाधर ।
मृग-शावक अरु शशक संग थे,
भावुक प्रभु के अजब ढग थे ।
इस दर्शन से दूषण भागे,
आखों की भी किस्मत जागे ।

तेजस्वी अमिताभ प्रभाकर,
मार-मान-मर्दन में शंकर।
सौम्य ज्योति थी खिली वदन पर,
ज्यों प्रभात की छटा गगन पर।
पहुंचे जब यह निकट सुदर्शन,
हुआ परस्पर मृदु अभिवादन।
बैठ गये फिर वहीं घास पर,
त्रिभुवन के ये तीन कलाधर।
तीनों ने था अमृत गाया,
भाव-विभव भव में बरसाया।
तीनों ने धरती का आंचल-स्नेह-सलिल से साफ किया;
मानव की मेधा को धोया, नैतिकता को मान दिया।
तीनों की थी शोभा न्यारी,
इन्हें देख कर वाणी हारी।
सुध-बुध भूली देख सुघरता,
तजी गिरा ने सहज मुखरता।
धरा धन्य थी इनको पाकर,
कितना रस ढुरकाया जाकर!
आगण आंगण बाग लगाये,
घर घर में सुख-श्रोत बहाये।
संवेदन का निर्मल जल भर,
मरु-देशों में रचे सरोवर।

पुण्य प्रेम से हृदय सींचकर,
उर-पट पर नव दृश्य खींचकर,
सुधा-दान कर खुद विष पीकर,
दीन-हीन का जीवन जीकर,
मानवता का मूल्य बढाया,
प्रभु-वीणा का गीत सुनाया ।

मानवता की चित्र पटी पर स्वर्गलोक के दृश्य लिखे,
भूरि भाग्य थे भावुक भव के, अमरों के ने स्वाद चखे ।

इन रसूल ने अरब-देश में,
पर-हित-व्रत-हित सरल वेष में,
भटक भटक कर कष्ट सहा था,
काटों वाला मार्ग गहा था ।
जन-जन को उपदेश दिया था,
निष्ठा का सन्देश दिया था ।
दिव्य दूत ये करुणामय के,
दीप जलाये सर्वोदय के !
अब भी दीपक जलता जग-मग,
मानव को दिखलाता है मग ।
(प्यारे खिदमत-गार खुदाई
जिनने हस हस जान बिछाई
पैगम्बर की याद दिलाते
कुरबानी के दीप जलाते

खुशी खुशी वे तजें अमीरी
अपनाते है ठाठ फकीरी)

विषद धीर विश्वास विश्व का वह रसूल बन कर आया;
प्रभु के जीवन-वाहक घन ने मक्का-मरु को अपनाया।

विश्व-हृदय के सरस सार ने,
व्यापक विभु के मधुर प्यार ने,
ईसू का अवतार लिया था,
भव को मधु-संसार दिया था।
मरियम! तेरी भव्य गोद में—
खेला तेरा पुण्य मोद में।
प्रभु-उपवन की पूत लता के—
सुमन लगा था कोमलता के।
तीन लोक में सौरभ छाई,
भ्रमरो ने भी गाथा गाई।
पुण्य-कोष का रत्न मनोहर,
संवेदन का स्फटिक सरोवर,
करुणा-सखि का हृदय-हार वह,
प्रभु-वीणा का मूल-तार वह,
जाने कैसे भव में भूला!
डाल गया करुणा का झूला।

नर की छोटी सी दुनियां में आशा-दीप जलाकर वह;
चला गया रे! नभ का गायक अटपट राग सुनाकर वह।

सोने का सपना सा आया,
किस कविता का छन्द सुनाया ?
बैठे बैठे यह क्या सूझा ?
अरे रसिक ! तू क्षण में जूझा !
पर तेरा रस-वाद सफल था,
मानव का भी भाग्य प्रबल था।
कैसे तुझ को तमस पचाता ?
दिव्य वह्नि को कौन बुझाता ?
'क्रॉस'-त्रास थी तेरी क्रीडा,
कैसे होती फिर कुछ पीडा ?
भ्रान्त वधिक की खातिर रोया,
महा पाप उसका भी धोया।
किस स्रष्टा ने तुम्हें रचाया ?
सत्व-सुधा का सार लगाया।
उत्पल-दल सा निर्मल कोमल,
किस कमनीय कला का तू फल !

तुम्हे "क्रॉस" पर ठोंका हमने ताकि अमर ! तुम उड न सको;
चढ़े 'क्रॉस' पर राह दिखाओ, धरा-धाम में टिको-रुको।

राज-पुत्र से बुद्ध हुआ यह,
सुगति-सिद्धि पा सिद्ध हुआ यह।
चिर यौवन-हित निकला घर से,
बना सुगत नारायण नर से।

मथा भव-सागर अमृत लाया,
असत तमस में दीप जलाया।
जरा-मृत्यु में, रोग-भोग में,
विश्व व्यथित था बहु वियोग में।
अमर-तत्व को, सत्य-सत्व को,
सदाचार के मृदु महत्व को,
घोर तपस्या करके लाया,
नर को सुख का मन्त्र बताया।
जीव-मात्र की समता गाई।
सत्य-अहिंसा ज्योति जगाई।
तपः पूत यह मूर्त्त ज्ञान है।
गौरव हिम-धर सा महान है।

विभा धन्य वह भव की जिससे—सूर्योदय का लाभ हमें
जिससे अम्बर-अजिर—विहारी—महाभाग अमिताभ रमें।

ये जगती के दिव्य चिकित्सक—
बैठे थे तीनों ही शिक्षक।
मर्त्य-लोक की चिन्ता इनको—
आज हुई थी फिरसे मनको।
कहते थे ईसू—"मै जाऊ,
नर को फिर जाकर समझाऊ।
हृत्तन्त्री के तार बजाऊं।
हिंस्र-भाव की भूल दिखाऊ।

जब आपस के भेद मिटें फिर,
तभी मनों का मैल हटे फिर।"
कहा नबी ने—"या मैं जाऊं,
पुनः धरा से कुफ्र मिटाऊं।"
कहा बुद्ध ने "पाप शान्त हो,
पथ भूला नर पुनः भ्रान्त हो।
पर मुझको कुछ लगता ऐसा—
नर न रहा अब पहले जैसा।
उथल-पुथल में लगा हुआ वह, तेजी से है दौड़ रहा,
बुद्धि-वाद की चकाचौंध में घर अपना ही फोड़ रहा।
मनुज बुद्धि को रगड-रगड कर,
गाज रहा है अकड-अकड कर।
तीखी करता नोक शूल की,
उसे न चिन्ता कहीं कूल की।
तमस-चक्र पर शाण चढाता,
अपने जाने धार बढाता।
उसे नया हथियार मिला है,
अभी न सारा शौक टला है।
धार बहुत है सूक्ष्म बुद्धि की,
—सत्य-शोध ही शाण शुद्धि की—
जब पत्थर पर उसे रगड कर,
कुंठित होती देखेगा नर,

होश तनिक जब उसको आवे,
तभी उसे शुभ शिक्षा भावे।
चहूं ओर लख कर जल-धारा,
याद आयगा उसे किनारा।

तब टेरेगा वह माँझी को, 'नाविक! मुझ को पार करो,
हाय मूर्ख हूँ, जानूं मैं क्या? प्रभु मेरा उद्धार करो।

तब नय्या पर दीप जला कर,
नाविक-पति का कोई चाकर—
महा-पोत-ढिग ले जावेगा
प्रभु-चरणों में पहुंचावेगा।"

ईसू बोले-"धन्य सुलक्षण!
किस दिन आवे ऐसा शुभक्षण?
यह विकास की अद्भुत शैली,
कहा न प्रभु की लीला फैली!
पर अपना कर्त्तव्य नहीं क्या?
दीन भाव दातव्य नहीं क्या?

कहा बुद्ध ने. "सुनो भक्तवर,
हम सारे हैं प्रभु के अनुचर।
सौम्य घडी वह दूर नहीं है,
अपना भी कर्त्तव्य सही है—
प्रभु-इच्छा का पालन करना,
यथा-साध्य जन-पीडा हरना।

कण कण में नारायण फैले, जागृत जन प्रभु-शोध करे;
इङ्गित पाकर भूला मानव–ईश रूप का बोध करे।

दूर नहीं वह प्रात मधुर है,
बुद्धि-वाद अब हुआ विधुर है।
धरा-धाम से तस्कर काला—
जल्दी ही है छिपने वाला।
हम प्रभु-सेवक क्यों निराश हों?
हार-जीत से क्यों उदास हों?
प्रभु-सेवा का भाव भला है,
हमें यही कर्त्तव्य मिला है।
बौद्ध, मुसलमा, आर्य, इसाई,
नाम-मात्र हैं जीवित भाई।
गात्र बचा है नाम-मात्र का,
कैसे आवे पूर्ण पात्रता?
तुच्छ नाम पर मानव मरता,
नहीं काम की चिन्ता करता।
एक धर्म हो, तभी श्रेय वह,
शान्ति-लता का अमर पेय वह।

मुझे न रुचता जग में जाना, उलटा उससे भेद बढ़े;
मार्ग हमारे सभी एक, पर, मानव का तो खेद बढ़े।

स्वीय-करण, अधिकार-भावना,
नर में गहरी स्वार्थ साधना।

हुआ धर्म भी तेरा मेरा,
ममता ने उसको भी घेरा।
नहीं हटे जब तक यह ममता.
कभी न होगी जग में समता।
महा-पुरुष मेधावी त्यागी,
कोई अद्भुत गृही विरागी,
नया धर्म जो नहीं चलावे,
नहीं पंथ का भार बढ़ावे,
बहुत बड़ा धर्मी कर्मी हो,
मानवता का जो मर्मी हो.
जो न बढ़ावें नर में विग्रह.
सब धर्मों का करले संग्रह,
जो कलिमल का होवे हर्त्ता,
कर्त्ता होकर रहे अकर्त्ता—
नित जलमें शत-दल के जैसा जीवन-सुरभि बिखेरे जो,
धर्माचारी कष्ट सहन कर, मानव मन को प्रेरे जो।
सरल धीर जो वीर्यवान हो,
साधारण हो, अति महान हो,
मन वाणी से और कर्म से—
जिसे प्रीति हो सत्य-मर्म से,
ऐसा सुन्दर पात्र मिले जब,
जीवन-मधु का स्वाद खिले तब।

हम सब उसमें ज्योति भरेंगे,
यथासाध्य कल्याण करेंगे।
पैगम्बर दे उसको निष्ठा,
तुम करना निज प्रेम-प्रतिष्ठा।
सदाचार मैं उसे पढाऊ,
सत्य—अहिंसा-ज्ञान बढाऊ।
ज्योति पुञ्ज वह महा मनीषी—
चमक उठेगा विश्व-हितैषी।
मार्ग नाम को भिन्न हमारे,
एक प्रभा से ज्योतित सारे।"

इसी समय देखा इन सब ने—मधुर सुरभि से चैत्र भरा;
और गन्ध में गूंज उठी यों रसभीनी आकाश गिरा—

"दीन अवनि ने बहुत सहा है,
अब न सबेरा दूर रहा है।
भरत-भूमि का भाग्य-विधाता,
मानव-कुल का जीवन-दाता,
धरा—धाम को धोने वाला,
शीघ्र प्रकट है होने वाला।
पात्र मिलेगा तुम्हे तुम्हारा,
देना तुम सब उसे सहारा।
वैश्य—वंश में जन्म धरेगा
आर्य—देश का नाम करेगा।

धन का अनुचित-वितरण-पोषण,
इसी लिये आपस का शोषण।
अर्थ-वाद पीडा का कारण,
करे 'वैश्य ही उसका वारण।
सृष्टि-प्रसव हित होती पीडा,
भय न करो यह मेरी क्रीडा।''

मौन हुई नभ-गिरा पावनी, नबियों ने आंखें खोली;
दिव्य विवेकी ही अन्तर में—सुन सकते विभु की बोली।

तीनों ने तीनों को देखा,
कहीं न थी चिन्ता की रेखा।
फिर तीनों ने स्मिति-वृष्टि कर,
नीचे देखा दिव्य दृष्टि धर।
दीख पडा धरती का अम्बर,
तनिक घटा था तमसाडम्बर।
ऊँघ रहे थे नभ के तारे,
निशि ढकती थी तमस-पिटारे।
तीनों ने ले निर्मल जल फिर,
नीचे डाला अंजलि भर कर।
नयन मूँद कर प्रभु को सुमरा,
एक अलौकिक सौरभ बिखरा।
त्रिविध ज्योति सी क्षण-भर चमकी,
नभ में लय हो नीचे गमकी।

धीरे से तीनों मुसकाये,
विश्व-गिरा ने मगल गाये।

"नमो अरब के नबी यशस्वी, ख्रिस्त मसीहा नमो नमो;
कपिल वस्तु के तरुण तपस्वी सुगत बुद्ध अभिताभ नमो।"

४

कैसा मधुमय सुखद समय है!
हुआ धरा पर अरुणोदय है।
रवि सा सुत प्राची ने पाया,
अरुणाचल है उसे उढाया।
झीने पट में झलके झलमल,
तेज भरे शिशु का मुख निर्मल।
आँचल भी तो लगा चमकने,
ज्योति-प्रभा से लगा दमकने।
गगनाङ्गण कैसा निखरा है!
अरुणाभा से भवन भरा है!
उदित एक दिन-मणि हैं ऊपर,
एक अपर है प्रकटा भूपर!
आज पोरबन्दर के अन्दर,
प्रकट हुआ शिशु गान्धी सुन्दर।
भवन भवन में बजी बधाई,
धन्य धरा ने आँखें पाई।

अरे विहग ! क्यों कूज रहा है ? क्या पाया तूने भोले ?
दृश्य मनोहर क्या ऐसा जो, सरसिज ने भी दृग खोले ?

अरुण पावड़े बिछे गगन में,
पूर्व दिशा के पुण्य-भवन में ।
बँधा पालना प्राची के घर,
शोभा उमड़ी उदयाचल पर ।
बड़े भाग्य से बजे बधावे,
उषा—चारणी मंगल गावे ।
मा ने शिशु पर मोती वारे—
—कहीं कहीं जो बिखरे तारे—
मुग्ध उषा ने लगा बुहारी,
चुन चुन मोती ढकी पिटारी ।
प्रातोत्सव नव सुमन मनाते
खुले दान में सुरभि लुटाते ।
वायु मस्त हो गुन गुन करता,
इधर उधर से सौरभ हरता ।
वन-उपवन सब चहक रहे है,
रवि को पाकर महक रहे हैं ।

पद्म-दृषि वन-शोभा तरु मिस, पुलकी प्रिय को जान गई;
हँसी लता सी, खिली कमल सी, सखि पाटल सी मुग्ध हुई ।

आज धरा पर गान्धी प्रकटे,
मानवता के दिन अब पलटे ।

रत्न-गर्भिणी भारत-माता !
त्रिभुवन तेरी महिमा गाता।
राम-कृष्ण भी इसी अजिर में
पले बुद्ध थे तेरे घर में।
भुवन-भावने ! तू थी प्यासी,
बहुत दिनों से बढी उदासी।
धीरज रख, यह जलधर आया,
नभ-गंगा से पानी लाया।
पीलेना, अवगाहन करना,
सभी कसर पहले की भरना।
बहुत दिनो की व्याधि हटेगी,
भावुकता की साध मिटेगी।
ओ गायक ! तू रहा बहकता,
आशा ही में रहा दहकता।
अरे देख, अब प्रभु-नर्त्तन को,
इस जगती के परिवर्त्तन को।
आज छेड तू नया तराना,
गाले, नव-जीवन का गाना।
कण-कण को अब झंकृत करदे,
भवन-भवन में जीवन भरदे।

अमर भैरवी बजा अलापी! वीणा के इन तारों में;
झड़े कला के सञ्जीवन स्वर तेरी पटु झनकारों में।

पात्र विना कवि ! तेरी वाणी—
मौन हुई थी चिर कल्याणी।
गान्धी-गौरव-कुसुम खिले अब,
सौ पात्रों का पात्र मिले अब।
देख रही है तुझे भारती,
कविवर, मा की करो आरती।
भक्त तारती मा न हारती,
सरल भाव पर कोष वारती।
कवि ! तेरी है सफल कल्पना,
शीघ्र सत्य हो तेरा सपना।
सुभग ! सहा है बहुत विछोहा,
आज मूर्त है तेरा दोहा।
जो थे तेरी हंसी उडाते,
पागल जो थे तुझे बताते.
महिमा प्रभु की गावेंगे वे,
तेरे पथ पर आवेंगे वे।

पूर्ण पुरुष की राह देखते, सदिया सपनों में बीती;
अब होवेंगी सारी बातें—रस गुरु ! तेरी मनचीती।

अरे भाव के भावुक भिक्षुक !
मानवता के अनुपम शिक्षक !
भाव-प्रवण हैं गान्धी ज्ञानी,
सत्य-हेतु प्राणों के दानी।

कवि ! तू लेते थक जावेगा,
रस-धारा से छक जावेगा।
सब मन भाये मोती-हीरे,
लेते रहना. धीरे-धीरे।
लेना, चाहे जितना सोना,
भरना, कन्था कोना-कोना।
मचे यहां तो इस की होली,
गीली होवे तेरी झोली।
लगे वदन पर रस-पिचकारी,
भीग जायगी, कविता सारी।
भूलेगा, तू रसिक ! रसिकता,
ढो न सकेगी सब रस कविता।

अमर-लोक की पुण्य जाह्नवी नया भगीरथ लावेगा;
बहुत प्रबल है इसकी धारा, सँभल, सुकवि ! बह जावेगा।

तू फूलों की बातें करता,
या चिड़ियों के वन में फिरता।
हाव-भाव का मोहक वर्णन-
प्रिय तुझको वन-वैभव-चिन्तन।
शूर, वीर, योद्धा, भट, दानी,
विश्व-ज्ञान के बौद्धिक ज्ञानी,
ऋषि, मुनि, साधक, सिद्ध, तपस्वी,
राष्ट्र-धर्म के धीर यशस्वी,

तू इन सब की चर्चा करता,
वीर-भाव की अर्चा करता।
पर यह गाथा चौकस कहना,
छिछले तल पर कभी न रहना।
यदि देखेगा ऊपर ऊपर,
खा जायेगा कवि ! तू चक्कर।
यह अमरों की ज्योति जगे जब,
आंखें सम्मुख नहीं टिकें तब।

यदि इस चेतन के चित्रण में थक कर के सो जाओगे,
दीख पड़ेगी भूल भुलय्या गलियों में खो जाओगे।

सदा सत्य ही है शिव-सुन्दर,
जैसा बाहर वैसा अन्दर।
यदि तुम झूठी खोज करोगे,
बुद्धि-वाद का बोझ धरोगे,
करते जाना वर्ग-विवेचन,
रोज मिलेगा नया विशेषण।
रुके लेखनी, थक जाओगे,
उलझन में उलझन पाओगे।
श्रद्धा ही है यहा सहारा,
दीख पडेगा तभी किनारा।
यह गान्धी है तरल तारसा,
सीधा साधा मधुर प्यार सा।

पुरुष नहीं यह तत्व-मात्र है,
गहरा-छिछला सुधा-पात्र है।
जग में जितनी प्रभु की प्रतिमा,
कर्म मई है उनकी गरिमा।

रवि करता ज्यों शोषण-पोषण मलय पवन जैसे बहता;
छाया में गान्धी का चेतन-प्रभु दर्शन की विधि कहता।

कवि ! वह ऐसा कलाकार है—
जिसकी कविता सदाचार है।
अमर-नगर का कवि यह आया,
नागर-भाव वहीं के लाया।
कहता यह—'चेतन की छाया,
जिसने बुद्धि-हृदय प्रकटाया।'
काया की सीमायें जितनी,
अवगत उसको है वे उतनी।
कार्य देह के सभी धर्म हैं,
मल-मोचन भी सुखद कर्म है।
शुद्ध पाद, कर, बुद्धि हृदय हो,
कला श्रेष्ट, जब सर्वोदय हो।
इसे न ऊजड पन है भाता,
ढंग जंगली नहीं सुहाता।
लडना-भिडना, उदर-पाटना,
लोलुपता से भोग चाटना,

तुच्छ स्वार्थ के ओछेपन में कला कहां है रह जाती,
यह तो पशु का भोंडापन है, कविता सारी बहजाती।

धन्य धन्य मानव-संस्कृति को
सभ्य शील की पावन कृति को,
जो जीवन की परिधि बढ़ावें,
व्यक्ति-वाद की रेख मिटावें।
पशु-जीवन में कौन कला है ?
उससे तो जड जगत भला है।
नर विकास का मीठा फल है,
जिसमें उपजा रस निर्मल है।
शोभा उसकी सभ्य-भाव में-
सहृदयता के सहज-स्राव में।
व्यक्ति-वाद है भ्रष्ट धृष्टता,
बन्धु-भाव में भरी शिष्टता।
इससे बढकर धर्म कौनसा ?
मानवता का मर्म कौनसा ?
संवेदन से जब नर-नारी,
सींचेंगे अपनी फुलवारी—

विश्व बनेगा नन्दन-वन तब, घर घर कलियां फूलेंगी,
कवि कुल की प्रिय कला-किशोरी बैठ हिंडोरे झूलेगी।

यों जब से यह गान्धी आया,
जाने जगने क्या क्या पाया !

स्नेह-सुधा का झरना गान्धी,
शील-साधना निशि-दिन साधी।
गौरव का वह शान्ति-निकेतन,
महातेज का नम्र निवेदन।
भव-विकास का चरम ध्येय वह,
प्रेम-प्यास का परम पेय वह।
उसकी महिमा वोही जाने,
कवि क्या उसके चरित बखाने?
श्रद्धा ने आयास किया है,
यहा तनिक आभास दिया है।
आहत भव ने उसे बुलाया,
वह संजीवन लेकर आया।
हृदय हृदय ने उसको टेरा,
आया वह करुणा का प्रेरा।

विश्व-वेदना उमड-घुमड़ कर, प्रभु-चरणों में चिपट गई,
जैसे तैसे सञ्जीवन ले, गान्धी के मिस प्रकट हुई।

कर्मचन्द वे पुण्यवान थे,
साधु चरित के भाग्यवान थे।
मोहन सा सुत पाया इनने,
इतना लाभ उठाया किनने?
हेम-गर्भिणी, तारन-तरनी,
भाग्यवती थी गान्धी-जननी।
जतना मा ने धर्म कमाया,
सौ हाथों से फल भी पाया।
मा! कवि तेरी महिमा गाते,
विरुद-गान में नहीं अघाते।
तेरे आगण गान्धी आया,
सुर-पति का सा गौरव लाया।
तुझे लगे साधारण छोटा,
अनुचित क्या तेरा तो ढोटा।
गोद खिलाती, दूध पिलाती,
तू लोरी दे इसे सुलाती।

उँगली धर कर लिये डोलती, चन्दा इसे दिखाती तू;
नित दुलार के मधु में लिपटी-मीठी सीख सिखाती तू।

मा कहती "यह मेरा लाला—
सीधा-साधा भोला भाला।

यहीं चौक में गिरता डोले.
मीठी तुतली बोली बोले।
इस आंगण के भाग जगे है,
नये दूध के दांत उगे है।
मुह में उगली देने से भी,
नहीं काटता कहने से भी।
इसे न झूठा झगडा भाता,
कभी न लल्ला उधम मचाता।
नहीं किसी को दुख देता है,
देने से चीजें लेता है।
बहुत धूल में जब भर जाता,
अगर इसे कोई धमकाता,
चुपके से है सुनता रहता,
मानो मन में गुनता रहता।

नहीं एक दम रोने लगता, कर लेता नीची पलकें;
मुँह न खोलता, पर नयनों में-मोती से आसू झलकें।

ओ मा ! तेरा भोला भाला,
याकि देश का यह उजियाला ?
यह तेरा छोटा सा छौना—
जाने कोई जादू टोना।
याकि सुधा का है यह दोना ?
सुधा हुआ यह निर्मल सोना ?

मा री! सूरज छोटा होता,
पर प्रकाश से नभ को धोता।
तुमको लगता जो साधारण,
निखिल देश का यह नारायण।
राम-नाम भी छोटा होता,
जन्म-जन्म के पातक खोता।
जननी! तेरा सीधा मोहन—
बहुत करेगा मधु का दोहन।
लगी भूख की जग में ज्वाला,
उसे बुझावे तेरा लाला।

जननी! यह छोटा सा बादल—तृषित-हृदय को सींचेगा;
भव में गहरे छिपे कूप से—जीवन-रस-घट खींचेगा।

दीख रहा यह तुझे नम्र सा,
बहुत कठिन पर शक्र-वज्र सा।
भय न इसे है किसी कोप का,
मुह मोड़ेगा दर्प-तोप का।
अगणित बाधा टूट पड़े जो,
रुद्र-शूल भी छूट पड़े जो।
यह आगे ही बढ़ता जावे,
सहज चाल से चढ़ता जावे।
इसे विपद से भिड़ना आता,
अपने पथ पर अड़ना भाता।

एक तरफ हो यदि जग सारा,
मोहन हो एकाकी न्यारा।
भले विघ्न की आवे आन्धी,
नहीं मार्ग निज छोड गान्धी।
सत्य-मार्ग का यह ध्रुव तारा,
श्रान्त पथिक का बडा सहारा।

जाने कैसे धातु तत्त्व से विधना ने इसको सिरजा!
विघ्न-कष्ट के किसी भार से—कभी नहीं गान्धी लरजा।

जननी अद्भुत जात तुम्हारा,
वज्र-कठिन, पर सबको प्यारा।
नवों रसों का नवल-चितेरा,
प्रभु-चरणों का भावुक चेरा।
विश्व-वेदना का यह गहना,
बहुत इसे आता है सहना।
मुक्ता-जल से भरा पड़ा है,
हृदय जलधि सा बहुत बड़ा है।
ओ मा! ऐसा बड़ा खिलाड़ी,
कभी न रुकती जिसकी गाडी।
जब कबडी मे अड जाता है,
लौह-मेख सा गड़ जाता है।
अरी फूल सा कोमल कितना!
सहृदयता में निर्बल कितना!

भव-रजनी में खिला सोम सा,
पिघला पडता हृदय मोम सा।

है कठोर वह पर्वत-पति सा, पर इससे गङ्गा बहती;
जो धरणी की प्यास मिटा कर, गिरिवर का गौरव कहती।

गान्धी है शैशव से विनई,
आज इसी से है ये विजई।
पर इनकी इस सरल विजय में-
तेज सत्य का भरा हृदय में।
जो होती कायर की नरमी,
वह तो जीवन की बेशरमी।
और जिसे है प्रतिभा कहते,
नर जिसकी क्षमता में बहते,
ऊपर से वह बडी अनूठी,
चमक-दमक पर उसकी झूठी।
एक किस्म की वह कमजोरी,
है सोने की सुन्दर डोरी।
जिस नर में है प्रतिभा खिलती,
उसे प्रशंसा सस्ती मिलती।
अतः दम्भ में वह भर जाता,
प्रभु के निकट न जाने पाता।

जहाँ कहीं भी प्रतिभा होती, वहीं अहं भी बढ जाता;
बौद्धिक, लेखक कवि या वक्ता—कभी न शान्ति सुधा पाता।

एक अङ्ग जैसे बढ जाता,
या जैसे कूबड चढ जाता।
धवल केश का यदि हो बालक,
उसे कहें सब निज कुल घालक।
उसे न कोई सुन्दर माने,
कोई उसका गुण न बखाने।
उसी भाति प्रतिभा की क्षमता,
उससे नर की बढे विषमता।
वहा न रहती साम्य-माधुरी,
सब अङ्गों की चित्र-चातुरी।
जब न रहे प्रभु-विनय-भावना,
असफल होती सत्य-साधना।
प्रतिभा नर की बडी बिमारी,
स्वर्ग-शोध में बाधक भारी।
बुद्धि-ज्ञान, यह विषम भोग है,
नर-तनु का यह कठिन रोग है।

एक वृत्ति की पूर्व वृद्धि को दुनिया मे प्रतिभा कहते,
इसकी झूठी सज-धज को नर जाने कैसे हैं सहते?

मोहन में यह कमी नहीं थी,
झूठी प्रतिभा जमी नहीं थी।
शैशव से था वह मित-भाषी,
शान्त, लजीला, प्रभु-विश्वासी।

उसे न सस्ता यश मिलता था,
विनय-कुसुम मन मे खिलता था।
शाला में, या पितृ-भवन में,
अपने मन के मौन मनन में।
रहीं उसे निज त्रुटिया अवगत,
होता था वह दिन दिन उन्नत।
(तन-उपवन की कली-कली जब-
एक साथ हों सभी खिली जब,
तभी पुरुष मृत्युजय होता,
मुक्त हृदय हो निर्भय होता।
वह दुनिया के ऊपर रहता,
अमर कथा नित भू पर कहता।)

नर की जितनी निर्बलताये ओझल उसे न होती थी;
उसकी वह स्वीकार-भावना सब त्रुटियों को धोती थी।

मां इनकी थी धर्म-धारिणी,
साधु हृदय की सदाचारिणी।
व्रत रखती थी चान्द्रायण से,
भक्ति मागती नारायण से।
चातुर्मास किया करतीं वे,
प्रतिदिन दान दिया करतीं वे।
धन्य वैष्णवी कितना तपती!
अमित स्नेह से माला जपती।

कई दिनों तक निराहार रह,
व्रत-नियमों का मिताचार सह,
रहती थी वह निरत कर्म में,
भूल न होती गृही-धर्म में।
पुण्य मई वह सहज भाव से-
करती थी गृह-कर्म चाव से।
सह-सह कर होती थी उजली,
पति-नयनों की थीं वे पुतली।

इन जननी की तप· साधना मोहन जैसा फल लाई;
बेटे ने माता से सारी विनय-भक्ति निष्ठा पाई।

नारायण की अनुपम निष्ठा,
मन में अविचल सत्य-प्रतिष्ठा,
इन्हीं गुणों के गुँथे हार से,
मातृ-हृदय की स्नेह-धार से,
सफल हुये नित मोहन भोले,
अमृत ने दरवाजे खोले।
जब जब इन पर सकट आया,
मातृ-भक्ति ने ढाल लगाया।
वाल वाल बच सभल गये थे,
शस्त्र असुर के विफल हुये थे।
जब जब ये दानव से जूझे,
अभय-मार्ग थे इनको सूझे।

रहा पुण्य-संस्कार साथ में,
जननी का उपहार हाथ में।
दानव इनको कैसे छलता ?
सोना भी क्या जल में गलता ?

कभी कुसंगति के कारण से मोहन यदि रस्ता भूले,
उर्वर उर में पुण्य-सलिल से शीघ्र सुकर्म सुमन फूले।

मोहन जब पढ़ने जाते थे,
बहुत अधिक ये सकुचाते थे।
डर लगता था इन्हें बोलते,
मन की सारी गांठ खोलते।
सोचा करते बोलूं चालूं,
दिल के सब अरमान निकालूं।
रहे सदा पर ये मितभाषी,
मौन जगत के मुनि अधिवासी।
भाषण-प्रतिभा जहां प्रखर हो,
वाणी जिसकी बहुत मुखर हो,
मोहक वाणी का वह मानी-
शब्द-मात्र का होता दानी।
ललित प्रभावक वाक्य-योजना,
उसको भाता शब्द खोजना।
वह प्रतिभा का कोष खोलता,
नहीं तौल कर सत्य बोलता।

इसे न भाता मौन समर्पण सत्य-शोध का सुख पाना;
नम्र भाव से तृण-कण बनकर प्रभु चरणों में बिछ जाना।

वाक्य-शक्ति है उसे पेलती,
यश-तृष्णा निज खेल खेलती।
यह मानव की महत् भावना,
—यही कीर्त्ति की कुटिल कामना।
नर में झूठा मोह बढाती,
नकली यश का मुकुट उढाती।
निर्बल मानव इस प्रवाह में,
वह जाता है वाह-वाह में।
पर जिसको प्रभु-पथ पर जाना,
उसे पडे निज मूल्य गिराना।
प्रभु-सम्मुख तुच्छाति तुच्छ जो,
विनय-वारि में हुआ स्वच्छ जो।
महा दीन जो स्वत्व गँवादे,
तृष्णा की सब रेख मिटादे,
जब उसका दिल बिलकुल धुलता,
उसके अन्तर का पट खुलता।

अमित ज्योति का कोष खुले, उस अन्तर में झलझल करता,
वही तुच्छ फिर उदयाचल सा, वसुधा के तम को हरता।

महा दीन यदि कोई होले,
क्षण भर भी फिर प्रभु से बोले,

कौन काम फिर कर न सके वह ?
कौन क्लेश जो हर न सके वह ?
ओ मानव ! तू हलका होकर,
अरे दर्प को थोड़ा खोकर,
तनिक देख तो प्रभु की झाँकी,
कैसी सुन्दर कैसी बाँकी !
हृदय-ज्योति से भर जायेगा,
तू नयनों का फल पायेगा।
तेरा तृण-कण प्राण-वान हो,
चरण-प्रभा से ज्ञान-वान हो।
अपने मद में प्रभु को खोकर,
अरे, मरे मत बोझा ढोकर।
अपने पन की छोड़ छुटाई,
लख विराट की विपुल बड़ाई,

पर मोहन में पूर्व पुण्य से दैन्य-विनय का बीज उगा;
बुद्धू कह कर लड़के हँसते, सकुचाता वह प्रेम पगा।

यह निज को कमजोर मानते,
कभी न झूठा दर्प ठानते।
गान्धी-गृह में रंभा दासी—
वह थी सरला प्रभु-विश्वासी।
इनको थी वह सदा खिलाती,
बहुत स्नेह से दूध पिलाती।

ये भी उसको बहुत मानते,
दूजी जननी उसे जानते।
भक्त भाव में थी वह भोली,
स्नेह-सनी थी उसकी बोली।
इसी लिये वह लता हरी थी,
झोली उसकी रत्न भरी थी।
उसने इनको धर्म पढाया,
प्रभु-पद में विश्वास बढाया।
कहती 'भय्या! अगर लगे डर,
राम-नाम का सुमरन तू कर।
भाग जायगा डर फिर डर कर, राम नाम ऊपर सबमे;
राम राम जो रटता है नर-बढ कर वह भू पर सबमे।
भारत की रभा सी धाये—
जुग-जुग जीवें ये मातायें।
राम-नाम की लोरी गातीं,
शिशु को मीठी नींद सुलातीं।
कानों में है जीवन भरतीं,
घर घर में ये मगल करतीं।
शिशु बिरवे को स्नेह पिला कर,
सींचा करती हिला-डुला कर।
सीधी भोली मीठी बानी,
कहे राम की मधुर कहानी।

अमर रहे यह गोदी-आंचल,
शैशव का चिर पुण्य-धरातल।
पाल-पाल कर पूत पराये,
इनने आगण बहुत सजाये।
धन्य धन्य हे रभा मय्या!
धन्य तुझे मोहन की गय्या।

धाय वंश इन पन्नाओं का-जब शुभ लोरी गावेगा;
हरा भरा यह अजिर धरा का-मोहन से सुत पावेगा।

रभा ने जो बीज उगाया,
फौरन उसमे अकुर आया।
शैशव में जो बिरवा जमता,
उसका बढना कभी न थमता।
भय से मोहन अब न भागते,
राम-नाम रट शक्ति मागते,
-इन्हे मिली जो शक्ति राम से,
मिली न अब तक धरा-धाम से!-
श्रवण-कुँअर की पितृ-कहानी.
प्रथम बार जब इनने जानी।
हरिश्चन्द्र-नाटक फिर देखा,
खिची हृदय में नूतन रेखा।
मिली श्रवण से सीख सितासी,
भक्ति भावती मात-पिता की।

कथा सुनी फिर रामायण की,
तुलसी के प्रभु नारायण की।

यों जब गंगा, जमुना, बादल, सींचे शैशव क्यारी को,
और भूमि भी हो उपजाऊ फिर भय क्या फुलवारी को।

भक्ति पिता की श्रवण-सरीखी,
यों मोहन ने सेवा सीखी।
प्रेम इन्हें था बहुत सत्य में,
झूठ न मॅढते किसी कृत्य में।
पिता वृद्ध हो रहते रोगी,
ये थे पितृ-कृपा के भोगी।
नित्य पिता की कर के सेवा,
शुभाशीष का चखते मेवा।
पिता! तुम्हारे दृग का तारा,
चिरजीव यह पुत्र तुम्हारा।
कहते क्या? यह तुमको प्यारा,
और तुम्हारा बड़ा सहारा?
सुनो, पिता यह प्रभु का प्यारा,
स्वर्ग-विभा के नभ का तारा।
क्या कहते? कुल-दीप तुम्हारा,
गान्धी-गृह का है उजियारा?

घर का आंगण तो छोटा सा, तप मोहन का बहुत बड़ा;
चमके सब पथ गलियां जग की किरण बिखेरे खड़ा खड़ा।

दिन भर पूरब को चमकावे,
साँझ हुये पश्चिम में जावे।
उभय दिशा का अन्तर हरने,
जीवन से अन्तर को भरने,
जन-जन को सुख देने आया.
भव की नय्या खेने आया।
सुत की पूजी ! पिता तुम्हारी,
समझो यह कृष्णार्पण सारी।
यहा ब्याज की आस भूल है,
प्रभु-पद में जब-लगा मूल है।
यह धन तो है जीव-मात्र का,
मोह तजो, इस विश्व-पात्र का।
इसने ऐसा पथ अपनाया,
समझो, बेटा हुआ पराया।
सुनो पिता ! पर बेटा खोकर,
उऋण विश्व के ऋण से होकर-

कीर्त्ति तुम्हारे गान्धी-कुल की—निखर निखर कर बिखरेगी;
त्रिभुवन परिखा भी उस यश को—छोटी पड़ कर अखरेगी।

इस किशोर-वय हरिश्चन्द्र को,
गान्धी-कुल के सत्य-मन्द्र को,
शाला के इस सरल छात्र को,
अमरों के पाथेय पात्र को,

भरत-भूमि के अचल-धन को,
सुकवि-कल्पना के उपवन को
पुतली के इस परम प्यार को,
विश्व-हृदय के प्रिय दुलार को,
कला-चक्र के चक्र-यन्त्र को,
सतनारायण के सुमन्त्र को,
शैशव से ही ध्यान सत्य का-
बहुत अधिक था मान सत्य का-
अगर किसी को ध्यान न रहना,
और इन्हें यों कोई कहता-
"इतनी झूठी बात बनाना
मोहन! तुमने किससे जाना"-
सुन कर जैसे शूल चुभा हो, हृदय व्यथा से भर जाता,
मोहन-मानस से करुणा जल-बरबस वह बाहर आता।
एक रहे मोहन के भाई,
जिनने तनिक कुसगति पाई।
वे मोहन से जरा बडे थे,
चाल-चलन में कुछ बिगडे थे।
दुष्ट सग की गन्दी नाली
दुनिया की यह कुटिया काली।
इससे बचता कोई कोई,
जिसने मन की चादर धोई।

जिसके मन का फूल खिला हो,
जिसे राम का कवच मिला हो।
कलि का भीषण छूत रोग यह,
पूर्व-पाप का भाग्य-भोग यह।
धूआँ जब जिस घर में भरता,
वहां सफेदी सारी हरता।
यदि कलई की करें पुताई,
एक बार तो लगे सफाई।

ढकने से गर मैल छिपे भी, आखिर अन्तर को खाता;
कहीं पलस्तर कुचर रगड़ कर, मुश्किल से हटने पाता।

हड्डी फँसली छील-छाल कर,
तप से तन को साध-गाल कर।
साधु-संग की मरहम लगती,
तभी कहीं यह कालिख भगती।
बुरे संग में फँस जाने से,
कुछ खर्चीली लत पाने से।
भाई के कुछ कर्ज चढ़ा था,
फिर चिन्ता का बोझ बढ़ा था।
बहुत कठिन था पैसा पाना,
वृत्त पिता तक यह पहुँचाना।
भाई ने तरकीब सुझाई,
मोहन ने मिल राय बनाई।

कर में था उपहार जनक का,
भारी भरकम कडा कनक का।
उसमें टुकडा एक काट कर,
बेचा उसको किसी हाट पर।

उस धन से फिर कर्ज चुका कर, पिंड छुड़ाया किसी तरह,
पर चोरी से शिशु मोहन के दिल में दुःख भरा दुस्सह।

उनने भाई के बन्धन से—
सम्मति दी थी आधे मन से।
भाई जब थे बात बताते,
ये थे मन में रोते जाते।
पूज्य पिता से वृत्त छिपाना,
फिर चोरी से माल खपाना,
उचित न इनको यह जचता था,
सत का सीधा पथ रुचता था।
दिन भर तो ये रहे सोचते,
प्रभु-पद में दृग-वारि मोचते।
पर इनका तब छोटा वय था,
पितृ-कोप का काफी भय था।
सत्य-प्रेम में और अनय में,
द्वन्द्व मचा था सरल हृदय में।
आखिर सत की विजय हुई फिर,
ज्ञान-प्रभा से तमस भगा डर।

कंपित कर से मोहन ने तब, रुग्ण पिता को पत्र दिया;
जिसमें लिख कर विनय-भाव से सब कुछ था स्वीकार किया।

पूज्य पिता ने पढ़ा पत्र को—
बेटे के उस पुण्य चित्र को,
कह न सके कुछ नयन भरे थे,
चिट्ठी पर मोती बिखरे थे।
इधर खड़ा बेटा था रोता,
गंगोदक से दिल को धोता।
कथा वही जो वक्ता-श्रोता—
खोलें अपना दिल का सोता।
ऐसे घृत के दीप सँजोना,
प्रीति-सुधा से नयन भिगोना,
पाता कोई दिल का दानी,
ऐसे मोती—ऐसा पानी।
धन्य, धन्य, मोहन बड़भागी,
पितृ-कृपा-मधु के अनुरागी।
चिट्ठी पर यों आंक मॅडे थे,
मानो माणिक-बिन्दु जड़े थे—

"बापू! मैंने दोष किया है, दंड भरो चाहे जैसा;
पर मेरा विश्वास करो तुम, कभी न होगा फिर ऐसा।"

पिता कहे, क्या कहते इनको?
थाम रहे थे, पिघले मन को,

बापू ने तो मोती वारे,
गूथ गिरा ने हार सँवारे।
जिस दिन ठीक निशाना सधता,
प्रेम-बाण से दिल है विन्धता।
पीड प्रेम की कौन पिछाने,
जिसने भोगी वोही जाने।
प्रेम-ताप से पिघल-पिघल कर,
बहता सारा हृदय निकल कर।
मानवता की वेल बढे पर,
इस पानी से सींची जाकर।
सवेदन का सुधा सही है,
मरु का नखलिस्तान यही है।
ज्यों हिम-धर की बरफ गलाकर,
करें धरा को सरस प्रभाकर।

चरित मनोहर मोती जैसे मोहन प्रेम-सरोवर से,
मिले धरा को मानो प्रभु से अभिमत धर्म धरोहर से।

पुण्य-चरित मोहन के इतने,
नभ मण्डल में तारे जितने।
जो भी उनने कर्म किया है,
मानवता को धर्म दिया है।
कैसे कैसे हीरे-मोती,
जिन पर कविता सुध-बुध खोती।

ढूढ-खोज कर, उठा-जुटा कर।
हँसते-हँसते उन्हें लुटा कर,
कहो, जौहरी ! क्या सुख पाते?
क्यों धनियों की हँसी उड़ाते ?
कठिन खोज यह तुमने ठानी,
सास सांस में छिपी कहानी।
कौन तुम्हारी गाथा गावे ?
और पार भी कैसे पावे ?
एक बात हो तो कवि पकड़े,
किसी भांति कविता में जकड़े।
कहीं कभी तो यति भी होवे, शोध तुम्हारी यह कैसी ?
विश्व-निशा मे तुम जगते हो, देखी-सुनी न हठ ऐसी।
मोहन रहे पिता के प्यारे,
रह न सके यों अधिक कुँआरे।
शैशव भी तो जान सका था,
यौवन पूरा आ न सका था।
वर्ष त्रयोदश बालक-पन में,
व्याह हुआ था पुण्य लगन में।
इन्हें न था कुछ ज्ञान व्याह का,
गृही-धर्म की मधुर राह का।
ये तो पढने जाया करते,
बातों में शरमाया करते।

मिली वधू कस्तूरी बाई,
मधुर गन्ध आङ्गण में छाई।
कस्तूरी थी, गन्ध शान्ति की,
वैसे गिरिजा गौर कान्ति की,
चन्द्र-कला सी घर में छाई,
बहुत अधिक जननी को भाई।

सती, साध्वी, पति परायणा गान्धी-जननी थीं जैसी,
मलय लता सी पावन सुन्दर बहू मिली उनको वैसी।

बहू सदा मन्दिर में जाती,
प्रभु-चरणों में भोग चढाती।
पति-मगल की अमित कामना,
वधू-हृदय की एक भावना,
आर्य-देश की कीर्त्ति-पताका,
यज्ञ-वह्नि की यही शलाका।
नैतिकता की धुरी यही है,
पापी मन की छुरी यही है।
वधू-वश की कीर्त्ति-कथायें,
पुण्य-भाव की ये सस्थायें।
आङ्गण आङ्गण तीर्थ-कल्पना,
कोई गगा कोई जमुना।
बहू वेटिश भारत मा की
गौरव-धारायें करुणा की।

तुलसी की पावन मालायें,
भोली भारत की बालायें।
आर्य-वधू की जहा सुरीली चुडियों की झुनकार रहे;
उस आङ्गण में प्यार बढ़े नित, प्रति पल स्वर्ग-बहार रहे।
गान्धी-गृह कस्तूरी आई,
पीहर से गुण-गरिमा लाई।
सास-ससुर का, परिजन-मन को,
मोह लिया उसने मोहन को।
मृदुल गुणों से सब को बांधा,
राज-कोट में प्रकटी राधा।
प्राण-नाथ के मन की माला,
प्रेम-मूर्त्ति सी सरला बाला।
बसी नयन में, पुनः हृदय में,
जैसे सौरभ बसे मलय में।
दोनों ने दोनों को चाहा,
प्रेम-नेम मिल सदा निबाहा।
बहुत सहा अनुराग मई ने,
तपोधनी की त्याग मई ने।
अनुव्रता के आह न निकली,
पतिव्रता की चाह न मचली।
इत्र खोजते इन गान्धी को मिली भाग्य से कस्तूरी,
इस पूरक बिन यह प्रभु-रचना कैसे हो पाती पूरी।

बहुओं से घर महक रहा था,
आङ्गण सुख से चहक रहा था।
घर भर ने संतोष गहा था,
जीवन हँसते बीत रहा था।
पर न दैव को यह सब भाया,
विपदा का बादल मँडराया।
मोहन के प्राणों से प्यारे,
पूज्य पिता-श्री स्वर्ग सिधारे।
बेटों की सेवायें सारी,
वैद्यों की औषधियां भारी,
गृहणी ने उपवास किये थे,
जब-तब भरसक दान दिये थे।
व्यर्थ हुये उपचार-कर्म सब,
कहा नियति का रुका नियम कब?
जग को मोहन सा सुत देकर,
काबा गान्धी चढे गगन पर।
तनिक झाक कर देखो, बापू! अपने बेटे की लीला;
इसने कच्चा सूत मतर कर, त्रिभुवन के मन को कीला।
धन काबा के पुण्य विपुल को,
धन्य धन्य इस गान्धी कुल को।
काबा! क्या तुम चले गये हो?
अगर गये तो भले गये हो।

किसने पाया तुमसा जाना ?
जाने के मिस मान बढ़ाना।
घर घर फैले तुम तो उड़कर,
कर्म-चन्द ! मोहन से जुड़ कर।
मिले जिसे भी ऐसा जाना,
शेष उसे क्या वैभव पाना !
गये पिता बेटे को दे कर,
छल से हृदय हमारा लेकर।
और तुम्हारा गान्धी मोहन,
करता विश्व-हृदय का दोहन।
बापू ! तुम तो स्वर्ग सिधारे,
इसने मोहे सुमन हमारे।

गान्धी हो तो, क्या तुम सारे भव का इत्र निकालोगे ?
मधुप ! भाव-मधु पारिजात का पात्र कहां ? जो डालोगे।

पितृ-छत्र की शीतल छाया,
शीत-घाम से बचती काया,
खाना-पीना, सैर उड़ाना,
चुपके से घर में सोजाना।
और शेष चिन्तायें भारी-
रहे पिता के जिम्मे सारी।
जनक-हृदय सा प्रेम कहां है ?
इसी धुरी पर टिका जहां है।

पर न सदा वे रहने पाते,
पिता एक दिन सबके जाते।
चिन्ता से कुछ लाभ नहीं है,
प्रभु की इच्छा सदा सही है।
यही सोच कुछ ढाढस पाया,
गान्धी-कुल न हृदय हढाया।
जो थे सबसे जेठे भाई,
घर की चिन्ता उन पर आई।

आर्य नीति से अग्रज कुलधर घर का शासक होना है,
जो काटों का मुकुट ओढ कर पूरी नीन्द न सोता है।

मोहन तो शाला में जाते,
भाई घर का काम चलाते।
जैसे-तैसे पाकर शिक्षा,
मोहन ने दी प्रथम परीक्षा।
शाला से ये 'कालिज' आये,
भाव-नगर में गये पठाये।
पर 'कालिज' में चल न सके ये,
एक वर्ष में बैठ थके ये।
जिसको प्रभु की शाला भाती,
यह 'कालिज' क्या उसे सुहाती?
जहा दासता जमी हुई हो,
नकल पराई रमी हुई हो,

जब शिक्षा हो शब्द-मात्र की,
रुकती गतिया सरल छात्र की।
ढूंढ ढूंढ कर विषय कड़े से,
जहा भरे हो नाम बड़े से।

'पर-भाषा का माध्यम पाकर रहे छात्र-मन उजड़े से;
खस महिषी को थके रंभा कर, गौ से बिछुड़े बछड़े से।

ठूंस ठूंस कर जहा पाठ को,
भरें बुद्धि में कठिन काठ को।
जहा चरित सब जर्जर होता,
हृदय सूख कर बजर होता।
छात्र जहा ज्यों कल के पुरजे,
फिरें घूमते दरजे दरजे।
जहा स्नेह की बून्द नहीं हो,
केवल बौद्धिक व्यथा रहा हो।
जहां छात्र हों भाग्य-हीन से,
रूखे-सूखे मलिन दीन से।
बिन वर्षा की खेती जैसे,
नीरस मरु की रेती जैसे,
जिनके आशा दीप बुझे हों,
मन-प्रसून प्यासे मुरझे हों।
जिनकी गौरव-कान्ति मिटी हो,
रोग-भोग से शान्ति हटी हो।

निज सस्कृति से मुक्त विरागी, यहा मुसाहब 'क्लर्क' बनें ;
सुख-दुख मानामान न मानें, समदर्शी ये बहुत घने।

घर में शिक्षा जहा जटिल हो .
जब कांटों से हुई कुटिल हो।
जब स्वदेश में पथ रुक जावे ,
तभी याद बाहर की आवे।
बहुत सोच कर सबने आखिर ,
रस्ता ढूढा मोहन-खातिर।
निश्चय हुआ कि लन्दन जाकर ,
कुल कानूनी शिक्षा पाकर ,
ये 'बैरिस्टर' बन कर आवें ,
गान्धी-कुल का नाम बढावें।
जननी की आंखें भर आई ,
पहले तो यह राय न भाई।
तीन वर्ष का कठिन बिछोहा ,
दिल को करना पडता लोहा।
और बहू भी सरल नवेली -
कैसे घर में रहे अकेली ?

किसी भांति फिर सास-बहू ने आखिर मन को कड़ा किया ,
मां ने सुमरा राम-धनी को, जिनने अब तक बड़ा किया।

इनको ममता सता रही थी ,
नियति मार्ग निज बता रही थी।

निवासी

अग्रज ने खोजी शुभ सायत,
मोहन गान्धी चले विलायत।
चलते चलते जननी बोली –
"बेटा! बहू हमारी भोली।
इसे न पल भर को बिसराना,
कुल-लक्ष्मी को भूल न जाना।
अपना वैष्णव-धर्म निभाना,
कभी न आमिष छूना-खाना।
तुम अपेय द्रव कभी न पीना,
धर्म बिना क्या जग का जीना?
जाओ, भय्या! सुख से जाओ,
पढो, सफलता पूरी पाओ।
सास-बहू हम मगल गावें,
प्रभु तेरे पथ फूल बिछावें।"

मोहन! तेरा प्रत्यग्र मुझको कैसे तुझे बताऊँ मैं;
तू सरसिज सा सदा खिलेगा, शायद देख न पाऊँ मैं।

मां के मन रस-धार बही थी,
अशुभ जान कर रोक रही थी।
चरण-धोक मोहन ने खाई,
शुभाशीष जननी से पाई –
"जाओ लल्ला! सुयश जगेगा,
तुम्हें न कांटा कभी लगेगा।

ठहर, मिठाई तुझको भाती,
अभी बाँध कर मैं हूं लाती।"
जननी गई मिठाई लाने,
बहू खड़ी थी आंचल ताने।
कह न सकी कुछ, कंठ भरा था,
झुकी चरण में, विरह घिरा था,
गोद भरी थी नयन भरे थे,
पति-निष्ठा से अंग हरे थे।
वहू देखती रही भवन में,
नर-पछी वह उड़ा गगन में।
मा को सौंपे वचन वज्र का-वर्म पहिन वह चला गया;
चार सजल दृग रहे राह पर कभी न पथ में छला गया।

६

देश पराया वेष पराया,
देव यहां मोहन को लाया।
यहा कहा वे मीठी बातें,
भारत की रसभीनी रातें?
नील थाल में मोती भर कर,
चन्द्र-दीप चादी का धर कर,
करे आरती रजनी रानी,
कहे हिन्द में स्वर्ग-कहानी।

वहा तरल दिल वहा रमा है,
वही बर्फ सा यहा जमा है।
इन्द्र-व्यजन का मलय-पवन वह-
सजीवन सा शोक-शमन वह।
स्नेह-सुधा से हवा भरी है,
रवि-कर-शोभित भूमि हरी है।
शस्य-श्यामला, सुजला, सुफला,
पुण्यमई मा, वरदा, विमला।
उष्ण किरण मिस नित्य कोष में—सूरज भरता है सोना;
चांद बिखेरे चान्दी घर-घर, प्यार भरा कोना कोना।
परिजन पुरजन साथी चेरे,
वे विनोद, वे साझ सवेरे।
वे भाभी के चुहल चुटीले,
वे सुहृदों के व्यग कटीले
और प्रिया की प्रेम-प्रभा वह -
जिसमे जगमग सदा विभा है।
अमित कथायें मातृ-धरा की
विकल हुये मोहन एकाकी।
'तनिक और ले' कहती मय्या,
'खाया ही क्या तैंने भय्या'।
ओ मा! तेरी सरस मिठाई,
लख, मोहन के चढी रुलाई।

याद उन्हें जब वा की आती ,
सुध-बुध उनकी सब खो जाती ।
मा ने चलते बांध सजाई',
स्नेह-सिता से भरी मिठाई ।

मीठे मा के गोदी आचल, मीठी याद मिठाई है ;
इसी लिये मोहन की आखें-श्रवण पेय भर लाई है ।

घर की महिमा बाहर आकर -
है प्रवास में खुलती जाकर ।
पर मोहन को रहना होगा ।
नियत विरह को सहना होगा ।
पढ कर सत की प्रतिमा गढने ,
प्रभु के गौरव गिरि पर चढने ,
तू, भारत से आया चल कर ,
सुधा-पान कर, काबा-कुल-धर !
इस उपवन में बहुत सुमन है ,
नूतन काटों की उलझन है ।
पर तुम को है इत्र बनाना ,
सुरभि यहा से भर ले जाना ।
ये काटे कब कहा अडेंगे ?
सत्यानल पर चढ निचुडेंगे ।
रग यहा उडते है नकली ,
प्रभु रक्खेंगे कमली उजली ।

काले भारत की यह कमली, चढा श्याम का रंग यहां ;
चोला पक्का इकरंगा हो, और रग फिर चढे कहां ?

मोहन, तुम तो सहज धीर हो,
यहा नीर से चुनो क्षीर को।
राज-हंस है मोती चुनता,
विश्व-द्वन्द्व में गुण को गुनता।
मा ने जो उपहार दिया है,
हेम-पात्र दे प्यार किया है,
रह न जाय वह बर्तन रीता,
होवे जननी का मन-चीता।
हृदय-पात्र में मधुरस भरना,
भव की आशा पूरी करना।
यह पयोधि है खारी जल का,
साज सजाना तुम बादल का।
सत्य-सूर्य-कर धर सागर में,
हे घन! मधुजल भर गागर में।
फिर प्यासों में बरसा करना,
जन-मन में हरियाली भरना।

यहां पंक, पर तुम पकज से दिन दिन बढते जाओगे,
खींच मूल में छिपी आर्द्रता खिल कर सौरभ पाओगे।

मोहन! अब क्या सोच रहे हो,
किस दुविधा में कहो, बहे हो?

अन्तर-वाणी तनिक सुनो तुम,
सुन कर, अपना मार्ग चुनो तुम।
हृदय-पद्म से प्रभु की प्रतिमा -
देगी सौरभ—गौरव—गरिमा।
तुम प्रकाश की महा किरण से,
रहो चमकते स्वर्गारुण से।
करो यहा विद्या का सचय,
धन्य, यही प्रभु-अभिमत निश्चय।
छ त्र भाव लेकर आये हो,
हेम-पात्र सा दिल लाये हो।
उसमें नव मकरन्द भरो तुम,
इस मधु-रस को सफल करो तुम।
परम पारखी ! परखो इसको,
दिव्य भ्रमर ! चख देखो रस को।

अगर पंक है इस प्रदेश में पकज भी हैं यहा खिले;
ढूंढ-ढूंढ अलि ! कमल-कली को तुझे सुखद मधु-श्रोत मिले।

सोच समझ कर, चित्त लगा कर,
दुश्चिन्ता को दूर भगा कर,
लगा विकसने छात्र-हस यह,
वैश्य-वश का पुण्य-अश यह,
बढा तनिक जब इनका परिचय,
घटा हृदय में भय अरु संशय।

सीखी कुछ पश्चिम की शैली,
कुछ बोली की परिखा फैली।
सामाजिक व्यवहार यहा का,
भाषण-शिष्टाचार यहां का।
लन्दन का वह सभ्य सलीका,
रहन-सहन का नया तरीका,
जब ये आये यहा निपट में,
रहे न पहले से सकट में।
मन ने थोडा साहस पाया,
सहज भाव जीवन में आया।

पर पश्चिम की पोली शैली बाहर से भड़कीली है,
इसकी यह चमकीली सूरत नकली और नशीली है।

बाहर कितनी सुन्दर उजली!
बिना नीर की धोली बदली।
बिना गध की कनक-कली सी,
मादक मनहर लगे भली सी।
ओ पश्चिम की सभ्य रागिनी!
हृदय-रक्त मत चूस नागिनी!
अरी उर्वशी! रागमई तू,
इन्दु-कला सी नित्य नई तू।
भोग-भाग निज त्याग भाग री,
निकल नागरी! जगें भाग री।

पिला न रूपसि ! यौवन-हाला,
दिखा न विष का सुवरण प्याला।
तेरे प्याले की शीराजी -
मदिर मधुर तीखी अरु ताजी।
तू माया की मञ्जु अटारी,
रोग-भोग की रत्न-पिटारी।
उव कटाक्ष की कोर नुकीली वेन्धे मत दिल की प्याली,
यह छोटा मधु-चक्र भाव का-यहीं हमारी हरियाली।
चल चितवन से नचा न नरको,
थिर रहने दे, उर-गागर को -
नेह-नेम के इस तरुवर को,
उर-सर के मृदु इन्दीवर को।
खिलने दे इस प्रेम-सुमन को,
जन-तन-मन के उपवन-धन को।
संवेदन के निर्मल जल मे,
भ्रातृ-भाव के विमल कमल से,
जब यह मानव-मानस विलसे
तू फणिनी सी छल-बल-दल से—
गरल उगल क्यों लोल लास से—
उसे लुभाती कुटिल हास से ?
तू है लोभ-काम की पुतली,
प्रभुता-नभ की चंचल बिजली,

चटुल चरपरी चतुर निराली,
छल-पटु वारवधू मतवाली।
अग्नि शिखा सी नाच रही हूँ, पश्चिम की रजत-पटी पर;
नटी! लुटी हैं नर की आखें-तव कटि-गति पर भृकुटी पर।

नर-मेधा का गेन्द रचा कर,
खेल न, दिनभर नयन नचा कर।
हीर-हार ले जब तू झूमे,
राज-मराली सी जब घूमे,
प्रमदे! जब तू झिलमिल झलके,
यौवन-सरिते! जब तू छलके,
रंग विरगी शोभा भर के,
तितली सी जब पट पर थिरके,
नयन चलें जब मदिर भाव से,
अलस अङ्ग जब झुकें चाव से,
नर हो तुझ पर तब न्योछावर—
अपर ज्ञान हो जाता दूभर।
सभी कहें तू चल चपला है,
अंग-अग में भरी कला है।
जाने, है यह कला कौनसी?
सभ्य भाव की वला कौनसी?
सीधी-मीठी बात न बोले, दिनभर जो बदले कपड़े;
सभ्य वही जो स्वार्थ साधके-भाषण दे चिकने चुपड़े।

सुरा-केलि में, खान-पान में,
रंग-मच के नृत्य-गान में,
×सब जीवों की शयन-विभा में,
जो जन जागे केलि-सभा में।
जो उठता है दिन चढने पर,
जो इतराता धन बढने पर।
जिसकी रुचि का मान बढे नित,
प्रभुता-मद का नशा चढे नित।
लपट जो मन मलिन, क्षीण हो,
चाटु-कला में जो प्रवीण हो।
जो न द्रव्य अपने को खोता,
कैसे भी जो पर-धन ढोता।
कष्ट सहन का जब प्रसग हो,
जहा स्वार्थ का जरा भंग हो,
टाले अवसर बात बना कर,
नीति-तर्क के गीत सुना कर।
रसमें जिसकी रुचि ऊचा हो, त्याग समय जो हरिण बने;
जो चकोर हो भोग-चन्द्र का, बैठा सुख की किरण चुने।
यश का साथी, शुभ का स्वामी,
छैल छबीला, नागर कामी,

× या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति सयमी

नम्र शिष्टता उसकी रूखी,
बिल्कुल बालू जैसी सूखी।
नम्र गिरा जब शिष्ट नियम हो,
कुलाचार का नीरस श्रम हो,
विनय व्यर्थ वह बिना हृदय की,
गति यह कपट भरे अभिनय की।
सभ्य सयाना जो है जितना,
चतुर मतलबी लोभी उतना।
यह इस युग का सभ्य कथानक,
स्वार्थ-सिद्धि का काव्य भयानक।
भौतिकता का पाठ पढावे,
काया में अनुराग बढावे।
देह-चाम की टीम-टाम में,
निरत रहे मन तमस-काम में।

परम ज्योति की पुण्य प्रभा का रत्न-दीप नर का अन्तर;
इतर कणों में किरण कहा वह इतनी विशद मधुर सुन्दर?

अमृत-सरित के निकट खडा जो,
दृष्टि-भेद-वश है बिछुडा जो,
तट-सिकता में ले रस-आशा,
ढूढ रहा है जल को प्यासा।
पागल! यह चमकीली मिट्टी,
अस्थि-चर्म विषयों की भट्टी।

क्यों जलता है अरे अभागे !
क्यों न वासनानल को त्यागे ?
ओ कुरग ! वह मृग-मद-तेरा,
देख, नाभि में करे बसेरा।
तव मानस में सच्चे मोती,
वहीं बुद्धि निज कलि-मल-धोती।
देख सरोवर है लहराता,
क्यों न बावले ! प्यास बुझाता ?
निज अन्तर के सरोरोध से-
तन-मन धोले तू प्रबोध से।

भोजन, कपड़े, राज महल सब, सुख साधन ये काया के;
अविरल श्रोत सुधा का भीतर बाहर रस हैं छाया के।

जहा सभ्यता उलटी होवे,
मेधा को गलियों में खोवे।
व्यूह बनाकर चक्कर काटे,
और अन्त में मिट्टी चाटे।
वस्त्र-केश की काट-छाट में,
'फैशन' की नित नई हाट में,
क्रय-विक्रय की कडी होड मे,
धन-सिक्के की जोड-तोड में,
यश-महत्व की तीव्र पिपासा—
खेले घर घर चौसर पासा।

देह-वाद में, व्यक्ति-वाद में,
इन्द्रिय-सुख की नित्य याद में,
काम-केलि में, या प्रमाद में,
कटु विषाद के हिंस्र-नाद में—
आज सभ्यता खेल रही है,
नर पर बोझ ठेल रही है।

सभ्य नगर में हाय हृदय भी और रूप भी बिकता है,
अरी हिरसने! पाप-दंश में तेरा मन क्यों टिकता है?

काम-रूपिणी! भुला समर्पण,
क्रय-विक्रय का दे आकर्षण,
तूने नर को क्या समझाया?
'देह-मात्र तू' मन्त्र बताया।
"एक सत्य यह तेरी काया,
और धर्म है झूठी माया।
खिला पिला कर इसे सुला तू,
इतर जनो का ध्यान भुला तू।
जब तक जीवे, सुख मे जीले,
क्यों दुविधा से तन को छीले?
तुझे देह का मिला खिलौना,
खेल विछा कर सुखद विछौना।
क्यों काटों से इसे पाटता?
क्यों विराग की शूल छाँटता?

पर-पीडा की उटा दुधारी,
क्यों तोडे निज सुरस पिटारी ?
नैतिकता के कंडे बिन कर कैसे भार उठावेगा ?
बता कौन है गाहक, चुन कर इन्हें कहां ले जावेगा ?
नव दुकूल से, हीर-हार से,
सुमन-भार से, अलंकार से,
अङ्गराग फेनिल उबटन से,
रूप-लेप सौरभ-साधन से,
हीरक मुदरी चेन जँचाके,
अधरों पर नव रंग रचाके,
नयन मदिर कर सुरा-पान से,
सजा देह को मनुज ! ध्यान से।
शशि-वर-वदना, मनहर श्यामा,
यौवन धामा, ललित ललामा,
भली भामिनी हेम लता सी,
मन को मीठी लगे सिता सी।"
मानव में यों तृष्णा भरती,
चाटु कला से वश में करती।
नवल सभ्यते, काम रूपिणी,
छोड हमें तू वक्र सर्पिणी।
सहज कार्य को टेढा करना, यह पश्चिम की सभ्य कला,
भोजन भाषण-वस्त्र-विभव में, उलटा भौतिक ठाठ पला।

देह मिली मानव को माना,
निधि यह नर की यह भी जाना।
देह-यन्त्र कर्मों का साधन,
भव-विकास का करण सनातन।
मिला हमें यह केन्द्र सलौना,
सत्व-सार माया का सोना।
सत प्रधान यह त्रिगुण-चित्र है,
प्रकृति-लता का सुमन-इत्र है।
भव-नीरधि का पुष्ट सेतु यह,
भौतिकता का शृङ्ग केतु यह।
भूत-तत्व के क्रम-विकास का -
केन्द्र-विन्दु यह सुख प्रकाश का।
सहज नियम से रखना इसको,
कभी न बढ़ने देना विष को,
फिर विवेक से परिधि बढ़ाना,
सागर में निज बून्द मिलाना।
सविधि यत्न कर, कोण-विन्दु के स्वत्व भाव को विकसाना,
रगड़ सुमति से व्यक्ति रेख को, प्रभु-अम्बुधि में खो जाना।
देह-यन्त्र ही मनुज नहीं है,
वह तो द्रष्टा भिन्न सही है।
वह साक्षी सा निर्गुण देही,
जीव-मात्र का परम सनेही।

सरस सुभाषित जिससे काया,
अन्तर में है जिसकी छाया।
जिस झाई से कण-कण जग का,
नाच रहा है तृण-तृण मग का।
यह सत्य कण-कण में छाया,
अहं भाव अणु-अणु में आया।
जाग उठे अणु 'मैं मैं' कर के,
विश्व-ज्योति से जागृति भर के।
सुन अणु, 'मैं' वह बहुत निराला,
तुझ में जिसका है उजियाला।
देख 'बल्ब' वह विद्युतधारा,
जिससे तू है जगमग सारा।

विद्युद्दीपक! सघर्षण से देह हुई तेरी झीनी,
तभी तुझी में ज्योति-माधुरी फूटे ऐसी रसभीनी।

किरण-करों से छूये जाकर,
कण-कण जागा प्रभु को पाकर।
रोम-रोम माया के न्यारे,
बोल रहे इतराकर सारे -
"हम भी कुछ हैं देखो हमको,
और सत्य क्या छोड़ो भ्रमको।
हम हैं कर्त्ता-धर्त्ता स्वामी,
अमुक वीर ज्ञानी हम नामी।"

अरे बावलो ! मोह विसारो,
अहंकार में यों न पुकारो,
अपने तन का दीप जला कर,
जलो न यों रस-तेल मिला कर।
देखो, सूरज चमक रहा है,
अमित प्रभा का कोष बहा है।
प्रभु दिन-मणि का वैभव गाओ,
नयनाम्बुज से अर्घ्य चढाओ।

प्रभु प्रियतम की प्रेम-किरण से हिय का हिम सारा पिघले;
तेरी छोटी सी उर-सरिता प्रिय-अम्बुधि में जाय मिले।

तेरे दिल से निकली सुजला-
पथ में बढती जावे विमला।
बहु श्रोतों का जल-बल पाकर,
पार्श्व भूमि में मधु सरसा कर,
सींच सींच पथ की फुलवारी,
हरे भरे खेतों की क्यारी,
कूल विटप-सम कलि-मल दल को,
काट बहाती कलुष विपुल को।
उर उर से संवेदन धारा
मिलती ले निज संबल सारा।
त्याग-तटा अनुराग-जला यह,
हो जाती है अमित बला यह।

इसका वेग रुके फिर किससे ?
कौन विघ्न फिर जूझे इससे ?
वहीं शान्ति हृद-गंगा पावे,
जहां क्षीर नीरधि लहरावे।

शील यही है, हो मतवाला प्रेम-सुधा का पी प्याला;
प्रभु-चरणों में चतुर, चढ़ादे अपने प्राणों की माला।

इस पश्चिम की तड़क भड़क में -
मोहन! चिकनी वक्र सड़क में -
चलो संभल कर, यह है ढालू,
यहां न भारत जैसी चालू।
जरा गिरा जो कहीं फुदक कर,
नीचे पहुंचा वहीं लुढ़क कर।
नहीं बीच में कहीं सहारा,
पेन्दा ही है यहां किनारा।
नीचे गिर कर नर है रोता,
दीन पंगु हो धीरज खोता।
लोग हँसे पर रोना सुन कर,
ताल लगावें यति-गति गिन कर।
पर तुम में है नई जवानी,
अतः अभी है तनिक दिवानी।
नये शील की चंचल तितली,
काम-कली पश्चिम की पुतली।

हे किशोर ! यह तुमको भावे वैभव मेघ-घटा बिजली,
बाहर जितनी छटा ऊजली भीतर यह उतनी कजली।

देखोगे पर एक बार तुम,
गवा न देना हृदय-हार तुम।
यहीं लौट कर वापिस आना,
भारत-भूषण ! खो मत जाना।
अभिमन्यू से चक्र-व्यूह में-
फस मत जाना भट-समूह में।
राघव से गढ लका जाना,
राज-हस से गुण चुन लाना।
तपो कनक से निखर अनल में,
खिलो कमल से फेनिल जल में।
अथवा भय क्या तुमको प्यारे,
गान्धी कुल के राज दुलारे।
तुम भारत के पुण्य-सार से,
चारु, चरित-मणि-मञ्जु-हार से।
साधु चरित तुम भोले भाले,
राम रमापति है रखवाले।

पैठो तुम बेखटके सरि में, सदा तुम्हारा सुयश जिये;
देखो वह कैवर्त्तक केशव, खड़ा नाव-पतवार लिये।

कपडे लाकर नये साज के,
अजब-ढग वे नव समाज के—

मोहन भय्या लगे पकड़ने,
बाबू बनकर लगे अकड़ने।
नाच नाचना, वीणा बजाना,
लगे सीखने गिरा सजाना।
पर जल्दी ही बच कर भागे,
पुण्य भाव भारत के जागे।
लगे सोचने—"दादा भाई—
कितने श्रम से करें कमाई।
कठिन कष्ट से खर्च जुटाते,
फिर मुझ को है यहाँ पढ़ाते।
भला पाठ मैं यहाँ सीखता,
नाच-गान में बैठ चीखता।
इसी पाठ-खातिर घर बैठे—
राह तकें वे आतुर बेटे?
इस धन पर अधिकार मुझे क्या? मैं जो इसे उड़ाता यों,
संयम ही है धर्म छात्र का, मुझको यह सब भाता क्यों?"
फिर उनने सब खर्च घटाया,
सीधा जीवन-क्रम अपनाया।
छोड़ा खर्चीले भोजन को,
तजा मित्र के सजे भवन को।
वास वहाँ का था खर्चीला,
भोजन का था बड़ा झमेला।

मोहन तो थे शाकाहारी,
और यहाँ के सब नर-नारी—
आमिष-भक्षण सुरा-पान में,
रत रहते निशि-नृत्य-गान में।
भारत मे जो भोग-भीति है,
वही यहाँ पर सहज रीति है।
आर्य-नीति में ध्येय त्याग का,
यहाँ मदिर रस रजस-राग का।
यहाँ रसीली भोग-विभा है,
झल झल विद्युत् ज्योति-प्रभा है।

प्राची-पांत भी पश्चिम में तो, करते रैन बसेरा हैं;
और पूर्व के अरुणाचल पर, लाते सदा सबेरा हैं।

पर जिसने माधव की मुरली—
कहीं तनिक भी होवे सुनली।
उस वंशी की तान, कान में,
देती मधु-रस-दान आन में।
सुख-सजीवन स्वर में भरके,
नन्दन-मधु कानों में ढुरके।
एक बून्द भी इसी अमृत की,
एक झलक भी पर-हित-व्रत की,
पड़ती जिसके अन्तर-घट में,
झलके जिसके मानस-पट में,

रोम-रन्ध्र जीवन से भरते,
भागी के दृग-द्वार उघरते।
तुमको भय क्या मोहन भय्या,
रखवाला है कुँअर कन्हैया।
निर्भय विचरो विजयी गान्धी,
तुमने सत की कठी बान्धी।

मोह-अजिर के शुष्क धान पर, कब टिकता पंछी वन का;
राज हंस को मानस रुचता, चातक गाहक निज घन का।

अंकुर शुद्ध अहिंसा-तरु का,
सहज सुधा-साधन जो नर का,
शिशु गान्धी के उर-थाले में—
निकल चुका था उजियाले में।
अब उसमें कुछ किशलय झलके,
लगे खेलने वे हिल-डुलके।
पीड पराई मनमें लगती,
सरल हृदय में करुणा जगती।
ये फैशन की चाल-ढाल में—
आने को थे मोह-जाल में।
पर जैसे ही खर्च बढ़ाया,
ध्यान इन्हें अग्रज का आया।
"दादा के श्रम-विन्दु गिराकर,
मैं करता रस-भोग यहाँ पर।

हाय. निठुर गान्धी-कुल-घातक,
जोड रहा मैं बैठा पातक!

सारे कुल का पालन-पोषण, कमा कमा अग्रज हारे,
कौन यत्न से जाने घर को, चला रहे हैं बेचारे।

इधर साहबी ठाठ जँचा कर,
मैं बैठा रस-हाट रचा कर।
आया त्रिद्या पढ़ने उजली,
बीन रहा मैं अन्धा गुठली।
वे रसाल से अग्रज मेरे,
स्नेह भरे राघव के चेरे,
मनमें घर की ममता बहती,
चिन्ता उनको घेरे रहती।
पिता सरीखे कोमल भय्या,
बाट जोहती होंगी मय्या।
एक एक दिन गिनती होंगी,
नई मिठाई चुनती होंगी।
पति-प्राणा कस्तूरी ऐसे,
जाने जीती होंगी कैसे?
और यहाँ मैं भूला दुर्जन..."
शिहर उठे पीडा से मोहन।

हृदय हार के मोती धीरे, मोहन लगा गँवाने यों,
भोले, तेरा हार चुरेगा, हमें जँची यह जाने क्यों?

फिर ये रहने लगे अकेले,
स्वयं झेलने लगे झमेले।
भोजन इनका बना पहेली।
इनके परिचित सखा सहेली—
सब इनको समझाते रहते,
आमिष के गुण गाते रहते।
सारे वे पच-पच कर हारे,
डिगे न मोहन धीर हमारे।
कहते वे—"यह शीत देश है,
यहाँ खाद्य यह, यही वेष है।
देश-रीति से अगर भगोगे,
सरल विदेशी! जी न सकोगे"।
ये विवाद को नहीं पालते,
बता प्रतिज्ञा उन्हें टालते।
सुहृद खीझ तब हँसी उड़ाते,
तीव्र व्यङ्ग्य के बाण चलाते।

रह कर ऐसी विषम दशा में भोजन कष्ट उठाते थे,
घोर-घटा में ये चपला से, न्यारी छटा दिखाते थे।

ज्यों लंका में रहे विभीषण,
सभी जगह बसते नर-भूषण।
अतः यहाँ भी शाकाहारी—
रहते थे कुछ नियमाचारी।

बना एक था उनका परिषद,
सुधी साधु थे कई सभासद।
मोहन ने जब देखा-भाला,
इस परिषद को ढूँढ निकाला।
शीघ्र यहाँ के सभ्य बने ये,
कार्य-समिति में गये चुने ये।
यहाँ पुस्तकें मिताहार की—
संयम-विधि की सदाचार की,
मिलीं इन्हें पढ़ने को पुष्कल,
खिला सुजल से श्रद्धा का फल।
विविध परीक्षण फिर भोजन के,
किये इन्होंने तन-शोधन के।

यहीं नियति के इङ्गित से कुछ, अन्तर्दृष्टि हुई इनकी;
अगर समय पर मिले सलिल तो, खिले सुमति-कलि तन-मन की।

शाकाहारी एक सुधारक—
जो था काफी बड़ा विचारक,
विविध भाँति भोजन विश्लेषण—
करता था वह विविध विवेचन।
कहता वह,—"अंडे के रस को,
कहे न कोई आमिष उसको।
उसमें हिंसा-क्लेश नहीं है,
उसका भोजन उचित सही है।"

जब यह तर्क सामने आया,
एक बार मोहन को भाया।
पर जब इनने हृदय टटोला,
कोई धीमे स्वर में बोला—
"मोहन! मोह न कभी बढाना,
युक्ति-भँवर में फँस मत जाना।
सदा साधते रहना व्रत को,
अपनी जननी के अभिमत को।

सहसा अन्तर में माता की पुण्यमई प्रतिमा प्रकटी,
मानो दृग-पट खुले अचानक मोह-नींद पल में उचटी।

पावन चन्दन तिलक लगाये,
दाये कर को तनिक उठाये,
ज्योति-खचित जननी की प्रतिमा-
भक्तिवेप में गौरव-गरिमा,
देवि कहें या इन्हें मानवी,
मंगल-तोया गगन-जाह्नवी,
मोहन ने माता को देखा,
मानो सौम्य वृत्ति की रेखा।
सुना, खडी यों आकुल स्वर मे,
मानो मा कहती है घर मे -
"आज भोर ही मेरे घर में,
हुआ शकुन क्या प्रभो अजिर में ?

किसी नीड़ से भ्रडा छूट कर ,
हाय यहा यह अंड फूट कर ।
किस पंछी का आंगण उजडा ?
यह विनोद किस मा का बिगड़ा ?

दूर देश है, एकाकी वह, कुशल रहे मोहन मेरा ;
हम निबलों से दूर प्रभो ! वह, तेरा तो घट घट डेरा ।

बाट जोहते हम सब उसकी ,
शरण गहें प्रभु, बोलो किसकी ?
हम हैं जब मिष्ठान्न बनातीं ,
याद बहुत मोहन की आती ।
भोजन जब मैं उसे कराती ,
नेह-क्षीर भर लाती छाती ।
वह फिर दूना नेह बढाता ,
रस-वर्णन से नहीं अघाता ।
कहता-"जाने माँ ! क्या करती ,
दाल-भात में मिश्री भरती ।
माँ ! तेरे हाथों को जस है ,
भोजन में भर जाता रस है ।"
थाली में पक्वान्न सजाके ,
माँ नित हरि का भोग लगाके ,
कहती होंगी—'अन्तर्यामी ,
सुखी रहें सब बालक स्वामी ।

कौन निहोरे भरता होगा ? मोहन बड़ा लजीला है ;
अधभूखा वह सोता होगा, मेरा लाल हठीला है।

मैं ही उसको सदा जिवाती,
बहुओं को भी नहीं पठाती।
बहुयें मेरी सभी भली हैं,
बड़े घरों की पली लली हैं।
भूरि भाग्य ये मुझे मिली हैं,
आङ्गण में शुभ-कली खिली हैं।
पर यह माँ का, हृदय बावला—
चैन न लेता है उतावला।
वह विदेश है, सभी पराये,
कैसे होगा कौन बताये ?
क्या खाकर वह सोता होगा ?
कभी अभाव न उसने भोगा।
यों ही है वह रहता दुबला.
करूँ जतन क्या प्रभु, मैं अबला ?
प्रभु नटवर घनश्याम मुरारी,
लाज तुम्हें हे राम, हमारी।

देव ! तुम्हारे चरणामृत से, मुँह न कभी बालक मोड़ें ;
भोले निज कुल-धर्म रीति को, कभी न माया वश छोड़ें।

यों मोहन की सुघर कल्पना—
देख रही थी माँ का सपना।

तनिक हँसी अब इनको आई,
भक्ति-भावना मधु भर लाई।
जननी ने नव ज्योति जगाई,
नई लहर मानस में आई।
सूर्य सरीखा यह क्या देखा!
मिटी हृदय से संशय रेखा।
किस प्रकाश की किरण टूटकर,
या रवि-रथ की नेमि छूटकर,
पड़ी हृदय में सहसा आकर?
चमका अन्तर-ज्ञान-गुणाकर।
प्रेम-प्रभा की पहली झाँकी,
परम चक्र की द्युति-गति बाँकी,
धन्य भाग, मोहन ने निरखी,
ज्ञान-सूत्र की मणिमय चरखी।

अमित मोह में हँस कर मोहन, बोले—'मेरी ये जननी—
खाने देंगी अंडे? मुझसा, मिले विरल ही बुद्धि-धनी।

शुद्ध निरामिष भोजन करना,
सुरा सुन्दरी से नित डरना।
यह व्रत है अम्बा के मन का,
धर्म वही जो इच्छित उनका।
अर्थ सत्य वह दिये वचन का—
जो लेने वाले के मन का।

वाणी है उपकरण अधूरा,
भरे शब्द में भाव न पूरा।
प्रति-पक्षी की हृदय-भावना—
माने तब हो वचन-साधना।
रे नर ! यदि इस हेम-नियम को,
? ान चले तू तज भय-भ्रम को;
युद्ध-सन्धि में, राजनीति में,
विविध राष्ट्र-व्यवसाय-रीति में,
व्यक्ति व्यक्ति में भरे मधुरता,
बन्धु-भाव की बढे प्रचुरता।
करे न नर का स्वार्थ भाव जो, अर्थों की खैंचातानी;
घर घर बिखरे न्याय-चन्द्रिका, घट जावें कष्ट-कहानी।
मोहन ने प्रभु-इङ्गित पाया,
न्याय-मान यह उनको भाया।
मान-दण्ड यह ऊँचा कितना!
सुन्दर उतना, सच्चा जितना।
न्याय-तुला जब ऐसे तोले,
घट-घट में प्रभु-वाणी बोले।
सत्य, अहिंसा या संयम को,
सदाचार के किसी नियम को,
चले मनुज जो पकड एक को,
तथा न पथ में तजे टेक को,

उठता गिरता चढ़ता जावे,
राह न छोड़े, चलता आवे,
उसी नियम के केन्द्र-बिन्दु में—
ज्योति मिले नित उसी इन्दु से,
रह न सके फिर-त्रुटि विकास की,
कमी कहीं भी मृदु प्रकाश की।

अमर नियम जो सदाचार के, नाम-भेद उनमें केवल;
रजत-हेम-पात्रों में निर्मल, सबमें उज्ज्वल गंगाजल।

एक बार मोहन लन्दन में,
एक निरामिष भोज-भवन में,
भोजन करने बैठे जाकर,
रहे देखते पर सकुचाकर।
एक प्रौढ महिला ने इनका—
भाव लखा संकोचीपन का।
उसने हँस सकोच घटाया,
प्रश्न किया अरु परिचय पाया।
उसने भोजन-भेद बताकर,
बिन अंडे के खाद्य जताकर,
इनके मन का खेद हटाया,
बात-चीत में इन्हें लगाया।
फिर इनको निज भवन बुलाकर,
मेल बढ़ाया खिला पिला कर।

अरु अपनी लड़की से इनका—
लगी मिलाने मेला मन का।

तरुणी कन्या यौवन-मणि से, लगी रिझाने मोहन को,
चन्द्र-किरणसी मुग्धा-गौरी, कस्तूरी के उर-धन को।

धन्य वही नर-वर बड-भागी,
जिसकी मति न काम अनुरागी।
भट कुसुमायुध मन-उपवन में,
क्रीडा करता मानव-तन में।
यौवन-माणिक-लुब्ध मनोभव—
भव में लाता आयुध अभिनव।
देखो मोहन, मनसिज आया,
रूप गन्ध रस-सेना लाया।
ओ मनोज, मन-विपिन-विहारी,
मदन, तुम्हारी चितवन न्यारी।
हे अनङ्ग, रस तुम विन रीते,
रति-पति, तुमने त्रिभुवन जीते।
ये प्रसून, पिक-रव, मधु-प्याले,
नर-नारी नव यौवन वाले,
शरद विभा, ऋतुपति घन सावन
उषा-राग मधु-वन मनभावन।

खग-कुल करता उषा चाटुता शिखिनि रिझावे नवघन को,
चन्द्र-चकोरी कुन्द-सुरभि लें, कमल लखें प्राची-धन को।

ऋतुपति की मधु-यौवन-प्याली
कलियां अलि-कुल पर मतवाली।
रूप-रंग के रसिक चितेरे,
रस-साधन सब तेरे चेरे।
राग-माधुरी यह कण-कण की,
सुख-हरियाली त्रिभुवन-मन की,
रूप-लालसा मुग्ध नयन की,
केलि-कामना प्राणी-जन की,
तरुणाई की मिलन-कहानी,
नृत्य-गीत-लय-स्वर-मधु वानी,
हे प्रवीण! ये कला तुम्हारी-
मनहर मादक मीठी सारी।
द्वन्द्व-दोह अरु विग्रह भव का,
विभव, कलह, सुख-दुख मानव का.
सुरस, विरस, ममता, सुत-जाया,
रागादिक सब तेरी माया।
मदन! तुम्हारी शर-क्रीड़ा है, मधुर, भयावह प्रलयंकर;
सम्मुख रण में तुमको जीते, कभी कहीं कोई शंकर।
जो जीते वह मृत्युञ्जय है,
चेरी उसकी सदा विजय है।
वह पुरुषोत्तम भव-भय हारी,
नर-तनु-धारी शिव-त्रिपुरारी,

महा महिम वह मुक्त विरागी ,
पुरुष सिंह संसृति-रस-त्यागी ।
वह धरणी का धर्म-धुरन्धर ,
शक्ति-सिन्धु जग-वन्धु पुरन्दर ।
स्वागत, ऐसे गुण-वल्लभ का ,
करो हृदय मे नर-दुर्लभ का ।
जय कलि-मल-तम-रिपु-कर-माली,
विश्व वन्द्य विकसित-वलशाली ।
सुभट-मुकुट जय मन्मथ-मर्दन ,
सकल अमगल-मूल-निकन्दन ।
अनघ अचल अविकार अनामय ,
वह भव-भूषण दूषण रिपु जय ।

शूर मार को मार भगावे, नर वह सुर-पति से बढकर ;
उस निर्भय के अमर विरुद से आकुल अम्बर का सुर सर ।

पचवाण ! क्या कहते बोलो ?
पहले अपनी ताकत तोलो ।
वीर अग्रणी तुम हो माना ,
जूझे तुमसे कौन सयाना ?
खडा सामने पर यह भोला ,
दीख रहा जो तुम्हें अकेला ,
एकाकी तुम इसे न मानो ,
शक्ति-केन्द्र सा इसको जानो ।

सत प्रहरी को हृदय जगा कर ,
प्रिया-प्रेम की ढाल लगा कर ,
व्रत के लौह-कवच को पहने ,
यह लन्दन में आया रहने ।
इस पर भी यदि तरुणी-तनकी ,
जग मग द्युति यह ताडित वदन की,
दृग चौन्धे, कह रस की बातें ,
तथा चले चितवन की घातें -
पर मदमाते वार व्यर्थ हों, कट जावें दृग की घातें ,
आर्य-वधू के शील-अयन वे नयन अड़े, लरत, रण-राते ।
इधर रूपसी मेम नागरी -
नृत्य—कला—रस—रूप-आगरी ,
जब जब थी मोहन से मिलती ,
कुन्द-कली वह हँसती खिलती ।
जब बाला ने प्रणय दिखाया ,
वर विचार मोहन मन आया ।
"प्रेम-पगी पत्नी पति प्राणा ,
मुझे मिली गुण-शील-निधाना ।
जीवन-सरि पुण्यामृत बौरी ,
वह मेरी कस्तूरी गौरी ।
ब्याह हुआ यदि बाल-वयस में ,
दोष नहीं कुछ मेरा इसमें ।

इस बाला की मन-मधु-धारा ,
बढी समझ कर मुझे कुँआरा ।
मैं कायर सकोची मन का ,
काम यहा था क्या उलझन का ?

यदि मैं परिचय के दिन इनसे लग्न-कथा कहता अपनी ,
कुछ विनोद हो लेता, पर यों अधिक न खिचती यह रमनी ।

हुआ अभी क्या बात वही है
उजला दिन है रात नहीं है ।
चिट्ठी लिख स्वीकार करूँ सब ,
अपना पिछला भार हरूँ सब ।
मै सीमा में सदा रहा हूं ,
मोह-नदी में नहीं बहा हू ।
यहीं जान वह भगिनी प्यारी -
क्षमा करेगी मुझे कुमारी ।
नहीं वासना थी इस मन में ,
फँसा रहा मैं कायरपन में ।
थी तो त्रुटि पर रही अधूरी
यही जान कर प्रिय कस्तूरी -
क्षमा हमें दो देवि दानिनी ,
स्वजनि, सहचरी वधू मानिनी ,
सुपथ गामिनी, भव्य भामिनी ,
स्वार्थ त्यागिनी, पुण्य-रागिनी ।

दिव्य दीपिके स्नेह-भरी हे, तिमिर हरो, मृदु ज्योति भरो,
एक बार हिचका हूँ पथ में अर्द्धभागिनी क्षमा करो।

धन्य धन्य हे भावुक विनई,
शुभ महिमा मय मनसिज-विजई।
धन्य धन्य गान्धी-कुल-दीपक,
नैतिकता के निरुपम रूपक।
'व्रती भगाया काम-नक्र को,
मानो मोडा शक्र-वज्र को।
अमर-नाग-नर-ऋषि-मुनि ज्ञानी,
हारे जिससे साधक-मानी,
तुमने उसको दूर भगाया,
इन्द्र-हृदय में भय उपजाया।
कलि में सुर-पति शोक हीन था,
भय-विहीन हो, भोग-लीन था।
पुनः दीन अब लगा झाकने,
तेरी मति-गति लगा आकने।
देख पितृ-गण मुदित तुम्हारे.
कहते—'कुलधर! धन्य हमारे।'

कहा कृष्ण ने 'साधु', बुद्ध से—परिचय जान तुम्हारा;
ताक रहे हैं राघव-सखि तो अब तक मुखड़ा प्यारा।

ज्ञान-कली मोहन-मधुवन की,
लगी फूटने नव जीवन की।
कुछ सुहृदों का कथन मान के,
इनने गीता पढ़ी ध्यान से।
प्रभु ईसू की प्रेम-कथा को-
पढ़ा हृदय की पुण्य व्यथा को।
सुनकर प्रभु के गिरि-प्रवचन को,
स्वर्गिक शान्ति मिली मोहन को।
लख गौतम का चरित सुहावन,
सुगत बुद्ध का मानस पावन।
जो श्रम-शोषक, तोषक तन का,
सुख पोषक नित मानव-मन का।
त्रिविध ताप-त्रासक गुण-कारी
संसृति-शासक कलि-मल-हारी।
लख अमरों की ज्योति माधुरी,
टिक कहा फिर कलि विभावरी?

यों मोहन के हृदय क्षेत्र की धर्म-धान की हरियाली
इन मेघों की मधुर धार ने मानो यह खेती पाली।

भाषण देना, बुद्धि दिखाना,
त्रिविध भांति की बात बनाना,

आ न सका था अब तक इनको,
तज न सके संकोचीपन को।
अधिक जनों में आते जाते,
शिशु सम अब भी सदा लजाते।
और सभा में भाषण देना,
मानों था प्राणों का लेना।
देह कापने लगती थर थर,
धक धक करता था दिल भीतर।
इनके सरल लजीलेपन ने—
इन्हें लगाया मौन मनन में।
सत्य गिरा का मूल्य बताया,
मितभाषी ने सयम पाया।
मिली शुद्ध परिमार्जित वाणी,
जिसे श्रवण कर सुधरें प्राणी।

मौन भरा मोहन-मानस में रमी सुधा-प्लावित वाणी,
निकली उससे शब्द—जाह्नवी तारण-तरणी कल्याणी।

जब लन्दन में पढते रहते,
तीन वर्ष मोहन को बीते,
हुआ एक सम्मेलन भारी,
जुडे बहुत से शाकाहारी।
पोर्ट सौथ सागर का बन्दर,
सभा जुडी थी उसके अन्दर।

गये वहा आमन्त्रण पाकर
गुण-गण-सागर मोहन नागर।
एक मित्र कुछ छिछले मन के -
वे भी साथ गये थे इनके।
एक भवन में दोनों ठहरे,
लेख नियति के होते गहरे।
यहा नित्य जब आवे रजनी,
वहु विधि खेलें नागर-सजनी।
यह पश्चिम की भावुक शैली,
ग्राम-ग्राम घर-घर में फैली।

खान-पान में नर-नारी मिल, निशि में निश्छल मोद भरें,
रास-हास सगीत ताश से हँस-हँस विविध विनोद करें।

इसी लिये जब सन्ध्या आली,
लेकर नभ-महलों की ताली,
धूलि-धूसरा, सुघर सावली,
निशि रानी की सखि उतावली,
भाग गई, प्रासाद सजाके,
अमित भाति के दीप जलाके।
इसी समय में मोहन भोले -
अरु वे उनके सुहृद सजीले,
क्रीड़ा रत थे प्रमुदित मन में,
हास्य-छटा थी खिली सदन में।

पत्नी-व्रत की प्रभा दिखाई,
रघु-कुल-मणि की याद दिलाई।
भोग-नदी के तट पर बस कर,
हुये न गीले मुनिवर, क्षण भर।
व्रती, धन्य है तेरे व्रत को,
रक्खा पत को मां के मत को।
आन-मान का प्राण शान से—
किया प्राण ज्यों सदा ध्यान से।
कनक-कोट अरु विभव-सरोवर मदिरा-सरिता जहां बहे;
जहां परी सी प्रमदा विहरें, तीन वर्ष तुम तहां रहे।
सुरा सुन्दरी सुख अरु सोना,
जहां इन्हीं से कोना कोना
चमक रहा हो इन्द्र धाम सा,
महक रहा हो कुसुम काम का।
जहां लालसा भोग-चकोरी,
यौवन माती रूप-किशोरी,
उभरे उर की मनहर मणि को,
केलि कला मिस यौवन कणि को,
दिखा रही हो; झूठी रिस से,
व्रीड़ा छल युत क्रीड़ा मिस से।
जहां रसीली तरुणी ललना,
च्यवन रूप की मलिना छलना,

नयन बाण धर गर्व विजय का,
करे जहा आखेट हृदय का।
'वसन साज में तन की शोभा,'
जहा सुरुचि मिस नर हो लोभा।
जहा गगन में जैसे रवि-शशि, शाका हारी हो विरला;
जहा सुरा का सहज पेय हो, रति सी सुन्दर हों महिला।
रस माणिक मे, काम कनक से,
लोभ रत्न की सुघर चमक से,
तृष्णा मणि से मोह हार से,
विविध विभव के हीर-भार से,
राज भोग के अमित जवाहर
मुक्ता–नीलम–पन्ने सुन्दर,
इनसे सारा नगर भरा हो,
माया से प्रति भवन घिरा हो।
राग भावना कर धर प्याला,
नाच रही हो ज्यों मधु बाला।
ऐसे पुर में वर्षों बस कर,
निर्मल रहता है जो नट वर,
धन्य सुधी वह सुरतरुवर सा,
सर में जो सरसिज सा सरसा।
जो तारों को विधु सा भखरा,
जो हिरण्य सा तप कर निखरा।

"हैं है लडके विना विचारे -
कब से छूने लगा अँगारे ?"
हुआ चेत सुन चटपट क्षण में,
हार सके कब मोहन रण में ?
कस्तूरी ने ढाल लगाई,
प्राण—नाथ के आडे आई।
पति—व्रता पति—प्राणा देवी,
सब शुभ मगल तब पद-सेवी।
अमित भाव मोहन मन छाये,
भवन छोड झट बाहर आये।
लखा प्रिया को प्रणत मोद में,
लज्जित, शिशु को लिये गोद में।
सुर-सरिता सी परम पुनीता,
रमा, उमा, गीता या सीता ?
वेद ऋचा वह लोक-पावनी,
कहा इधर यह मलिन वारुनी ?

ज्योति-शिखा सी सती संगिनी जिस भागी का हाथ गहे;
रहें राम भी उसे खोजते ऋद्धि सिद्धियां साथ रहें।

इसी भांति गान्धी-कुल-भूषण -
शशि-पूषण सम वे गत-दूषण -
तीन वर्ष तक यहा चमकते,
पढने के मिस रहे दमकते।

मीन-केतु-मिस राहू--केतू,
कभी कभी आकर यश-हेतू -
क्या लेते वे शौर्य-परीक्षा ?
दुष्कर होती निज तन-रक्षा।
हृदय लगाकर अभय विनय से,
पढते मोहन व्यास-तनय से।
भाव भावते भाति भाति के,
भरते मन में विभव शान्ति के।
धर्म-धान धीरज-धन धरते,
कुशल वाणिक मन-आढक भरते।
सरल साधु सुधि सौम्य शुभाकर,
विगत-गर्व गुण-ज्ञान-उजागर।
नव उपवन में गुण-प्रसून चुन, सुरभित जय-माला पहने;
हीरक-मुक्ता-मणि के इतने पहन लिये कितने गहने!
रति-पति की उस दुर्गम गति-पर,
यतिवर, तुमने सहसा यतिधर,
अति गर्वी को जीता धृतिधर,
मान विरति ने पाया क्षिति पर।
प्रीति-रीति की नीति निबाही,
कीर्ति बढाई तैने राही।
मुक्ति-शुक्ति-हित तजा भुक्ति को,
धन्य धन्य तव योग-युक्ति को।

तभी भवन की तरुण स्वामिनी,
पहुँच खेल में मिली भामिनी।
प्रमदा यह थी हास्य-प्रवीणा,
कनक-लता रति-पति की वीणा।
दृग रस-बौरे रूप-चटोरे,
अरुण अधर थे मदिर कटोरे,
रसालाप-मिस रूप-अटा की छटा दिखाती थी रमणी,
हँसके तरुण हृदय को यौवन-सुरा पिलाती थी तरुणी।
यौवन-धामा यह अभिरामा,
मधु-यामा सी श्यामा भामा,
अरु मोहन के रसिक मित्र वे,
लगे आकने चुहल-चित्र ये।
काम-कली अधखिली कामिनी,
उधर सजी थी मधुर यामिनी।
सोम-रजत-घट लिये सुन्दरी,
नभ-गवाक्ष में सुघर शर्वरी,
मधु-बाला सी हो मतवाली,
झूम रही थी बेसुध आली।
सोम-सुरा को ढुला रही थी,
बही चन्द्रिका बिखर बही थी।
राग रसीली, निशा नशीली,
युवति नवेली, अर्द्ध लजीली,

आंख कटीली, चाल चुटीली,
देख गात अनुकूल सजीली

मन आया फिर हृदय निकेतन, पिछला वैर चुकाने को,
रमणी के अधरों पर बैठा, जमकर तीर चलाने को।

मीन-केतु ने मेन्ध लगाया,
तान कान तक धनुष चढाया।
सँभल सँभल हे मोहन मानी,
सत्यसन्ध, संयम-विज्ञानी।
हे अकाम, अविकार, अभोगी,
तरुण वियोगी, अद्भुत योगी,
ज्ञान-गुहा के भोले नाहर,
लख, निज रद-नख धाकर बाहर।
छली अहेरी दल-बल लाया,
सो मत मृगपति, रति-पति आया।
करिवर, विचरो देख भाल के,
छिपे अहेरी गर्त्त डाल के।
मृग न भूल लख कर हरियाली.
वह व्याधे की चली दुनाली।
लख, वह सनसन करता आया,
सँभल, मदन ने वाण चलाया।

मोहन विकल हुये, पर सहसा चमक पड़ी मानो बिजली,
उसी सुहृद के पापी मुख से-प्रभु की मृदु वाणी निकली।

इस भारत के राका शशि की चरित-चान्दनी बिखरी है ;
उजली चादर ओढ़े सब की श्याम यामिनी निखरी है।

चरित बहुत हैं तीन वर्ष के,
सबका वर्णन कौन कर सके ?
नये परीक्षण सत्य-शोध के
करे प्रतिक्षण जो प्रबोध के।
जिसका पल पल मूल्यवान हो,
कृती व्रती जो भाग्यवान हो।
घड़ी-घड़ी की नई कहानी,
लिखता हो जो कोविद ज्ञानी।
जो रहता हो व्यस्त धाम में,
अपने जाने सहज काम में।
सहज कर्म उस महाभाग का,
होता पर वह अन्त त्याग का।
अर्थे चरित सब किसकी बानी,
कौन धरा पर ऐसा ज्ञानी ?
कथा तरणि का लिये सहारा,
क्यों न तरे पर कवि बेचारा ?

पुण्य-स्रोत पीयूष भरे हो! कहूँ 'बहो' या कहूँ 'रहो',
तुम्हें कष्ट क्या क्रीड़ा तेरी निबल करूँ क्या तुम्हीं कहो ?

सफल हुये थे पढ़कर मोहन,
किया ज्ञान का सच्चा दोहन।

शुरू यहीं पर हुई साधना,
चढी विहितश्रुति धर्म-भावना।
रहे छात्र बन कर के गान्धी,
तन-मन से विद्या आराधी।
खोज ढूढ कर अच्छी बातें,
चुन चुन कर ये गुनते जाते।
तन को तापा मितव्ययी ने,
सही यातना भोग-जयी ने।
कठिन कष्ट सह नेम निवाहा,
विविध जनों ने सदा सराहा।
उगी हृदय में शुद्ध अहिंसा,
मिली विनय की पावन शिक्षा।
मातृ-स्नेह के दिव्य छत्र ने -
पत्नी-व्रत के महा मन्त्र ने -
सावधान कर इन्हें बचाया, दिखलाया सीधा रस्ता,
रहा हृदय में सदा महकता राम नाम का गुलदस्ता।
जैसे धूप तथा परछाहीं,
साथ रहें डाले गलबाहीं।
उसी भाति सवेदन-पीडा,
करती थी मोहन से क्रीडा।
तीव्र व्यथा ये झेला करते,
मानो दुख से खेला करते।

संवेदन का शहद सलोना,
भरा उसी में दिल का दोना।
मधु लेकर उर-कूप, चमन का,
मधुर हुआ था अणु-अणु तन का।
कर्म वचन मन तीनों सुधरे,
हुये प्रेम के मधु से मधुरे।
पर-पीड़ा की आँच जले जब,
मन-मिश्री की डली गले तब।
इस मधु-रस से जाय मिठाई,
और बने फिर कर्म-मिठाई।
यही मिठाई और भाव-जल, सजा विनय की थाली को:
नारायण के भोग लगा नर, बजा प्रार्थना ताली को।
नर-जीवन का अर्थ यही है,
और व्यर्थ सब, यही सही है।
नये मलिन बाजार लगाके,
लोभ-मोह की सैन्य जगाके,
इन्हें समझ कर अच्छे गाहक,
करे चाटुता क्यों तू नाहक?
ये गाहक हैं बड़े ठगोरे,
मानव! सँभलो, उठो, जगोरे।
उजले कपड़े, मोती, गहने,
चमक भरे जो इनने पहने,

हैं ये माया-निर्मित नकली,
भूल न इनको समझो असली।
क्यों तू इनके भरे निहोरे?
ये तेरा मन-माणिक चोरें।
सुख मेधा प्राणों के गाहक,
ये हैं कलि-मल-दुख के वाहक।
खिड़की को तो रहने दे तू, उठ ढकदे अपनी हटिया;
चोरें ये धन-धान्य सम्पदा, बच न सके तेरी खटिया।
पर ये ठग सब बहुत चतुर हैं,
ऊपर से ये बड़े मधुर हैं।
मीठी-मीठी बात बनाते,
सब्ज बाग हैं बहुत दिखाते।
सुरा पिलाकर, रूप दिखाकर,
राग-रंग का स्वाद चखा कर,
कुछ चमकीले पत्थर देकर,
चुपके से हृद-मुक्ता लेकर,
धूर्त्तराज ये चल देते हैं,
सौख्य-साज सब ले लेते है।
सुधा शोष के सब मानव का,
मद्य पिलाते हैं दानव का,
सुधा मलय मधु मणि के बदले,
मिलते है कुछ पत्थर उजले।

पारिजात–सुर–तरु धन लेके,
निष्ठुर जाय, दिठौना देके।
सौदे के मिस साफ लूट है, क्यों लुटता भोले मानव?
लख मेधावी मोहन को तू, हार गया जिससे दानव।
मोहन अपने छात्र-काल में,
फँस न सके थे किसी जाल में।
साधु–संग–सुरसरि–पय–पावन,
मिला उन्हें नित कलुष-नशावन।
मिले बहुत से ऋषि मेधावी,
धर्म–विवेचक, द्रष्टा, त्यागी,
देश देश के वक्ता ज्ञानी,
गूढ़ तत्व के दर्शक ध्यानी,
वेदविज्ञ, शब्दार्थ–विधाता,
विधि-निषेध जीवन के ज्ञाता।
हेमचन्द्र नारायण जैसे,
सुधी सरल कवि लेखक ऐसे,
जिनका मधुर हृदय मन मोहे,
उन्हें वस्त्र-भूषण क्या सोहें?
जटिल नारियल बाहर ऐसा,
भीतर मीठा मनहर कैसा!
मलय, हेम, मणि, मृग-मद, मुक्ता, इन्हें लाभ क्या सज्जा से;
ढकें तुच्छ निज हेय तुच्छता, मरें अन्यथा लज्जा से।

ओछी पूँजी, पानी छिछला,
सदा पात्र में ज्यादा उछला।
विना हुये का गर्व दिखाना,
अपना असली रूप छिपाना.
चमक दमक से दोष दवाना,
है लघुता को अधिक बढ़ाना।
चाहे जितनी होवें त्रुटिया,
सदा सलोनी अपनी कुटिया।
दवा दोष की, जाहिर करना,
मल को—विष को वाहिर करना।
दासों का भी दास बने जो,
निज को सब से तुच्छ गिने जो,
धन्य वही जन-जन का चेरा,
ज्योति-पुंज वह मधु का घेरा।
कभी न नर वह गाल बजाता,
नहीं गर्व—श्रृङ्गार सजाता।
तन तरणी में प्रभु से तुमको तभी सुमति पतवार मिली,
इसे बोझ से हलका रख कर, खेले जब तक ज्योति खिली।
युवक बहुत से भारत-वासी -
व्यापारी या विद्याभ्यासी -
जो लन्दन में आकर रहते,
आमिष-मदिरा में जो वहते,

वे जब पढ कर भारत जाते,
अपना उज्ज्वल चरित दिखाते।
ले प्रमाण में पत्र यहा के,
'शुद्ध रहे हम' कहते जाके।
पर मोहन सा अति महान जो,
जिसे सत्य का महा ज्ञान हो,
शक्तिवान जो महाप्राण हो,
चरित विशद जिसका प्रमाण हो,
क्यों वह कालिख-भार बढावे?
छ्न-प्रमाण क्यो व्यर्थ जुटावे?
जिसका भीतर बाहर उज्ज्वल,
वचन—सिद्ध वह योद्धा निर्मल।

विश्व तेज है साक्षी जिसका जागरूक अन्तर पैठा;
महिमामय वह, भय क्या उसको? खेल लखे बैठा बैठा।

मोहन जब जब गये भोज में,
बचे रहे वे अलग मौज में।
आमिष तजते, खाते मधु फल,
सहज खाद्य जो मीठा कोमल।
पिया सुरा के बदले मृदु-जल,
सहज पेय जो नर का निर्मल।
सरल स्नेह भी मिला यहां पर,
तरल हृदय हैं नहीं कहा पर।

मोह मिला तो मिला प्रेम भी ,
लोह मिला तो मिला हेम भी ।
गुणी पारखी परख परख कर ,
चुनता माणिक निरख निरख कर ।
चुना सुमन-दल सौरभ वाला ,
इस गान्धी ने इत्र निकाला ।
छका यहा रस पीकर मधुकर ,
सफल तरुण था अब 'वेरिष्टर' ।

चल वकील ! अब भरतभूमि की करना सदा वकालत तू,
देख रहे कितने दृग देखें, कैसी लड़े अदालत तू?

कच की ज्यों संजीवन विद्या पढने आये लन्दन मे;
क्या शर्मिष्ठा तुम्हे भुलाती ? वसे सदा तुम मधुवन मे।
पुतली मां मिस भारत मां ने तुम्हें यहाँ पर भेजा है,
भेद यहाँ की न्याय-नीति का तुमने खूब सहेजा है।
करनी तुमको सदा वकालत न्याय-ज्ञान यह तेरा,
काम आयगा नित्य यहा की गोल नीति का घेरा।
ओ वकील ! लख देख रही है तुमको भारत-माता,
माँ को तुमसे आस बहुत है सत्य-न्याय के त्राता।
देखें, कैसी करो वकालत अधभूखो की-नंगो की ?
दर्प-दलित उन प्रभुता-पीडित, मानवता के अङ्गों की ?
करे वकालत नगो की वह जिसने अक्ल गँवादी हो,
मिले फीस मे भूख-प्यास अरु तन-धन की वरवादी हो।
भिखमगों की मुखत्यारी मे घर की सारी गाठ कटे,
लुटें विभव धन प्रभुता सारे, दिल के कट कट टूक बटे।

एक बार तू कहला मोहन। 'यह वकील दीनों वाला':
दीन-हीन फिर पहनादेंगे अपने प्राणों की माला।
वर्ण-भेद की भीम शिला-तल दब कर दलित विचारे,
बाट जोहते रक्षक, तेरी निर्धन हरिजन सारे।
अशन तोप का, वसन व्योम का, दीन-हीन अभ्यागत;
व्यथाभरी आहो से तेरा बहुत करेंगे स्वागत।
और देख वे कृषक तपस्वी भूखे नंगे प्यासे,
हाय क्षितिज को देख देख कर भरते दीर्घ उसासे।
मजहब भाषा वेष जाति के भ्रम मे भरमा भारत,
खोज रहा है सयोजक को हिन्द बहुत है आरत।
देख श्रमिक का विषम कोणमय तन-पिञ्जर का ढाँचा,
निशि दिन सूनी आखो से वह चला रहा है सांचा।
जो नर इनकी करे वकालत, कहा मिले भागी ऐसा?
अगर मिले तो, कहे किसे ये, पास नहीं इनके पैसा।
बिन माध्यम के व्यथा-कहानी प्रभु के न्यायालय मे,
कैसे पहुँचे करुणा इनकी विभु के सदय हृदय मे?
इन्हें नहीं आता कहना भी और न्याय की आश नहीं,
इनको तो बस सहना आता प्रतिपल इनने व्यथा सही।
हाय देख जगदीश्वर। इनने खोई तेरी निष्ठा भी,
क्रूर दर्प के आघातो से भागी प्रेम-प्रतिष्ठा भी।
सदियो के इस अनाचार ने किया इन्हें है रूखा,
निष्ठुरता के दाहानल से हृदय-सरोवर सूखा।
अविरल कष्टो की धारा ने इनका बोध बहाया,
शोषक ने भी इन्हें स्वार्थ-वश उल्टा ज्ञान सिखाया।
सोचा इनने पूर्व पाप-वश भाग्य मिला भूखा हमको,
भूले ये स्वेच्छा के श्रम को त्याग-प्रेम को शम-दम को।

प्रभु को करुणा-टेर सुनाना इनको नहीं सुहाता है,
जीर्ण-शीर्ण इस अपने तन का श्वान-भोग ही भाता है।
मान प्रतिष्ठा सम्भ्रम तज कर चर्म चाटना भावे,
स्वाद मिले तृष्णा का, चाहे किसी मूल्य पर आवे।

काया सूखी हृदय शुष्क है ज्ञान-मान-धन-धान जला
जला रही है चिता-वासना तन-पिञ्जर का काठ गला।
श्रद्धा-प्रेम विनय सब सबल जवनय्या पतवार जले,
दीनबन्धु ! इस अगम सिन्धु में फिर तो तेरी दया मिले।

उधर महल में तृष्णानल पर प्रभुता-दम्भ-कटाह चढा,
पकती उसमें भोग-मिठाई दलित-हृदय का तेल कढा।
खोज रही है भारत माता लिये हाथ में लकुटी
तुझे देख कर नयनों में कुछ आस-ज्योति सी प्रकटी।

वैश्य-नीति से बधा वत्स तो रँभा रहा है भूखा,
निशि-दिन दूहें भारत-गौ को सारा तन है सूखा।
धिक धिक उन बेटों का जीवन जिनकी जननी बन्धन में,
भला अगर वे जलें मुमूर्षु आग लगा तन-इन्धन में।

कोई भागी कृती जयी जो प्राणों की बोली बोले;
वही भले इस वणिक-पेच से जननी के बन्धन खोले।
दीन-हीन की मौन व्यथा को प्रभु तक जो पहुचावे,
कहाँ मिले वह ऐसा अरघा जो हृदयाम्बु चढावे?

बाहर भीतर अन्तस्तल तक जिसका अन्तर दर्पण सा
नाम-मात्र का भिन्न कोण वह हो जो प्रभु-हित अर्पण सा।
वेद-मन्त्र सा, यज्ञ-हविष सा, प्रभु-मन्दिर सा पावन जो,
सुरसरि-जल सा विशद वारिधर सावन घन मन-भावन हो।

तरल प्रेम के ज्योति-सार से पूरित हो मानस जिसका;
जले नित्य जो प्रभु-चरणों में ज्यों दीपक जीवन-रस का।

प्रभु का हो, पर प्रभु सा होकर, भव में भक्ति सिखावे जो;
पथ भूले को प्रभु-चरणों के पावन चिह्न दिखावे जो।
ऐसा माध्यम मिले भाग्य से वह ही काम बनावे,
दीन-हीन की मूक व्यथा को प्रभु तक वही पठावे।

महा शक्तिधर केन्द्र 'रेडियो' शब्द-धार विस्तारे वह,
शुद्ध-बुद्ध प्रभु-जैसा प्रभु तक, अपनी विनय प्रसारे वह।

कहो तरुण वैरिष्टर मोहन। क्या तुम जिरह करोगे?
दीनो की करुणा से क्या तुम प्रभु के कर्ण भरोगे।

कर बहस तू ऐसी मोहन। आँसू जिससे छलक पड़ें,
जलधि-धीर वे प्रभु भी सुन कर भाव-वीचि से उमड़ पड़ें।
भारत भर के नयनों का जल भर कर जल-धर सरसो,
उमड़-घुमड़ कर फिर हे बादल। विभु-मानस में बरसो।

लगा प्राण-पण जब तुम प्रभु से अड़ बैठोगे मोहन:
तुम्हें न टालें भाव-प्रवण वे प्रभु करुणा-घन उरधन।
सुधा लपेटी प्रेम अटपटी सुनकर विनय तुम्हारी;
भागे आवें मोहन माधव करुणा-सिन्धु मुरारी।

रहे देखती रमा चौंक कर, वीणा-लय रुक जावे,
खने पीतपट मुक्ता माला सहसा प्रभु उठ धावें।
ओ दीनों के नव वकील सुन, आभा चमके तेरी,
वैभव तुमको फिरे ढूढ़ता, ऋद्धि-सिद्धि हो चेरी।

न्यायाधीश दया-धर है पर, कोई उसे सुनावे भी,
कोई सच्ची सीधी लय में अपना दुखड़ा गावे भी।
प्रभु-पदाब्ज में ढुरकावे भी कोई हृदय कटोरा,
उस भागी का भाग भोगने वसुधा भरे निहोरा।
घट घट में है लगी कचहरी नभ के न्यायी नरपति की,
दुग्ध-सलिल को विलग करे झट ज्योति-कृपा त्रिभुवन-पति की।

ले मोहन, लिख अर्ज़ी-दावा, तन-मन-धन-के शोषण का
व्याज न चाहिये, पर भविष्य मे हो प्रबन्ध तन-पोषण का।

कहना प्रभु से वैर-शोध की—हमे न भावे प्रतिहिंसा
ऐसा वरदो तव गुण गावे और मिले भोजन-भिक्षा।
मधुर बाँसुरी बजा विनय की यदि तू कहदे इतना.
पल मे पूरी होवे आशा हमे चाहिते कितना।
बहुत बडा दरबार नाथ का माया जिसकी दासी है;
त्रिभुवन-भिक्षुक पेट भरे, वह अविनाशी सुखराशी है।
सर फिरोज बदरुद्दीनो तुम क्यो देखो मोहन?
पीकर छूछी छाछ विचारे करते शय्यारोहन।

दीन मर्त्य के दीपक है ये धुधले धुधले जलते
कहा तेज वह रवि का जिससे ज्योति-द्वार है खुलते?
कहाँ तुच्छ खद्योत विचारा, कहाँ कलाधर अम्बर का?
कहाँ कूप का मीठा पानी, कहाँ सुधा माधव-सर का?

ये वकील तो करें वकालत चान्दी की वेचारे,
तू वकील है दीनबन्धु का भव के भाग्य सुधारे।
कहाँ अर्क अरु, कहा कल्प-तरु, कहाँ वाम-पथ वेद कहाँ?
क्षुद्र अजा अरु कामधेनु मे नभ पताल का भेद रहा।

गिरा-गर्व की गिरी सी ऊँची ओट लगा अज्ञानी,
प्रभु-प्रतिमा को देख न पाते, वाणी के अभिमानी।
विनय-नीर से धोया-पछा जिसका हृदय-मुकुर है,
जलके उसमे प्रेम-कणी मिस प्रभु की मूर्त्ति मधुर है।

नीलाम्बर सा भव-रजनी मे विशद हृदय है जिसका,
पीताम्बर धर, शशि से बस कर, भाग्य बढाते उसका।
भारतवासी बाट देखते, जा तू उनके मन मोहन।
जा भारत के भाग्य-चन्द्र तू, जा अम्बा के आँचल धन।

सखा वन्धुगण परिजन पुरजन हेर रहे पथ तेरा;
जा गान्धी-कुल-कमल-प्रभाकर, हटा तिमिर का घेरा।
लख गौरी सी कस्तूरी तव शिशु को चान्द दिखाकर,
कहती—"लल्ला अव अपना भी लौटे शीघ्र सुधाकर।"
विन उन चन्द्र-वदन के भय्या मन मे और भवन मे;
जीवन-धन विन, सघन तुहिन-कण, उमडे वहुत सदन मे।
पर प्रकाश की प्रभा वढाता, निशि का सघन अँधेरा,
ऋतुपति है इस भव मे आता, पतझड़ ही का प्रेरा।

थोड़े दिन का रहे पाहुना तो वियोग कुछ सुखकर,
अगर उर्मिला जैसा आवे तो है भीषण दुखकर।
तुलसी तेरा भवन वनाऊँ गिरिजा माँ नित ध्याऊँ,
सकुशल पाऊँ प्राणनाथ को, अपना हृदय चढाऊँ।

आओ परसूँ पाँव तुम्हारे प्राणाधार प्रवासी।
हृदय विछाये हेर रही है वाट तुन्हारी दासी।
कहूँ और क्या उर-धन अव तो आओ मगल लाओ;
मै क्या जानूँ स्वागत-सज्जा आकर तुम्हीं सिखाओ।

निलज निगोड़ी मेमो की सव आओ वात सुनाओ;
भय क्या मेरे स्वामी हो तुम आओ हँसो हँसाओ।

पाणि-ग्रहण चुम्वन हूँ सुनती साधारण सी वात वहाँ,
शुद्ध सरल तुम, फिर भी पूछूँ, इतने दिन तुम वचे कहाँ?
(सुर-नर-मुनि-गण जिसे खोज कर हारे कर मति-दोहन;
वह भी वचा प्रिया राधा के मन मे छिप कर मोहन।
तुम सी पावन प्राण-प्रिया के मन-मन्दिर को तज कर,
क्यो मराल मानस से जाता किस पोखर मे सज कर?)
चमको मेरे उदयाचल पर, प्रभु पश्चिम से आकर,
नयनाम्वुज हैं आर्द्र ओस से आओ प्राण-प्रभाकर।

देख् क्या क्या नूतन फैशन सीखे तुमने लन्दन में,
सुना वहाँ के राग-रंग है रस भर देते जीवन में।
सुना वहाँ के नागर-गौरी नाचे हाथ मिलाकर
कर देती है मोहित नर को तरुणी सुरा पिलाकर।

सारी बातें अवगत थीं ये नाथ आपकी अम्बा को,
हाय दैव ने यहाँ न छोड़ा हम सब की अवलम्बा को।
तुम से साधु सरल को भी माँ वचन-रास जब बान्धे,
तभी खेत में भेजे तुमको व्रत का हल धर कान्धे।

आज कहाँ वे चिन्ता-हरनी सुरसरि तारन-तरनी,
गई स्वर्ग में वह सुख-करनी मङ्गल-भरनी जननी।
नाथ! तुम्हारी खातिर माँ ने कितने देव मनाये!
दान पाठ व्रत पूजा जाने कितने किये कराये।

अन्त घड़ी तक जननी को थी वह विधि याद तुम्हारी,
'सुखी रहे प्रभु भोला मोहन' कहती कभी न हारी।
"मुझे न पाकर शोक करे वह हे गोवर्धन-धारी।
एक बार बस मुखड़ा उसका लख लेती महतारी।"

पुण्यमई इन जैसी अम्माँ इस दुनियाँ में दुर्लभ,
सास कहाँ इन जैसी जग में हे प्राणों के वल्लभ!
परिजन दासी दास, कृषी को हिम-वर्षा ज्यों मारे,
अम्ब-विरह से हुये दुखारे सारे स्वजन हमारे।

भूल न सकती स्नेहमई को मैं पर घर की बेटी,
कभी न भूलें पल भर हो ले जो चरणों की चेटी।
पूज्य पिता से बड़े जेठजी शिशु सम स्नेह भरे हैं,
नई नई विपदा से वे भी रहते सदा घिरे हैं।
नाम तुम्हारा लेकर उनने जब हमको समझाया,
अपने जाने धैर्य बँधाया, पर था अधिक रुलाया।

आते ही हो यही सोचकर, लिखा नही है तुमको;
खुद अग्रज ने नही लिखा अरु रोका उनने हमको।
"है प्रवास मे यो ही विरही उसे न कुछ भी लिखना;
सह न सकेगा सरल हृदय वह भूल जायगा पढना।

बहुत अधिक वह माँ का प्यारा पूछेगा जब मिल के;
उसे कहूँगा क्या?" यों कहते उनके आँसू छलके।
'जब तक मोहन तू लन्दन मे आशा ही मे रहले,
मन के मिलन-मोद मे माँ से भय्या, सुनले कहले।

वहाँ अकेला है तू मोहन, अब तो कुछ न बताऊँ,
और अधिक क्या जब तू आवे मै दोषी बन जाऊँ।
जेठा हूँ मै क्या कर लेगा अनुज लाड़ले मेरे?
अरे यहाँ तो हम सब पोछे मिल कर आँसू तेरे।

मोहन तू बैरिष्टर बन कर आवेगा सजधज कर,
गई हमारी अम्ब कहाँ पर हम बच्चो को तजकर।
क्या न किया अरु क्या न मनाया, माँ ने तेरी खातिर,
बिना तुम्हारे दीना जननी रही रात-दिन आतुर।

तुझे देखकर सकुशल लौटा फूली नही समाती वे;
आङ्गण मे ना माती, प्रभु का बहुविधि भोग लगाती वे।
जब तू 'मय्या' कहकर मोहन माँ के पैरो मे पड़ता,
'जुग जुग जी तू भय्या' कहकर उनका स्नेहामृत झड़ता।

रे मोहन, वह भाग्य युम्हारा लख यह अग्रज तेरा,
करने लगता डाह तुम्हीं से भावुकता का प्रेरा।
माँ के मानस से जब निकले स्नेह भरी गगा-जमुना,
पूरा होता भागी सुत का भव मे सोने का सपना।

माँ के पावन चरोणदक से—सीचे, प्रभु को भावे,
कोई विरला पुण्यवान निज भाग्य-कमल विकसावे।

जब तू खूब कमाकर आता, माँ का हृदय रिझाता,
कह विनोद वह कितना भाता ? घर मे रस छा जाता।
तू तो बहुत कमावे मोहन, कहॉ आज पर जननी ?
दान-पुण्य देकर जो खिलती गृह मे मगल-भरनी।

दान निछावरि वे जो करतीं अपने खातिर करतीं,
श्रेय-साधिनी, पुण्य-वाहिनी, सारा कलि-मल हरतीं।
गई आज वे अमर-अजिर से मगल-कोप सरसने,
सुरसरि वे नभ-गगा बन कर, अमृत-ओस बरसने।"

इसी भांति से नाथ। जेठजी बहुविधि रहे विलपते,
देव, तुम्हारे स्नेह-गान मे कभी नहीं वे थकते।
सुना तुम्हारा आना जब से नित नव साज सजावें,
रोज नई शैली की चीजे खुद क्रय कर-कर लावें।

'शीघ्र अनुज आकर के मेरा लाखो रुपये कमावे,
इसी मधुर आशा मे अग्रज नित नव खर्च बढावें।
हा भय्याजी। अनुज तुम्हारा ऐसा द्रव्य कमावे,
दे दे तन के कपडे भी वह नगा सा हो जावे।

वह दरिद्र अधनगा रह कर, कभी न पूरा पेट भरे,
नाम धरे उपवासो का, पर महिनो फाकाकसी करे।
कहे—'बहू वह गया विलायत साहब बन कर आवेगा,
पर ऐसा सामान सजाऊँ देख चकित रह जावेगा।

कुछ तो हम नूतन हो जावें, कुछ कुछ बने पुरातन वह,
यो नित मिल कर निकट रहे हम, सुखकर रीति सनातन यह।
पूज्य पिता दीवान रहे थे, मै भी शासन करता हूँ,
मोहन आवे तब तुम लखना, घर मे लक्ष्मी भरता हूँ।

दफ्तर मे इस बैरिष्टर के निशि-दिन भीड रहेगी,
यश, वैभव अरु धन की सरिता मेरे अजिर बहेगी।

जब वह आवे उच्च नीति को ऐसा चक्र चलाऊँ,
सभी काठियावाड़ी चौंके, ऐसा रंग रचाऊँ।
मेरे कुल की सुयश-चन्द्रिका निखिल प्रान्त मे फैले,
हे हरिहर, हम भ्राताओ के मन न कभी हो मैले।'

यों अग्रज अरु हम सब प्रियतम निज निज आशा लेकर,
खड़े हुये है राह देखते दृग-प्रतिहार खडे कर।
करे आरती बहन तुम्हारी कुंकुम थाल सजा के,
टाँके वन्दनवार भाव के दासी क्यो न लजा के?

नाथ! तम्हारे पथ पर मन के मौलिक जड़े हुये हैं।
तनिक न मानें नैन-हमारे पथ पर अडे हुये है।
बदाबदी हृद-भाव तथा दृग पथ पर निकले पड़ते,
जैसे कवि के छन्द मनोहर बरबस बाहर झड़ते।"

प्रिय-वियोग के पतझड मे यो यह पावन फुलवारी,
साशा उत्सुक बाट जोहती है ऋतु-राज। तुम्हारी।
सोच रहे हो क्या तुम माँ से बहुविधि बात कहोगे?
तीन वर्ष की कसर निकालो रोके नहीं रहोगे?

"माँ तेरे आशीर्वाद से सब आदेश तुम्हारे,
सफल किये है नारायण ने तीनो वचन हमारे।
"अरे मिठाई तो खा ले तू, पीछे बात बनाना,
हुआ सूख कर तन काँटे सा जाय न मुँह पहिचाना।
"गया तुम्हारी राजी से माँ। दृग-जल से मुँह धोते।"
"सच कहते हो, कभी न जाने देते यदि वे होते।"
"मै क्या जानूँ वहाँ न मिलता, शाकाहारी का भोजन,
वर्ना कभी न जाने देती आङ्गण के बाहर मोहन।"

"माँ! वह लन्दन बहुत बड़ा है कलकत्ते से कई गुना,
दो दो मजिल की हैं सड़कें, नगर बहुत ही भव्य बना।"

"सब कहते तू लन्दन जाकर 'वालिष्टर' बन आया है;
मुझे दीखता तू वैसा ही सूख गई पर काया है।
'यदि वालिष्टर दुबला होवे मुझे न भय्या. भावे,
इतनी विद्या तब सुखकर, जब तू मोटा हो जावे।"

सच है मोहन! तुम अरु अम्बा जाने कैसे मिलते,
दिन-मणि सा सुत प्राची सी मा मन-पकज खुल खिलते।
तुम गभीर पर नीरधि जैसे क्यो न सभी कुछ सहन करो?
बोधिवृक्ष से सब ऋतु सहकर श्रान्त पथिक की तपन हरो।

नित्य नियति यो आगे होकर अपना काम बनाती है,
नर की परवशता को धीमे स्वर मे सदा सुनाती है।
तुम्ही बतादो मोहन! यदि वे जननी जग मे रहती
तुमको कंटक-पथ पर लख कर कैसे मा धृति गहती?

तुम भी मा के स्नेह-वचन को कहो टालते कैसे?
अपना प्रिय कर्त्तव्य जगत मे कहो पालते कैसे?
और हमारे भव का अन्तर सूखा ही रह जाता;
अमर-लोक की सुधा-जाह्नवी कौन यहा पर लाता?

लाता कौन यहां पर भावुक इतने निर्झर या सरिता?
बता. कौन सा गायक गाता अमर-लोक की यह कविता?

शुद्धबुद्ध के पीछे अब तक मृग-तृष्णा से सूखा;
भटक रहा था नर यह दर-दर हृदय हुआ था रूखा।
हाय हमारी दीर्घ शर्वरी कहा चन्द्रिका को पाती?
ग्रीष्म-दाह-से-दग्ध भूमि यह किस सावन-घन को लाती?

और हमारी आशा-चपला रचती लास-विलास कहा?
कला-चातकी-प्रिय पयोद बिन खोती अपनी प्यास कहा?
और हमारी भक्ति-बर्हिणी कैसे नृत्य दिखाती?
श्रद्धा की हरियाली भव मे कैसे खिलने पाती?

तेरे बिन ऋतुराज हमारे भ्रातृ-भाव के बन-उपवन-
मानवता की वन-शोभा को कौन खिलाता मन-भावन?
कौन हमे विश्वास दिलाता प्रभु के प्रेम-सरोवर में?
कौन कथा उस छबि की कहता चमक रही जो अन्तर में?

दीप जलाकर प्रभु के रथ की लीकें कौन बताता?
प्रभु-मन्दिर के ज्योति-कलश की किरणें कौन दिखाता?
और हमारे कवि-कोकिल-कुल किस वसन्त को गाते?
भावुक ये किस शोभा-निधि से अपने नयन जुड़ाते?

बुद्धि-वाद के वायु-यान से हम थे नभ में उड़ते;
पता नहीं था हम ऊँचे से किस गह्वर में पड़ते?
तुम बिन हमको दिव्य दूत हे! बोलो कौन बचाता?
कौन हृदय की हरित धरा का सहज सुपथ दिखलाता?

नृप-प्रभुता-मद-कोप-वज्र के भीषण क्रूर प्रहारो को-
कौन झेलता लौह-मेरु सा, अरि के अत्याचारों को?
हे सेनानी! तुम बिन सब के आगे आगे रहकर;
कौन कहो मुसकाता रहता शूल वक्ष पर सह कर?

झंझा अग्नि बवण्डर सब मे कौन कहो यों बढता?
कौन भयकर भट खतरे की छाती पर जा चढता?
कौन धीर गभीर समर मे अटल खम्भ सा भिडता?
कौन हमारे और शत्रु के मध्य शैल सा अड़ता?

कौन अलौकिक धर्म-युद्ध मे मौलिक रचना करता;
दिव्य शस्त्र से उभय पक्ष के पथ-श्रम को भी हरता?
विश्व-दैन्य के अमित भार को तुम बिन कौन उठाता?
ऐसा भीषण घोर हलाहल पीकर कौन पचाता?

और समाता किस निरधि में पीड़ा का वड़वानल?
इस कलि-मलि से चचल होवें भव के भीम 'हिमाचल।

इन प्रलयकर तूफानों मे कौन खडा मुसकाता?
जो पटु केवट गाता जाता नय्या खेता लाता।
मुझ जैसे अधमो को तुम विन श्रद्धा कौन सिखाता?
राम-बुद्ध की चरित माधुरी सभव कौन दिखाता?

ज्ञान-गर्व के विपम तमस मे तुच्छ जीव फँस जाता;
हे आरति-हर। तुम विन उसको रवि-रथ कौन दिखाता?
तुम विन कौन जगाता हमको भारत-भाग्य-विधाता?
पुण्य-पयोनिधि प्रणत-पाल हे। दीन हीन के त्राता।

कौन चलाता शान्ति-चक्र को हे दरिद्र-अनुरागी?
प्रेम-सूत्र के स्रष्टा तुम सा कौन पुरुष वडभागी?
और भले कुछ हो भी जावे, पर उद्धार हमारा-
ऐसा अघटित जटिल कार्य तो होवे किया तुम्हारा।

इसी भांति वैरिष्टर वनकर मोहन भारत आये;
सफल सिद्धि का तप पूत मृदु फल स्वदेश मे लाये।
परिजन वान्धव और प्रिया ने लाभ नयन के पाये;
मृदु विनोद उल्लास-भाव के उत्स अजिर मे छाये।

घर की भाभी और परोशिन मुख पर व्रीड़ा भर के;
करतीं चचल चुहल नागरी दृग से क्रीडा कर के।
"लन्दन की हरिणी सी तरुणी सुना, अकेली विचरें;
तुम्ही कहो क्या सचमुच उनके अधर वहुत है मधुरे?

वहां घूमते हाथ मिला नित सखा-सखी उपवन में;
तुम भी घूमे मोहन-मधुकर, क्या उस यौवन-वन में?
कस्तूरी भी लो सखियों से मिल कर इन्हें सताती;
और लजीला जान इन्हें वे उल्टे अधिक चिढाती।

मुदित हृदय मोहन के अग्रज फूले नहीं समाते,
जैसे कोई राज मिला हो सुन्दर साज सजाते।

सदा अनुज के विद्या-गुण की महिमा गाते रहते;
इसी बहाने भावुक मन की स्नेह कथा वे कहते।
"मुझे न आती थी अँग्रेजी यह त्रुटि थी दुखदाई,
क्या न करूँ मैं अब तो घर का बैरिष्टर है भाई।"

घर में जितने शिशु-बालक थे मोहन उन्हें पढाते;
सरल हृदय ये घोड़ा बनते ऊपर उन्हें चढाते।
इसी लिये इस तुतले-दल को बहुत अधिक ये भाते;
बाल-सखा इन युवक-शिशू से झट-पट घुल-मिल जाते।

इस शिशु-कुल के छोटे छौने कहते—'चाचा मेले;
पधे विलायत तक अँगलेजी हमें पधा कल खेलें,
यों गान्धी-कुल-कैरव-वन ने सरस सुधाकर पाया!
अभिनव मगल-स्रोत उमड़ कर आङ्गण मे था आया।

पर प्राय' मोहन के मन मे जननी की सुध आती;
मलय-लता सी रह रह उर में भाव-सुरभि भर लाती।
सुधि-लतिका को दो दृग-माली मौन नीरते रहते;
अपनी गन्ध-कथा यह पावन मौनी कहीं न कहते।

फिर अग्रज की सम्मति से ये कुछ दिन घर पर रह कर,
गये मुम्बई द्रव्य कमाने शर्मीले बैरिष्टर।
बहुत अधिक तो चल न सकी पर इनकी सरल वकालत;
चलती तो फिर लगती कैसे इनकी अलग अदालत।

यहां नगर मे आकर इनको लाभ हुआ पर भारी;
मिले इन्हे कवि-कोकिल यति-वर रायचन्द्र गुण-धारी।
मन्द मलय से राय-चन्द्र थे सुखकर तात्विक ज्ञानी;
सरल सुधी, मुनि, पावन साधक, अरु थे शतावधानी।

ज्ञान-बाग मे यह रस-लोभी मधुकर विचरा करता;
खोज रहा था परम सुरस को गुन-गुन स्वर-लय भरता।

इन्हीं सुहृद ने मोहन को निज अन्तर्दृष्टि दिखाई;
भारत के उस परम बोध की बातें बहुत सिखाईं।
महा ज्ञान के अमित कोष की लखकर पहली झाकी,
चौंके मोहन, कब उस धन की—कीमत किसने आकी?

उस अतीत के पुण्य-गर्भ मे वे युग-द्रष्टा ऋषिवर,
बहुत सा अमृत डाल गये निज जीवन-कलशी भर भर।
विश्व-सिद्धि के शासक गुणनिधि भर मणि-रत्न-पिटारी;
सजा गये है भरत-भूमि पर गौरव-ज्ञान-अटारी।

परम पूत वटु, वेद-विज्ञ यति, तपोधनी मल धोते,
मानो उनकी यज्ञ-वह्नि मे कलुष भस्म थे होते।
श्रुति पुराण दर्शन स्मृति कविता अर्वाचीन पुरातन,
खोज रहा था रायचन्द्र यति सब मे सत्य सनातन।

सोचा करता तरुण गुणी वह मुक्ति-बोध-लय गाऊँ,
कर्म-मात्र मे प्रभु की झांकी झल-झल सम्मुख पाऊँ।
ऐसे ज्ञानी गृही विरागी कृती व्रती सुखराशी,
यहां वकालत करते मोहन, मिले तुम्हें सन्यासी।

कहो यहां फिर कैसे इनकी अधिक वकालत चलती?
धीरे धीरे कैसे क्यारी अमर-लोक की खिलती?
भावी ने निज ज्योति-यन्त्र की गतिमय किरण घुमाई,
आज नियति ने स्पष्ट धरा पर अपनी शक्ति दिखाई।

दादा अब्दुल्ला का मेमन फर्म एक था भारी,
वे थे दक्षिण अफ्रीका मे बहुत बड़े व्यापारी।
इसी समय मोहन ने उनसे शुभ आमन्त्रण पाया,
यो प्रसग यह कार्य-व्याज से अफ्रीका का आया।

भारत मे असि-धारा-व्रत का निशि-दिन पालन करना,
दुष्कर होता त्याग-मार्ग पर टिक कर पद-युग धरना।

पितु-सम प्रेम-परायण अग्रज अरु शुभ आशा उनकी;
वे न झेलते कष्ट अनुज के, अड़चन थी प्रति दिन की।
उष्ण भूमि वह अफ्रीका की मधु से वंचित रह जाती;
नागर-भावों की नव धारा कैसे उस मरु मे आती?
कैसे तपता सुवर्ण मोहन? कैसे मँजती अफ्रीका?
अतः खिलाडी विधि ने नूतन पासा फेंका नीका।
व्यापारी सेठो ने सोचा सस्ता साथी पाया;
इधर अहिसक मोहन ने निज मन को यों समझाया-
"अफ्रीका का अनुभव होगा थोड़ी बहुत कमाई;
तनिक द्रव्य का मिले सहारा सुख माने कुछ भाई।"
और पुनः अग्रज ने सोचा "उत्सुक अनुज हमारा;
लगे रेख पर मेख वहीं पर शायद चमके तारा।"
कहा वधू ने—"नाथ हमारे एक वर्ष में आवे;
ओ नयनो! तुम रहो राह पर ये दिन भी कट जावें।"
दृग-प्रहरी बोले—"हम निशिभर पहरादेंगे जग कर,
हृदय-कोष की प्रिय-सुधि-मणि को रक्खें दृग-मणि कर कर।
प्रिय की राह-दिशा मे दृग हम इतना जल बरसावें;
जीवन-धन की हृदय-प्यास को बैठे यहीं बुझावें।"
विविध भांति यों विधि ने सब को निज निज तोष दिलाया;
अरु साधक से विपिन-गमन का दृढ निश्चय करवाया।
नटवर! तेरी नृत्य-चातुरी अति गतिमय मन चाही;
आज हमारा नव 'बैरिष्टर' अफ्रीका का राही।

इति

द्वितीय सोपान

१

भारत-वासी ! तू गुलाम है,
मसि सा तेरा भाग्य श्याम है।
वर्ण श्याम तो भाग्य श्याम हो,
क्या काले का विश्व वाम हो ?
तजो विधे ! यह पक्ष पुराना,
बदल रहा है आज जमाना।
प्रभु ! यह कैसा न्याय तुम्हारा,
क्यों धूमिल है भाग्य हमारा ?
पहले तो यह रंग हमारा—
सभी कहें, था तुमको प्यारा।

श्याम-रूप अवतार तुम्हारे,
राम-बुद्ध क्या तुमसे न्यारे?
तुम भी क्या अब हुये चुलबुले,
लगे देखने वदन उजले!
वदन देख मत काढो टीका,
तुम्हें न्याय ही सोहे नीका।

धवल चर्म पर मुग्ध हुये हो यह सब रेता मरुथल की;
चमकीली पर नीरस-बजड़ बून्द न देखोगे जल की।

सघन श्यामघन लखो, गगन में—
रस ढुरकावें भवन-भवन में।
घने सांवले विटप विपिन के,
श्याम धरा घर भरती धन के।
छटा श्याम, यश आभा उजली,
ज्योतिर्मय होती दृग-पुतली।
श्याम-गान पर, क्या हम गावें?
दास-भाव को कहा भुलावें?
या तुम लेकर प्रभो! परीक्षा,
हमें कर्म की देते शिक्षा?
भरत-भूमि का वैभव पाकर,
सुलभ धान्य फल गोरस खाकर,
संसृति-सुख में शौर्य विसारा,
खोया हमने तेज हमारा।

वे अतीत के गान कहा हैं ?

आन-मान की शान कहा है ?

कहा कनक की लिपि में अङ्कित गीत हमारा वह उज्ज्वल,
वे मणि मण्डित मुकुट महाद्युति झलका करते जो झलमल।

भक्ति-शक्ति का विरुद हमारा,
गया, मान बल सभ्रम सारा।
जब जिसने भी हमें प्रचारा,
रहा न उसका कूल-किनारा।
कहा आज वह वाक करारी ?
कहा विजय की साख दुधारी ?
कहां शख का घोष हमारा ?
सूख गई सब वैभव-धारा।
गई गई सब जीवन-निधिया,
गई कीर्त्ति की गौरव-विधिया।
एक दासता शेष रही है,
शक्ति सम्पदा सभी वही है।
पराधीन का जीवन कैसा,
विवश नहर के पानी जैसा।
जो विहग पि जर में होता,
व्यर्थ पाख का बोझा ढोता।

तभी पक्षधर! जीवन सुखकर मुक्ताम्बर में जब विचरो,
जब स्वदेश के वन-उपवन में कुञ्ज लता तरु-तल विहरो।

अरी दासते ! हृदय-त्रासिनी,
तमस-त्रासिनी, क्रूर-हासिनी,
अरी द्विरसने ! काल-कूटिनी,
अशुभ राक्षसी जटा-जूटिनी,
कुटिला क्यों तू जग में आई ?
मिली न पथ में तुमको खाई।
रही न क्यों निज काल-विविर में,
क्यों आई इस आर्य-अजिर में ?
किस विधना ने तुझे बनाया ?
किसने अपना ज्ञान गँवाया ?
चूसा उरगी देश-कोष को,
भरत-भूमि के शक्ति-तोष को।
वह अजस्र सुख-श्रोत हमारा,
आज सर्पिणी, सूखा सारा।
भाग यहां से मलिन नागिनी,
लोहित-लोलुप हेय डाकिनी।

जल्दी कोई चतुर सँपेरा नाथेगा नागिन आकर;
फणिनी, तेरी मणि छीनेगा एकाकी तुझको पाकर।

अरुण-वर्ण-धर तरुणो सुनलो,
सुनकर युवको, मस्तक धुनलो।
सुनो सभी भारत के नागर,
नाम तुम्हारा दास उजागर।

तुम्हें मिली है निपट गुलामी ,
नित मालिक की भरो सलामी ।
दास दास तुम दास मात्र हो ,
वे कहते-"तुम योग्य पात्र हो—
तुम्हें गुलामी करनी आती ,
और बहुत है मन को भाती ।"
वे कहते-"तुम जीर्ण-शीर्ण हो ,
दास-कार्य में पर प्रवीण हो ।
देख तुम्हारी त्रस्त दशा को ,
भरो छूत से कहीं रसा को ,
अतः रोग से तुम्हें बचाने ,
शेष धरा से कलुष हटाने ,
कहते प्रभु यों-"सुख पहुचाने आये हम उजले दाता ,
भगें रोग सब शान्ति रहेगी भय क्या जय आये त्राता ।"
तुमको शिष्ठाचार सिखाने ,
शक्ति-वान अरु सभ्य बनाने ,
नव विधान के नियम बताने ,
सभा-व्यवस्था-भेद दिखाने ,
नूतनता का पाठ पढाने ,
नव प्रबन्ध-विधि-ज्ञान बढाने ,
हम पश्चिम से चल कर आये ,
क्या न तुम्हारी खातिर लाये ?

धर्म-भेद पर देख तुम्हारा,
बढ़ता रह-रह खेद हमारा।
भला न यह आपस का लड़ना,
जरा बात पर व्यर्थ झगड़ना।
करें व्यवस्था, शान्त रहो तुम,
न्याय मिले नित, मौन गहो तुम।
हिन्दु-मुस्लिम हमें बराबर,
यही नीति निष्पक्ष उजागर।

भिन्न धर्म अरु भिन्न जातियां सदा जगत में भिन्न रहीं,
अत धर्म आजाद रहें सब हमने ऐसी नीति गही।"

स्वागत तेरा गौरे भ्राता!
भले पधारे भेद-विधाता!
आओ, हमको सभ्य बनाओ,
दास-धर्म-गुण-शील सिखाओ।
हुलसो विलसो न्याई राजा!
बजे पोल में चौकस बाजा।
नारायण से धर्म-परायण,
स्वार्थ-धर्म का करते धारण।
हिन्दू मुस्लिम दोनों चाकर,
क्यों न तुम्हें हों उभय बराबर?
दोनों तेरी सेवा करते,
रत्न-कोष हैं तेरा भरते,

सचमुच इनका पक्ष नहीं है,
सिर्फ स्वार्थ निज तुम्हें सही है।
अलग-अलग से पीठ ठोंकना,
नीति-वह्नि में इन्हें झोंकना,
तुम्हें मिली है सुगम रीति यह, भारत के न्याई रक्षक,
दो घोड़ों पर चढ़ना कोई तुमसे सीखे पटु शिक्षक!
भर भर कर निज नीति-टोकरी,
वितरण करते हमें नौकरी।
हेम-पीठ पर जितनी सुन्दर,
जो शासक को होवे रुचिकर,
उन पर तो अधिकार तुम्हारा,
मिलता हमको भूसी-चारा।
है थोड़े जयचन्द हमारे,
जो ऊपर से तुमको प्यारे,
जब तुम भूसी वितरित करते,
वे हैं हममें स्पर्द्धा भरते।
कहते-'देखो अगला ढारा,
अधिक गया है उसमें चारा।
और इधर जो पड़ी टोकरी,
उसमें बोलो कमी क्यों करी?
पशु-संख्या के क्रम से तौलो,
पक्षपात क्यों करते बोलो।

धर्म जोश से भोले भाई स्वार्थ-व्यूह में फँसते हैं,
फिर पशु-सम नख शृङ्ग लड़ाते शासक बैठे हँसते हैं।

आओ शासक, धन के शोषक,
भेद दासता के पटु पोषक,
भारत में उद्यान लगा है,
भ्रमर! तुम्हारा भाग्य जगा है।
कायरता की यह फुलवारी,
भिन्न धर्म हैं इसकी क्यारी।
द्वेष-फूट का सुरस भरा है,
आलस का सौरभ बिखरा है।
बहु प्रसून मकरन्द-कटोरे,
जीभर पी, बड़भागी भौंरे।
लख रसाल की मृदुल मन्जरी,
इधर मालती खिली रस-भरी।
अरु रियासती मधुवन-शोभा,
जिस पर रसिक हृदय तव लोभा।
चचरीक! पर कहीं कहीं पर,
चपा भी हैं खिले यहीं पर।

सुन मिलिन्द! तू स्वार्थ भरा है कुसुम-कुसुम पर मँडराता,
तुझे किसी का नेह नहीं है तुझको केवल मधु भाता।

चतुर! तुम्हारी हृदय-हीनता
उसे न कोई यहा चीन्हता।

जहां तनिक तू भांवर भरता ,
जरा कान में गुन गुन करता ,
वही सुमन निज अर्पण करता ,
तव चरणों में तन-मन धरता ।
तू यथेच्छ मधु-क्रीडा करता ,
उस रस से मन जब है भरता ,
बहुरि दूसरी ठौर विहरता ,
छल-बल से तू नहीं शिहरता ।
पर हम हिन्दी बहुत अभागे ,
सूर्य चढा है हम जनि जागे ।
बता यहा पर क्या है छोडा ,
फल न कौनसा तैने तोडा ?
विभव विश्व का यहा भरा था ,
कण-कण में सुख-धन बिखरा था ।

किस अलका के रत्न-कोष में कब इतना ऐश्वर्य रहा ?
देख यहा धन-धान्य विभव को था कुबेर ने मौन गहा ।

हेम-भार जो रहा यहा पर ,
कह, रक्षक ! वह गया कहा पर ?
निगल गई सारा धन धरनी ,
या है यह अम्बर की करनी ?
बता बता रे प्रहरी ! भोले ,
वे मणि-मुक्ता किसको तोले ?

सदमठ

मिला सन्तरी सीधा-साधा,
कहाँ चोर को होती बाधा।
सरल हृदय सचमुच तू कितना,
कौन सदय भी तेरे जितना?
सुहृद शत्रु सब तुझे बराबर,
चले चोर का पता कहाँ पर।
तुझे विभव भारत का भाया,
तब तू पहरा देने आया।
धन्य धन्य प्रिय पर-उपकारी,
स्वागत यतिवर, असि-व्रतधारी।

आओ धन-प्रतिहार हमारे फूट कलुष के पटु प्रहरी;
सीधे दिखते, हो अति जहरी, चाल तुम्हारी हैं गहरी।

विष के रक्षक, पय के भक्षक,
काल कूट-धर गोरे तक्षक,
अति बंकिम-गति मनुज-अजिर में,
सीधे हो तुम सिर्फ विविर में।
अपने शुभ में महा सरल हो,
पर-हित में तुम तीव्र गरल हो।
हो अपनों के बुद्धि विकासक,
शौर्य—धैर्य—गाम्भीर्य प्रकाशक,
पर पर-घर के शोषक-त्रासक,
चतुर निठुर स्वामी अनुशासक।

हमें मदारी खूब नचाया,
मरने से भी नित्य बचाया।
जीवन भी सब छीन लिया है,
दास-पाश में बाँध दिया है।
खूब जलाओ दीपक अपना,
जले हमारा सुख का सपना।

अपने शिमले के बँगले में गमले हमें सजाने दो,
गँदले हैं कुछ उजले होवें हमको भाग पढ़ाने दो।

तेरे नभ में भारतवासी!
छाई है जो काल-निशा-सी।
यह सब कूट कला का फल है,
श्वेत-नीति का छल-कौशल है।
बल में तू न किसी से हारे
कौन वीर जो तुम्हें प्रचारे?
कपट-जाल या धन की थैली;
रही पश्चिमी रण की शैली।
कहाँ कौन न जीता तुमको?
तोड़ सका तू यम के भ्रम को।
पर उन मीरजाफरों द्वारा,
भारतीय! रे प्रतिदिन हारा।
कह कचाइव, यह कौन शूरता?
आत्महीन की कुटिल क्रूरता।

वेशरमी- की जीत पलाशी, -

किस क्लाइव को दें शाबाशी ?

हृदय-हीन व्याधों के द्वारा छला गया भोला शीराज,

ताज़ गँवाकर चला गया हा ! बंगभूमि वाला अधिराज।

लुटा पलाशी हो के पीछे सस्ते में भारत का माल;

हुये प्रान्त कगाल यहा सब अवध उडीसा या बगाल।

'आबरमा' 'शबनम' की मलमल,

वह ढाका का 'वाफत' कोमल।

तेरे अनाचार से जलकर,

नष्ट हुई मिट्टी में मिलकर।

ढाका की राका के बुनकर,

व्यथा-भार से शिर को धुनकर,

स्वय अँगूठे काट डालते,

जिन्हें प्राण सम रहे पालते।

प्लाशी से वाटरलू रण तक,

हुई लूट भारत की भरसक।

कर्नाटक, बगाल, उडीसा,

सूरत और अवध को चूसा।

लाखों की आबादी ढाका,

पडा वहाँ जब भीषण डाका,

पल में नगर हुआ वह चौपट,

बाध लिया बणिये ने तलपट।

चूका सौ प्रतिशत से लेकर दो म[illegible]शत तक महसूल,
कटी जुल्म की छुरियों से थी भारत के धन्धों की मूल।
हुये हिन्द के कारीगर पर जिन पैनी छुरियों के वार,
उसके ही खर्चे से सारी करी गई थीं वे तय्यार।

वेलसली हेस्टिङ्गस सरीखे,
एक एक से निर्दय तीखे,
आये थे भारत की भू पर,
नई नीति-छुरियों को लेकर।
रहमतखा सरदार रुहेला,
छल के वन में पथ को भूला।
नित्य लूट होती थी ताजा,
लुटा बनारस वाला राजा।
लुटीं अवध की बेगम सारी,
ओ अशिष्ट! दुर्नीति तुम्हारी,
उलटे महिलाओं को लखकर,
चमक उठी असहाय निरख कर।
फासा तुमने मित्र बनाकर,
नन्दकुमार चढा फासी पर।
सभी मराठे वीर निराले,
जिनने घाव रणों में घाले,
पर इस कपट-कीच में फँसकर,
गिरे फिसलकर सभी शौर्यधर।

सुभट होलकर सिंधिया सैनिक वीर भोंसला गायकवाड़,
सफल नीति खिलवाड़ तुम्हारा हुआ पेशवा-राज्य उजाड़।
कौन बहादुर था हैदर सा हुआ एक से शाहशाह,
राह न पाई अंग्रेजों ने छल-प्रपञ्च का रुका प्रवाह।
किन्तु फिरंगी चाल दुरंगी, फँसा सुभट टीपू सुलतान,
घिरा क्रीत जयचन्दों से वह लड़ते लड़ते देदी जान।

वेलजली ने गूँथी जाली—
एक सहायक-प्रथा निराली।
हड़पे सूरत अरु कर्नाटक,
खोल लिये तंजोरी फाटक।
टीपू राज्य निजाम मराठा,
कसा पेच में सबको काठा।
दी सहायता सबको सुखकर,
व्यर्थ जेब का भार कतर कर,
अधिक राज्य का बोझ घटाया,
अपरिग्रह का पाठ पढ़ाया।
सरल सिंध के शासक सारे,
वे अमीर उमराव विचारे—
जिनको एलनब्रू ने फाँसा,
कपट-सन्धि का देकर झाँसा—
रहे देखते लूट प्रलय की,
महिलाओं की तथा हृदय की।

आई फिर सिक्खों की बारी,
छिनी भूमि पजाबी सारी।

लालसिंह धिक, तेजसिंह धिक, धिक् घर-भेदी लोभाधीन,
धिक इस मीर ज़ाफ़री कुल को घृणित पूर्निया कमरुद्दीन।

हड़प-नीति फिर 'लैप्स' नाम की ले आया डलहौज़ी लाट,
चाट लगी थी इन्हें लूट की सूनी थी भारत की हाट।

सब का बाबा था डलहौज़ी,
छीनी जिसने अगणित रोज़ी।
झाँसी, बाघट और सितारा,
हड़प लिया सभलपुर सारा।
लिया नागपुर तथा जैतपुर,
पूर्व माडवी राजा का घर।
छीना कोलाबा अंबाला,
गूँथी अमित राज्यों की माला।
बीस सहस्र राजों की न्यारी,
बीस सहस्र थी जमीन्दारी,
दस वर्षों में हुई पराई,
सब राज्यों ने भूमि गँवाई।
लावारिस के वारिस गोरे,
भली नीति जो पर-धन चोरे।
योंही फूट-भेद की प्रेरी,
भारत-लक्ष्मी है पर-चेरी।

स्वार्थ-जनित कायरता छाई,

श्वेत-नीति की फिरी दुहाई।

लोभ-द्वेष की सीढी से यों चढा वक्ष पर है अंगरेज;
त्याग-प्रेम के व्यूहन से तू भारतीय! निज शक्ति सहेज।
अफ्रीका में चल कर देखो भारत की सच्ची छाया,
जिस प्रवास में गान्धी ने था बोध दासता का पाया।

लो मोहन! अफ्रीका आई,
जिसकी तुमने कीर्ति बढाई।
देखो आया डर्बन बन्दर,
नैटल का यह कस्बा सुन्दर।
यहा देखना रूप दास का,
श्याम रग निज लौह-पाश का।
यहा मान हम ऐसा पावें,
जिसे देख अपमान लजावे।
कटु पीडा से तन-मन शिहरे,
हाय कुलिश-उर बहुरि न विदरे।
दलित दास की तीव्र त्रास का,
उसके जीवित नरक-वास का,
नर-खर की अति हेय गास का,
चरना नित अपमान-घास का।
गल में फन्दा मलिन पाश का,
मरना प्रतिदिन घृणित श्वास का।

दलित दास के इस जीवन से नाश-ग्रास होना सुखकर,
जले दास प्रति पल पर मानव एक बार जलता मरकर।

ओ गुलाम, ओ भारतवासी,
कुछ दिन होकर यहाँ प्रवासी,
कालिख लख फिर अपने मुख की,
काली छाया रौरव-दुख की।
यहाँ दासता करती नर्तन,
यही देश दासों का दर्पन।
लख माथे का काला टीका,
जो न कभी होता है फीका।
सुन गुलाम के ओ कायरपन!
धिक-धिक कहता तुझको त्रिभुवन।
लख यह भीषण घृणा-प्रकाशन,
डोल उठे धरती का आसन।
उठे धूलि भी पद-प्रहार से,
तू न उठा दब दास्य-भार से।
और मृत्यु भी तुझे न आई,
नीच जान कर मीच लजाई।

अगर कहीं भी जीवन-जल हो ढेलों ही से वह उछले;
पोले! तुझ में शिला समावे घर वे अन्तस्तल कुचलें।

ये प्रदीप्त अपमान अँगारे,
छूकर तन-मन जलते सारे।

भयवश निगल रहा नित शोले ,
तू न कभी कुछ कायर बोले ।
अरे शान्ति यह मुर्दाघर की ,
नहीं अहिंसा जीवित नर की ।
वायु धरा अम्बर के तारे ,
वरुण अग्नि यम दिग्गज सारे ,
विबुध नाग नर किन्नर दानव ,
कहते—धिक धिक बँधुये मानव !
धवल दर्प की पाप मन्त्रणा ,
कृष्ण-दास की घोर यन्त्रणा ।
करती क्रीडा है दानवता
कांपे पीडा मे मानवता ।
गलित गुलामी महाशाप है ,
मानव तेरा महापाप है ।
ओ भारत के नौनिहाल तू असल हाल अपना लखले ,
इसी धधकती चिनगारी को उठा कलेजे में रखले ।
अपने दिल में आग लगाकर ,
देख दशा शमशान जगाकर ।
अनल जले उजियाला होवे ,
वहीं भले कुछ तम को खोवे ।
नई ज्योति में रंग निरख कर ,
भाग न जाना वीर बिलख कर ।

कि[illegible]

लगा यहा पर कोढ धवल है,
श्यामल मानव बहुत विकल है।
लखो कोढ में गले अंग का
मानवता पर लगे जंग का,
पीप भरा दुर्गन्ध भरा है,
नर ने कुत्सित वेष धरा है।
थोड़ा कपड़ा, काला चमड़ा,
घर से बिछुड़ा, जीवन उजड़ा
पिछड़ा जब किस्मत का पलड़ा,
'गिरमिट' में फंस करके बिगड़ा।

गिरमिट के मिस दास-रोग का लगा यहां तन को झगड़ा,
पहले पकड़ा हाथ छूत ने पीछे सारा तन जकड़ा।

भाई तेरे एक रोग है
उसी योग से बुरे भोग है।
भारतवासी तू गुलाम है
इसीलिये मल-कलुषधाम है।
हाय अभागे पराधीन तू,
इसीलिये है दीन-हीन तू।
नर-कलंक भय-अनुगत होता,
वह अभ्यागत अभिमत खोता।
जो नर बरबस पर-वश होवे,
वह क्यों जीवन-बोझा ढोवे।

मौत भली है बुरी गुलामी,
क्यों हम जिसको भरें सलामी?
जो नर अपना मान गँवावे,
क्यों वह मा का दूध लजावे?
घृणित कर्म है भय से झुकना,
सिंह न जाने पथ में रुकना।
अगर सेवन ही करना है तो क्यों चाकरी प्रभुवर की;
महाभाग जो सैनिक उसके करें चाटुता क्यों नर की?
पीठ छिली कोड़ों से सारी,
मिली धूलि में इज्जत प्यारी।
जले प्राण भीतर चिक्कारें,
रह रह कर अन्तर धिक्कारें।
लाल लाल इस ज्वाल-जाल से—
जलता यह जो बुरे हाल से,
यह गुलाम है या मशाल है,
या भारत का श्याम लाल है?
त्रिंस कोटि हम हिन्दुस्तानी,
क्यों सब सहते हैं मनमानी।
त्रिंस कोटि पर कहा रहे हम,
भिन्न मतों में बँटे बहे हम,
हुये हमारे अगणित टुकड़े,
तभी पाश में हम हैं जकड़े।

क्या न कभी हम जुटना जानें,
केवल कटकर घटना जानें।
भिन्न मतों के डोरे बँटकर यदि रस्सा बने हमारा,
धवल करभ यह कांड़ा भूले पलभर में बँधे विचारा।

इसी देश में रहना मोहन,
यहीं नया भरना है जीवन।
ये अब्दुल्ला सेठ तुम्हारे,
व्यापारी हैं बड़े जुझारे।
वह लाखों का बड़ा मुकदमा
जिसमें इनका मन है भरमा,
जिसकी यहां पैरवी करने
तुम आये स्नेहामृत भरने।
निहित विनय में अर्थोदय है,
ये व्यवसाई सदय हृदय हैं।
यों भी सज्जन ये कुलीन हैं,
पर काले हैं पराधीन हैं।
इसीलिये ये दुख पाते हैं
घूंट जहर की पी जाते हैं।
पद पद पर अपमानित होते
विवश रक्त के आंसू रोते।

समझो मोहन! रीति यहां की करनी तुम्हें वकालत है,
देखो चलकर यह डरबन की कैसी अजब अदालत है।

न्यायालय में पहुँचे मोहन,
मुडे इधर ही सबके लोचन।
मजिस्ट्रेट भी विकल दर्प में,
ताक रहे क्यों क्रुद्ध सर्प से?
कठिन दाह में क्यों दहते हैं?
सुनो सुनो वे क्या कहते हैं?
"अरे अरे ओ आने वाले,
सर से पगडी अलग हटा ले।
न्यायालय यह हाट नहीं है,
तेरे घर की बाट नहीं है।'
वचन-बाण से विध मोहन ने—
ऊपर ताका गुण-दोहन ने।
खिंची भाल पर अभिनव रेखा,
नया दृश्य आँखों ने देखा।
तरुण वीर के नयन अरुण थे,
आर्द्र हृदय के भाव करुण थे।
गिरे न हँगडी के झोंके से पाग बँधी हो जब तगडी;
ऊँची रक्खी सदा शीष पर इनने भारत की पगडी।
पाग न उतरी तजी अदालत,
शुरू यहीं से हुई वकालत।
जहाँ पाग में शक्ति भरी हो,
पेच पेच में ज्योति घिरी हो,

साहस का शुभ नुक्ता होवे ,
ऐसी पगडी टेक न खोवे ।
पाग कहा वह ज्वलित आग है ,
आन-मान का तडित-राग है ।
इस घटना का हुआ प्रकाशन ,
शुरू हुआ यों नव विज्ञापन ।
गोरों ने गान्धी को जाना ,
धूम-केतु निज उनको माना ।
स्वजनि नियति ने मार्ग दिखाया.
गान्धी ने निज अभिमत पाया ।
मिले यहां भी सहचर इनको ,
गौरव-धन था प्यारा जिनको ।

चले यहां से ये प्रिटोरिया जहां मुकदमा चलता था ,
नये कुली 'बैरिस्टर' को यों प्रतिदिन अनुभव मिलता था ।

प्रथम 'क्लास' का टिकट कटाकर ,
ये गाडी में बैठे जाकर ।
फिर रस्ते में एक मुसाफिर—
चढा उसी डिब्बे में आकर ।
उसने इनको ताक ध्यान से ,
खोया सारा धैर्य शान में ।
झट डिब्बे से बाहर आया .
क्रूर भाव था मुंह पर छाया ।

पुन: उसी डिब्बे में आया,
साथ किसी अफसर को लाया।
और रेल का वह अधिकारी,
बोला मोहन से अविचारी—
"अरे कुली उठ निकल यहां से,
आया है तू अधम कहां से ?"
त्रस्त तीव्र अनुतापित स्वर में,
मोहन बोले इस पर-घर में—
"गाली देना शील कहां का लखकर मुझे अकेला यों;
टिकट हमारा इसी जगह का करते व्यर्थ झमेला क्यों ?"
निकलेगा या पुलिस बुलाऊं,
भलीभांति फिर टिकट दिखाऊं ?"
हृदय जला पर तेज न डोला,
निर्भय मोहन दृढ हो बोला—
'मेरा दृढ निश्चय यह जाहिर,
नहीं स्वयं मैं निकलूं बाहिर।"
आखिर एक सिपाही आया,
बरबश इनको बाहर लाया।
उसने ही असबाब निकाला,
पर मोहन ने नहीं सभाला।
यह न अन्य डिब्बे में बैठे,
रहे शीत में सिकुडे ऐंठे।

भले प्राण का सकट होवे,
सभावित निज मान न खोवे।
सत्याग्रह का बिरवा मानो,
हुआ अकुरित योंही जानो।

चले दूसरे दिवस रेल मे जाना था आगे इनको,
पथ में प्रभु का नाम सुमरकर देते थे ढाढस मनको।

इसी राह पर आगे चलकर,
रेल नहीं चलती थी मिलकर।
कई मील का सफर मुसाफिर,
पूरा करें कोच से चलकर।
यहा कोच का टिकट जुटाकर,
लगे बैठने मोहन भीतर।
हुआ यहा भी पिछला झगडा,
श्याम-रग से किस्सा बिगडा।
क्रूर कोच का नायक आया,
उसने इनको अलग बिठाया।
तनिक देर पीछे यह नायक—
मानो दानवपति का पायक—
भीतर से उठ बाहर आया,
बाहर मोहन बैठा पाया।
बोला इनसे—"काले शामी!
खाली कर यह जगह हरामी।"

"कुली बैठजा तू पैरों में धूम्र-पान हमको करना;
ताक रहा क्यों हमें बता क्या यहीं बैठकर है मरना।"
दानव-दल में हाय अकेले,
अर्द्ध मुग्ध से मोहन बोले—
"यद्यपि जगह नियम से अन्दर,
तुमने मुझे बिठाया बाहर।
नीचे बैठो अब यों कहते,
क्यों न नियम में तुम खुद रहते?"
सुन नायक के लगी आगसी,
पूँछ दबे ज्यों क्रुद्ध नाग की।
टूट पड़ा वह नीच बिगड़के,
लगा खींचने इन्हें पकड़के।
कुछ प्रहार भी किये दुष्ट ने,
क्रूर हृदय के पाप-भ्रष्ट ने।
पर मोहन ने मान निबाहा,
गोरों ने भी शील सराहा।
वहीं रहे वे जगह न छोड़ी,
दम्भ-दर्प की हिम्मत तोड़ी।
झेला सम्मुख वक्ष-स्थल पर तपती लोह शलाका को,
ओ एकाकी! दानव पुर में फहरा विजय पताका को।
महाशक्ति तो लक्ष्मण झेले,
रण में जूझें शूर अकेले।

भक्त सदा सर्पों से खेला ,
महावीर ने सब कुछ झेला ।
प्रभु मसीह ने क्या न सहा था ,
कौन कष्ट जो शेष रहा था ?
चुन चुन चमकीले अंगारे ,
दिल की झोली में भर सारे ।
तीव्र जलन यह पीछे मीठी ,
हृदय धधक जब बने अँगीठी ।
यह चकोर ! कुल-रीति तुम्हारी ,
सीख सुभग ! चुनना चिनगारी ।
महा ज्योति के जो हैं प्यारे ,
उनको खाने पड़ें अँगारे ।
परिपाटी यह अमर वंश की ,
प्रभु के जाग्रत ज्योति-अंश की ।
बर्बर उर में बीज ज्योति का था पहले से पड़ा हुआ ,
प्रभु माया वश गोरा घन सा गरजा, बरसा अदा हुआ ।
आज बीज में अंकुर आया ,
कल्पवृक्ष को भव ने पाया ।
सत्याग्रह का तरुवर झलका ,
मानवता का आश्रय पनपा ।
दिव्य छत्र मानव पर छाया ,
वज्र-विघ्न पशु-बल का आया ।

चिन्गारी

अरे कुली ! ओ शामी काले !
अरे दास ! ओ भारत वाले !
व्यथा निदारुण ऐसी सहकर,
प्रचुर यन्त्रणा का पथ गहकर।
कटु पीडा से क्रीडा करना,
सीख रहा किस रस को भरना ?
तीव्र-धार से यों कटने में,
बात बात पर मर मिटने में,
आसू घुलघुल कर पीने में,
कष्ट-भार सह कर जीने में,
बता बावले ! क्या रस मिलता शूल नोक पर चलने में ?
दुःख ताप तल यों जलने में मान धार में गलने में ?
वैश्य-धर्म है अर्थ कमाना,
या यों तप कर भस्म रमाना ?
परम अर्थ पर तुम्हें कमाना,
विश्व-श्रेष्ठि का वैभव पाना।
इसीलिये तुम तपते निशिदिन,
हे भारत के श्याम तपोधन !
तपो तपो मानव-नभ-दिनकर !
तभी प्रभापति अमित किरणधर !
वन उपवन तरु लता कमल दल,
तुम्हें उदित लख खिलते पल पल।

जग के दुरित-पङ्क को शोषो,
पुण्य-धान की खेती पोषो।
किरण-करों से द्वन्द्वोदधि का,
मधुर पाथ ले ज्ञानाम्बुधि का,
प्रेम-मेघ मिस बरसो फिर फिर,
सघन घटा में श्याम रूप धर।

पहली कलशी आशामृत की अफ्रीका में ढुरकाई,
तू ही जाने माली! तुझको भूमि पराई क्यों भाई!

किसी भाँति ये नये मुसाफिर,
चल प्रिटोरिया पहुँचे आखिर।
भेद यहा पर श्याम धवल का,
नैटल से भी अधिक प्रबल था।
ट्रान्सवाल में भारतवासी,
मन्द भाग्य जो हुये प्रवासी,
उन्हें यहा पर घोर कष्ट था,
वाम विधाता महा रुष्ट था।
वर्जित था सडकों पर चलना,
भोजन-गृह में भोजन करना।
निशि में प्रथम प्रहर-अनन्तर,
रहना पडता घर के भीतर।
थे निषिद्ध व्यापार वणिज सब,
कर पाते थे गन्दे करतब।

विहित काम था बोझा ढोना,
था होटल में बर्तन धोना।

स्वस्थ वास गृह इन्हे न मिलते अलग दलित थे रह पाते;
हाय अभागे भारतीय सब यहा कुली थे कहलाते।

अभी यहा मोहन थे अभिनव,
हुये स्वयं पर सारे अनुभव।
निशि में घूमे भोले भाई,
धक्के खाये चखी मिठाई।
आते ही जब गये थके से,
होटल में ये रह न सके थे।
प्रतिदिन बहुविधि सही यातना,
करते थे नित नई साधना।
राज्य यहा था श्वेत चर्म का,
स्वार्थ-धर्म का पाप-कर्म का।
भर उमग में अजब ढग का—
झूम रहा था दंभ रग का।
पर ज्यों सरसिज बसे सलिल में,
सज्जन रहते हैं सब थल में।
इसी न्याय से थे कुछ सज्जन,
मुदित हुये जिनसे मिल मोहन।

सुहृद अटर्नी बेकर जैसे हिय हर्षे जिनसे मिलकर;
ज्ञान-धर्म की शुभ चर्चा से स्नेह बढ़े उर-पट खुलकर।

बेकर जैसे सीधे भाई,
मिले और भी कई इसाई।
इनमे होता धर्म-विवेचन,
प्रतिदिन तथ्यों का विश्लेषण।
चिन्तन साधन मनन अध्ययन,
करते रहते थे यों मोहन।
जब इनको यह शका होती—
सुमति-मराली चुने न मोती,
रायचन्द्र को भारत लिखते,
मन में शका तनिक न रखते।
प्रभु का प्रतिदिन रहा अनुग्रह,
इनको था ज्ञानार्जन-आग्रह,
पढ़ पढ नाना ग्रन्थ निराले,
इनने चिर मृदु तथ्य निकाले।
ऋषि थे टॉलस्टाय सुधा-धर,
पढ कर उनके ग्रन्थ मनोहर।
मोहन के नयनों में सरमा विश्व-प्रेम का दिव्याञ्जन;
या उड़ पहुँचे सुधा-नदी के प्रेम-घाट तट दग खञ्जन।
वास यहा का इनको भाया,
नाना विधि का अनुभव पाया।
दिन-दिन बढता था नव परिचय,
होता था नव आशा-सचय।

गोरे काले शासक शासित,
ऊँचे नीचे त्रासक त्रासित,
व्यापारी पंडित बैरिष्टर,
धनी गुनी मालिक या नौकर,
अलग अलग ये मिलते सबसे,
व्यस्त रहे यों आये जब से।
इधर मुकदमा समझ रहे थे,
विविध भांति यों उलझ रहे थे।
उभय पक्ष को थे समझाते,
विविध युक्ति अरु तर्क लगाते।
कहते ये समझौता करलो,
किसी व्यक्ति को पंच मुकरलो।

इधर सेठ अब्दुल्ला इनके थे स्पर्द्धा में बहुत कड़े;
उधर सेठ तय्यबजी सम्मुख प्रतिपक्षी थे बहुत बड़े।

पर मोहन ने धैर्य न छोड़ा,
समझाने से चित्त न मोड़ा।
आखिर इनको मिली सफलता,
सम्मुख प्रकटी सत्य-प्रबलता।
बहुत दिनों से दिल थे उलझे,
पंच-न्याय से अब वे सुलझे।
कठिन कार्य है 'केस' चलाना,
प्रतिपल अगणित युक्ति बनाना।

पानी की ज्यों धन बहता है,
मन में शूल चुभा रहता है।
दोनों पक्ष हुये अब हलके,
नये स्नेह के रस थे छलके।
मानों शिर से छप्पर उतरा,
विष-घट बिखरा, जीवन उभरा।
और मूल मे धन के पथ से,
खिला वणिज नित नव सचय मे।
उभय पक्ष ने तरुण कृती को माना सच्चा उपकारी;
क्यों न मुदित अति मोहन होते परम मोद के अधिकारी।
मिलती जब यों इन्हें सफलता,
अधिक सुरस हित हृदय मचलता।
आल्हादित हो सरल उछलता,
जाने भरता कौन चपलता?
सत्य-शोध में साहस बढ़ता,
प्रभु-चरणों में मन-मधु चढता।
शुद्ध भक्ति में निष्ठा जमती,
तुष्टि-गन्ध आ मन में रमती।
व्यस्त कार्य में प्रतिपल रहते,
नहीं लगन में आलस सहते।
देख यहाँ के रंग-भेद को,
भारतीय के कष्ट-खेद को,

नव भावों का करके वितरण,
तनिक यहाँ भी किया जागरण।
फिर ये वापिस डरबन आये,
ट्रांसवाल से अनुभव लाये।

सोच रहे थे भारत लौटू पर मित्रों के आग्रह ने-
रोका इनको अफ्रीका के पूर्व-पुण्य के संग्रह ने।

नैटल में थी धारा-परिषद,
मिले वहाँ के श्वेत सभासद।
मिलकर नूतन प्रश्न उठाया,
एक नया बिल पेश कराया।
बिल क्या था यह अनाचार था,
हिन्दी-हित पर कटु कुठार था।
मताधिकारी भारतवासी,
खोते अपना स्वत्व प्रवासी।
बिल-विरोध-हित कटि-पट कसकर,
खड़े हुये तब मोहन हँसकर।
शीघ्र सभा का किया संगठन,
करना था समुचित आन्दोलन।
जनता का विश्वास जगाना,
भय-संशय की भीति भगाना,
एकाकी को बहुत काम था,
पर यह कर्त्ता धैर्य-धाम था।

शीघ्र इसीसे तन-मन धन दे मिले सभासद सहचारी,
सिखे युवक जन-सेवक इनको आज्ञाकारी गुण धारी।

नैटाल के अफसर सरकारी,
जो थे ऊँचे पदाधिकारी,
उनको अपना लक्ष्य बताया,
विविध युक्ति दे मन समझाया।
जनता से सहयोग बढ़ाया,
जागृति का सन्देश सुनाया।
किया प्रकाशन विविध रीति से,
चला कार्य यों बुध नीति से।
देश देश में किया प्रकाशन,
खूब हुआ बिल का विज्ञापन।
सरल माँग यह न्यायोचित थी,
कार्य-प्रणाली भी समुचित थी।
भारत ने भी किया समर्थन,
हुआ विलायत में अनुमोदन।
एक प्रार्थना-पत्र मनोहर—
लिखा पुनः मोहन ने सुन्दर।

दस सहस्र हस्ताक्षर लेकर उसको प्रस्तुत करवाया,
लार्ड रिपन के पास शीघ्र फिर इनने लन्दन पहुँचाया।

बाहर अपना पक्ष दिखाकर
अरु थोडा अनुमोदन पाकर,

अफ्रीका में आशा चमकी,
श्याम-घटा में बिजली दमकी।
कालों को कुछ ढाढस आया,
डूब रहे थे आश्रय पाया।
नैटल के सब भारत-वासी,
हुये एकता के विश्वासी।
पा मोहन सा सूत्र सलौना,
सबने सीखा हृदय पिरोना।
सघ-सगठन-हार सजाया,
वह नव अनुभव सबको भाया।
प्रति माणिक उस माला वाला,
रहा न केवल शामी काला।
माणिक ने नव सूत्र गहा था,
इसीलिये वह सोच रहा था—

मैं अगणित हूँ चहू दिशि मेरे मुझे अकेला कौन कहे,
मिले चक्र में जो माला के वह तो योंही घिरा रहे।

ओ मन-मोहन! माला वाले,
ले मुझको भी गूँथ मिलाले।
महा संघ में सुभग बुलाले,
मलिन लगूँ तो मुझे धुलाले।
यों नैटल के हिन्दुस्तानी,
हुये तनिक अब स्वाभिमानी।

मोहन ने जब पथ दिखलाया,
अपना स्थाई संघ बनाया।
हुई स्थापना राष्ट्र-सभा की,
ज्योत्स्ना थी जो श्याम-विभा की।
मोहन मानो विधु थे उजले,
चारु चन्द्रिका जिसमे निकले।
राष्ट्र-सभा की क्रिया-प्रणाली,
थी इन कालों की उजियाली।
अमित कार्य था तथा जटिल था,
अविरल श्रम से हुआ सरल था।
भारतीय नैटाल कांग्रेस नाम सभा का था रुचिकर,
अर्द्ध वाटिका अभी लगी थी आते थे नव नव मधुकर।
स्वर की नव झंकृति को भरना,
जन-मत को था जाग्रत करना।
अरब पारसी और इसाई,
अलग अलग थे सारे भाई।
क्लेद भेद था दूर हटाना,
छोटेपन का खेद मिटाना।
कुछ थे स्थाई भारतवासी,
हुये यहा के जो अधिवासी।
राष्ट्र-भाव था उनमें भरना,
शिक्षित भी था उनको करना।

विचार,पे

अफ्रीका में हीन प्रवासी,
है किन कष्टों का अभ्यासी,
दीन-दशा का करके चित्रण
लिख कर उसका सच्चा वर्णन,
था प्रचार का काम बढाना,
सब क्लेशों को सम्मुख लाना।
प्रचुर प्रकाशन करके जग में जन जन को अवगत करना,
भारत के कोने कोने में था पूरा विवरण भरना।
विपद एक अब सहसा आई,
पुष्कल उसने प्रगति बढाई।
गिरमिटिये हिन्दुस्तानी पर
लगा एक भारी अभिनव कर।
पच्चिस पाउँड कर सालाना,
इसे असंभव था भुगताना।
इतनी तो थी नहीं कमाई,
कैसे करता कृषक चुकाई।
राष्ट्र-सभा ने प्रश्न उठाया,
देश देश में स्वर पहुँचाया।
लिखे स्वयं मोहन ने विवरण,
पूरा हुआ प्रकाशन वितरण।
जब कुछ गति में मिली सबलता,
हुई सभा को तनिक सफलता।

तीन पोंड का कर फिर घटकर,
चिपका आखिर गिरमिटियों पर।
यों मोहन को विविध कार्य में तीन वर्ष बीते क्षण में,
अन्य वस्तु है याद न रहती सुभट रहे जबतक रण में।
ओ अविश्रान्त अध्यवसाई!
अफ्रिका के गान्धी भाई!
वृति-वर अद्भुत शतावधानी!
चरित तुम्हारे अगणित नानी।
विरुद-काव्य है प्रति प्रभात तव,
कीर्ति-उषा है कवि-कुल-खग-रव,
क्रिया धातु मे प्रति पल तेरा,
विधि न विरचा व्यस्त घनेरा।
नित्य अदालत में भी जाना,
निज व्यय जितना द्रव्य कमाना,
विविध जनों की पीड़ा हरना,
बिना शुल्क समझौते करना,
सुहृदों का उपचार-भार है,
जन-सेवा की गति अपार है।
एक तेज तू सहस्र हुआ है प्रेम तरङ्गों में बंटकर,
अगणित होने को तू पल पल बढ़े जारहा है डटकर।
ओ अधीर! टुक देख उधर भी,
लगा तुम्हारे पीछे घर भी।

मिथ्या-दे

भला सत्य अरु वीत-राग पर,
गृहणी के भी बड़े भाग कर।
क्या न तुम्हें है भारत चलना,
परिजन वधू बन्धु से मिलना?
देस प्रिया को पर उपकारी,
सत्य-परीक्षण के अधिकारी।
सुधि का दीप जलाये सजनी,
मानो कृष्ण-पक्ष की रजनी,
किंवा निशि की कुमुद-कुमारी,
जोह रही शशि! राह तुम्हारी।
देखो निशि के कुमुद-नयन वे,
विधु! तुम बिन है व्यथा-अपन वे,
स्मृति-भावों के कितने तारे,
चमक रहे हृद-नभ में सारे!

एक वर्ष की कहकर आये तीन वर्ष में जाते हो;
फिर भी अपने सत्य प्रेम पर फूले नहीं समाते हो।

जब से तेरा पाणि गहा है,
सदा देवि ने विरह सहा है।
तुमने उनको नित्य सताया,
जग से न्यारा पंथ दिखाया।
कभी न कोई जिस पर चलता,
ऐसा मग है तुमको मिलता।

कभी सयाने चलें न जिसपर,
चलता विरला पागल उस पर।
किसको शूल चुभोना भावे?
असि-धारा पर पागल धावे।
धन्य सती पर तुम्हें न छोडा,
कभी न पल भर मुँह को मोडा।
शंकर भाग धतूरा खावें,
अहि-भूषण अरु भस्म रमावें,
या पीते हैं घोर हलाहल,
तेरी त्यों हैं नंगे पागल।
धन्य धन्य पर गिरिजा गौरी पति को परमेश्वर माना,
धन्य वधू कस्तूरा तुमसा प्रेम-नेम किसने जाना।
भारत में भी जब से आये,
वही गीत हैं तुमको भाये।
अफ्रीका की कष्ट कथा को,
भारतीय की अमित व्यथा को।
क्यों जन जन मे कहते डोलो?
क्यों तुम भेद पराये खोलो?
कभी मुम्बई या कलकत्ता,
ठौर ठौर क्यों मापो रस्ता?
पूना में मदरास नगर में,
घूम घूम कर डगर डगर में,

बहुत यत्न से सभा कराके,
अफ्रीका की कथा सुनाके,
पीड पराई यहा सुनाते,
क्यो निज पथ में शूल बिछाते ?
तुमको फिर अफ्रीका जाना,
उचित नहीं यों शत्रु बढाना।

अखबारों में विविध लेख लिख बहुत प्रकाशन करते हो;
खबर विलायत तक यह फैली क्यों न कहीं तुम डरते हो ?

अब की अफ्रीका में रहकर,
दशा वहां की मन मे गह कर,
मानो मोहन बदल गये थे,
चलते चलते उछल गये थे।
सत्य अड सा जो था अबतक,
पीडा-ताप लगा जब भरसक,
हृदय-नीड में दरका वह अब,
अफ्रीका में हुआ उष्ण जब।
विहग-बाल वह लगा चहकने,
उर कलरव से लगा महकने।
फर-फर उडकर मन-उपवन में,
भरता था नवरव जीवन में।
मुखरित था मोहन का अन्तर,
चपल बहुत था नवल पक्षधर।

पंछी था वह नन्दन-वन का,
बहुत दुलारा था मोहन का।

प्रिय नभ चर को पाकर चल मन ऊँचा अम्बर में उड़ता
दोनों अमर विपिन वासी थे क्यों न सख्य इनमें जुड़ता ?

जाने क्या मोहन ने पाया,
कौन महारस मन ने लाया ?
पता नहीं क्या दृश्य मनोहर,
दीख रहा था क्या कुछ सुन्दर ?
कौन छटा दृग सींच रही थी ?
नयनों ने नव ज्योति गही थी।
प्रभा कौन लोचन ने आँकी,
दीख गई जाने क्या झाँकी ?
उर में सहसा मधुरस बरसा ?
पता नहीं कैसा घन सरसा ?
जाने किस आशा से भर कर,
उमड पडा उत्साह भयंकर।
आगे आगे हृदय दौड़ता,
देह न दिलका साथ छोड़ता।
अंग अंग में भरी उमंगें,
जाने कितनी मोद-तरंगें ?

मोहन के अणु अणु में जाने कितना जीवन लहराया !
छलक रहे थे तन मन रस से महा शक्ति-बल घन छाया।

चैन नहीं था पल भर तन को,
धैर्य नहीं था क्षण भर मन को,
दौड रहा था सरपट पथ पर,
नव तुरग सा मोहन गुणधर।
श्रेय सुफल के सुख में भर कर,
कांप रहा था तन-मन थरथर।
कहीं दूर पर ज्योति-महल सा,
दीख रहा था चहल-पहल सा।
वहीं—केन्द्र पर नयन लगे थे,
मन में अगणित भाव जगे थे।
राम-बाण सा चचल घोडा,
जाता था एकाकी दौडा।
स्फूर्ति सरलता तेज चातुरी,
शम दम साहस त्याग-माधुरी,
गुण-पतग सब ज्योति हेर कर,
हुये इकट्ठे उसे घेर कर।
पर क्या उसका ध्यान बँटाते गुण-दीपक ये साधारण ?
दीख रहे थे उसे ज्योति के रग-महल में नारायण।
मन-पट उसके उघड पडे थे,
मधुर हृदय के तार जुडे थे।
हृद-वीणा की मृदु झंकारें,
मानों प्रभु की अमर पुकारें,

निकल रही थी तान सुरीली,
सुधामई स्वर-छटा नशीली।
मन करुणा से छलक रहा था,
रोम रोम खिल पुलक रहा था।
सत्य-सोम अब झिलमिल-झिलमिल,
खेल रहा था दिल मे खिल-खिल।
पुलक भाव के मन में जागे
प्राण प्रेम-पथ पर अनुरागे।
संशय-रेखा घिस-घिस घटके,
हुई साफ अब बिलकुल मिट के।
अमित धर्म की चाह जगी थी,
नन्दन-वन की वेलि उगी थी।
चाह यही थी क्षण में व्यक्ति की वैयक्तिक सीमा तोड़ूं,
विश्व राज्य में फैलूं नाता विश्वम्भर से झट जोड़ूं।
सत्य-तेज की माणिक-कणिका,
धँसी हृदय में थी विभु-मणिका।
अति आतुरता बढ़ी हुई थी,
कर्म-चपलता चढी हुई थी।
सकल सृष्टि माया का फल है,
सत रज तम का सम्बल है।
जहा प्रचुरता सत की होती,
अन्य गुणों की गरिमा खोती।

यद्यपि द्वन्द्व तनिक वे करते,
पर न उभड़ कर अधिक उभरते।
मिले धरा फिर सत को उर्वर,
फिर विवेक-घन बरसे झरझर,
विनय-वायु अनुकूल मनोहर,
खिले न फिर क्यों सत का तरुवर?
यों मोहन में सत-तरु विकसा,
हृदय कृती का मधु पी हरषा।

कभी तमस शंका तो करता पर न विजय उसकी होती;
ज्योति-चक्र की किरणें आकर सारा अँधियारा खोतीं।

अफ्रीका में मूर्त्ति आसुरी,
दिखा रही थी शक्ति चातुरी।
थी असह्य निर्बल की पीड़ा,
मान-हानि की वेधक क्रीड़ा।
व्यथित बहुत था हिन्दुस्तानी,
रोकर सहता था मनमानी।
गिरमिटियों की कष्ट-कहानी,
रोया वह भी जिसने जानी।
मान-हानि क्या, उन्हें पीटना,
मार मार कर तन घसीटना,
तनिक बात थी यह प्रतिदिन की,
अति दारुण थी पीड़ा उनकी।

गिरमिटियों के निष्ठुर स्वामी,
हृदयहीन थे दुर्जन नामी।
अरु गिरमिटिया क्रीत दास सा,
नित्य भोगता मृत्यु-त्रास था।

लख कर नर की प्रचुर क्रूरता मोहन का मानस छलका,
और दृश्य अब एक अनोखा अन्तर के पट पर झलका।

पर-पीड़ा में भाग बँटाने,
और पराया बोझ घटाने,
राम नाम रम्भा का रटकर,
लगे कर्म में मोहन जुटकर।
तन-मन-धन की सुधि बिसराई,
भाव-भरी मधु-गंगा पाई।
सत्पथ पर चलने में इनको,
महा मोद मिलता था मनको।
यत्र-तत्र ये नहीं झाँकते,
हठ से दिल को नहीं हाँकते।
दिल ही इनको हाँक रहा था,
क्षितिज-तेज को ताक रहा था।
हृदय न पल भर रुकने देता,
तथा न झुकने-थकने देता,
पल पल तन को पेला करता,
व्यथा-गेन्द से खेला करता।

प्रेम-प्रभा की किरणें पीकर हृदय हुआ था मतवाला;
तार तार था झंकृत उसका पीकर पर-पीड़ा हाला।

मधु से दिल मदहोश हुआ था,
पर न अभी सन्तोष हुआ था।
नव मरन्द का स्वाद लगा था,
पिछला संशय-वाद भगा था।
सूझ रहा था पथ पर बढ़ना,
गौरव-गिरि-शृङ्गों पर चढ़ना।
किसने इतना जोश भरा था!
पर न तनिक भी तोष धरा था।
आत्म-तेज-विश्वास उमड़ कर,
भरा हृदय में घुमड़ घुमड़ कर।
श्रोत अमर साहस का फूटा,
जन जन ने निष्ठा-मधु लूटा।
तार अभी फिर इनने पाया,
अफ्रीका ने पुनः बुलाया।
तत्पर तुम नित प्रभु के सैनिक,
कर्म तुम्हारा यह तो दैनिक।

साथ चलेंगी पर कस्तूरी एकाकी तुम जा न सको,
कौन भरोसा करे तुम्हारा शायद जाकर वहीं रुको।

कहते कुछ हो करते कुछ हो तुम हो बिलकुल झूठे;
या प्रपञ्च में फँस कर होते सारे ढङ्ग अनूठे।

इसीलिये शिशुओं को लेकर साथ चली कस्तूरी
उमा साथ थी शशि-शेखर के कृपा हुई अब पूरी।
चलीं क्षमा सी साथ सत्य के तारण-तरणी जननी,
राका शशि की शुभ्र चन्द्रिका पाप ताप भय हरनी।

महापोत में बैठे ये सब प्रभु का सुमिरन करके
मगल-निधि ये सिद्धि साथ में भय भागे भव भर के।
सागर-पथ पर भय दिखलाने चली वेग से आन्धी
सहपथिकों सम विचलित होते कैसे कैरट गान्धी?

यह आन्धी क्या तटपर चलकर कडी परीक्षा होगी,
कब न कनक अरु महापुरुष ने अनल-यातना भोगी?
खोज रहे हैं इन्हे रुष्ट हो सब डरबन के गोरे;
रह न सकेगा गान्धी जीवित कहते वे मद-बोरे।

इस गान्धी ने अयश हमारा जगह जगह फैलाया,
कुली बहुत से भर लाया अब झगडा करने आया।
अब डरबन की पुण्य भूमि पर यदि वह पाँव धरेगा
यहीं मरेगा तथा किये का सारा दण्ड भरेगा।

भूल जायगे धूम मचाना क्षण में काले शामी,
नही दण्ड बिन सीधे होते दासी-दास हरामी।
श्वेत-जाति है प्रकटी भूपर जग का शासन करने,
विश्व-विजय के घोर घोप से नभमण्डल को भरने।

मजा देख तू गान्धी आकर बोटी बोटी बिखरे,
दशा तुम्हारी देख कुली सब भूल जायगे नखरे।
ससृति-शोभन मोहन ने भी सभी सूचना पाई
सुहृदों ने सब कथा यहाँ की उनके पास पठाई।

कभी न रुकते रथी पार्थ पर देख मोरचा भारी,
सत्य-पथिक के रथ के चालक होते स्वय मुरारी।

सत्य-वीर को अतिशय रुचता नित खतरे का अवसर;
मँजा खिलाड़ी खेला करता सदा काल से चौसर।

सत्य-मार्ग पर चलते आवे यदि प्राणों की वेला;
मुदित-हृदय भट 'धन्य भाग्य' कह जूझे सहज अकेला।
जुग-जुग जीवें महाभाग वे सत्य-सुजल के चातक,
धन्य धरा को करते धोकर हरते कलि-मल-पातक।

निर्भय मोहन मृत्युञ्जय से डरबन आकर उतरे,
पाँव पयादे चले, साथ थे सुहृद लॉफटन सुथरे।
सकुशल भेजा बच्चों को तो रुस्तमजी के घर पर;
चले स्वयं फिर भय के सम्मुख राज-मार्ग पर धृति-धर।

पथ पर इनको पाकर सहसा श्वेत-भीड़ चिल्लाई;
थके हुये व्याधों ने मानो सम्मुख मृगया पाई।
'पकड़ो मारो' बोले पागल "गान्धी कुटिल यही है,
जिसने ढोल बजाकर अपनी अपयश-कथा कही है।

टूट पड़े सुन, मक्खी उमड़े जैसे देख मिठाई,
कंकर ढेले ठोकर मुक्के थे आन्धी सी आई।
अभिमन्यू तो था सशस्त्र, थे सिर्फ सात हत्यारे,
वीर निहत्था शत्रु सैंकडों प्रभु बिन कौन उबारे।

शिर पर कर धर मूर्त्त पुण्य सा देखो तरुण खड़ा है,
क्षुब्ध-सिन्धु पर पथ-निर्देशक ज्योतित भवन ज़ड़ा है!
सहकर अगणित आघातों को व्रती हुआ है आहत;
आज हुई इसके मिस घायल श्वेत-जाति की राहत।

धरे शीप पर उभय हाथ यह महापुण्य जगती का,
पशु-बल से क्यों सत्य व्यथित है वसुधा-धरा-सती का?
लगे बहुत से कंकर ढेले चोट बहुत थी आई,
पड़े वक्ष पर पदाघात वह सहसा सुधि बिसराई।

उधर सिन्धु में शिहर रमा-पति लगे रमा से कहने-
भृगु ने मारी लात यहीं फिर लगी कसक क्यो चलने ?"
कोमल कर से पति-उर सुहला बोली कमला हँसती,
वसें हृदय मे भक्त तुम्हारे हम चरणो मे बसती।

इधर एक गौराङ्गी महिला मानो पद्मा प्रकटी,
देख दशा मोहन की झटपट देवि भीड मे झपटी।
खडी हुई आहत के आगे ज्यो जननी कल्याणी,
मानो थी प्राचीर पुण्य की प्रभु की करुणा-राणी।

दिव्य दीप पर आञ्चल-पट था व्यर्थ वायु के झोके,
दुर्गे! तैने दूत तमस के पथ पर बढते रोके।
केवट आहत पडा हुआ था भीषण थी जलधारा,
आज डूबता श्रेय श्वेत का तैने देवि! उबारा।

अपने हाथो नाविक-वर को मार रहे थे राही,
बुला रहे थे भव-सागर मे अपनी घोर तबाही।
तू न अगर होती तो जगती अपना प्रभु-धन खोती,
हाय कल्पना भी असह्य है मानवता क्यो रोती ?

पाप नशाये उन श्वेतो के अपने भाग्य बढाये,
तरुणी! तैने तरणी बनकर जग के पुण्य जगाये।
केवट ने राघव को तारा अपना जन्म सफल कर,
गौरी तैने हृदय हमारा भेजा सकुशल घर पर।

तू क्या जाने भोली ललना तैने किसे बचाया;
कौन जन्म के महापुण्य ने तुमको सुधा चखाया।
पुण्य-मेरु का शृङ्ग-मुकुट है मोहन सत्य सुधाकर,
त्रिभुवन-सर के सुधा-मथन का शुभ फल है करुणाकर।

पात्र मान कर तुम्हें नियति ने मान दिया बलिहारी
पुण्य तुम्हारे गुणित हुये है सफल साधना सारी।

करुणा-घन की मरुत-वाहिनी ज्योति-धूम सी नारी;
सदा नयन-नभ से रस वरसो प्रेम देव की प्यारी।

स्वस्थ हुये गृह-उपचारों से मोहन थोड़े दिन में;
उपद्रवी भी भूल समझ कर लज्जित थे निज मन में,
जब पत्रों मे इस घटना का हुआ प्रकाशन पूरा;
श्वेत-अयश का भरा कटोरा जो था रहा अधूरा।

उपनिवेश-मन्त्री ने सुनकर लन्दन से कहलाया;
गान्धी के सब अभियुक्तो पर जावे केस चलाया।
सुन यह गान्धी बोले मानो मुख से फूल झडे थे;
मधुर गिरा के मोती बिखरे अब तक द्वार जड़े थे :-
"जुग जुग जीवें बन्धु भावते जिनने मुझे जगाया;
जिनने कुभय मृत्यु का मेरे मन से मार भगाया।
मेरे कारण दण्डित हों वे मुझ सा कौन अभागा,
मेरा साक्षी मेरा अन्तर है उनसे अनुरागा।

मुझे मान अपराधी भ्रम-वश उनने उचित किया है,
भ्रान्ति मिटाऊँ उनकी, प्रभु ने अवसर मुझे दिया है।"
सुनकर पुलके अधिकारी भी पीकर मधुरी वाणी;
प्रेम-सुधा से विश्व हरा है क्यों न खिलें फिर प्राणी?
गौरा ने भी माना कुछ, यह व्यक्ति नहीं साधारण;
श्वेत-विपिन में क्रीडा करने आया श्यामल वारण।
सत्य-वकालत करते मोहन और राष्ट्र की सेवा;
परिचर्या-जल पीकर, चखते प्रेम-पीड़ का मेवा।

प्रेम-सरोवर मे मदमाता प्रिया सहित खुल खेले,
सघन विपिन मे अमर सत्य की कमल-नाल कर ले-ले।
व्यस्त हृदय नित नवल भैरवी मञ्जु मोद मे गाता;
प्रति प्रभात अफ्रीका मे था नव अनुभव भर लाता।

एक दिवस ये बैठे थे तब घर पर भिक्षुक आया
वह कोढी अरु गलित अङ्ग था उन्हे अधिक वह भाया।
उसे स्नेह से खिला पिला कर निज कर से व्रण धोये
मरहम-पट्टी करके उसकी अपने नैन भिगोये।

पडी व्रणो मे शान्ति अतिथि के पर उसके अन्तर मे
गहरे घाव करे मोहन ने लाड लडा कर घर मे।
मन-मन्दिर मे बिछी कहा से ऐसी शीतल पाटी?
ओ मन-मोहन! किससे सीखी बता प्रेम-परिपाटी?

क्रीडा करता कुँअर तोतले खुल कर प्रेम-अजिर मे,
अरे स्नेह के सरसिज तू क्यो विकसा है भव-सर मे?
सजा तुम्हे किस नारायण ने प्रेम-सेव सा पगले?
पर-पीड़ा के तनिक ताप से झटिति मोम सा पिघले?

दलित, दरिद्री भिखमगो मे बता राम क्यो बसता?
क्यो न महल के मधुर मद्य मे राम तुम्हारा हे सता,
कहाँ दुरा वह नयन-नीर मे क्यों न हमे दिखलाता?
दीन-हृदय से टेर तुम्हे ही क्यो वह निकट बुलाता?

फिर नयनो की आर्द्र गिरा मे क्या वह तुमसे कहता?
मर्म कथा वह सुन कर क्यो तव हृदय आर्द्र हो बहता?
नयनामृत का मधुमय विनिमय किसने तुम्हे सिखाया?
किस रस-गुरु से भाव-मन्त्र यह मोहन तुमने पाया?

एक बून्द मधु मोहन! मुझको दास मान कर दे दो,
तनिक भॅवर से बाहर तक को मेरी नय्या खे दो।
गुह-शबरी को गह कर राघव! तुमने विरुद बढाया,
राम! तुम्हारे इसने देखो कोढी हृदय लगाया।

भक्त तुम्हारे माधव! तुमसे ज्यादे बढते गुनते,
गुरु तो गुड़ से रह जाते हैं, चेले शक्कर बनते।

यहाँ श्वेत-शासन की प्रभुता, शायद कुछ भय पाया;
इसीलिये या मोहन तुमने कोढी को अपनाया?

इस कोढी की परिचर्या ने अस्पताल खुलवाया,
'करूँ शुश्रूषा नित्य रुग्ण की', गान्धी ने रस पाया।
बूथ नाम के योग्य चिकित्सक वे भी थे कुछ पागल;
गोरे होकर भी वे सज्जन, थे करुणा के बादल।

धन्य पारसी रुस्तमजी ने दान दिया था पुष्कल,
खुला चिकित्सालय यों निर्मल दीन-हीन का सम्बल।
उसमें जाकर घंटो मोहन करते थे परिचर्या,
अर्थ-हानि बहु इन्हें हुई जब, बदल गई दिनचर्या।

शिशु-पालन-विधि सीखी इनने और बहुत सी बातें,
रुग्णों की सेवा में प्राय बीता करती रातें।
सौम्य सरल नियमित साधक का त्याग भरा था जीवन,
चले गये थे बहुत दूर पर कृत्रिमता से मोहन।

तरुण-वयस में विरति-भावना, है यह पूत पहेली,
विरति-भामिनी थी पर इनकी प्राणाधार सहेली।
मिताचार शम-दम से ये थे रहते गृही विरागी,
वानप्रस्थ जीवन की इच्छा अब थी मन में जागी।

कन्द मूल फल खाकर थोडा, जीवन-यापन करते,
ज्ञान मनन अरु प्रेमामृत से मन-गगरी को भरते।
मिताहार, फिर सात्विकता से उपवासादिक रखते;
मारजयी नित ब्रह्मचर्य का स्वाद मनोरम चखते।

एक निष्ठ पत्नी व्रत पावन अब तक सदा निवाहा,
आज तरुण ने ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण किया मनचाहा।
मनसा वाचा और कर्मणा जिसका अन्तर बाहर,
यज्ञ-वह्नि सा अति पवित्र हो, धन्य वही नर-नाहर।

ब्रह्मचर्य है असिधारा-सम, विघ्न बहुत है इसमें
इन जैसे ध्रुव अटल कृती पर, फँसे न माया-रस में।
दृढ़ संयम के साथ सजी हो विनय-भावना प्यारी,
राम-कृपा पतवारी से फिर पार जाय व्रतधारी।

नम्र विनय संयम से व्रत की चले त्रिवेणी पावन,
पहुँच सिन्धु में मिले, सफल हो, व्रती राम का धावन।
वे प्रयाग के संगम मोहन, उन्हें विघ्न क्या कहते,
प्रेम-वारि की प्रबल-धार में गिर कर वे भी बहते।

विघ्न सामने आये भी पर, थी प्रभु की अनुकम्पा,
क्या पीता कलि-दानव-मधुकर, महक रहा था चम्पा ?
लगे सोचने मोहन अब मैं परावलम्बन छोड़ूं,
क्रीत पराई सेवा लेकर वृथा भार क्यों जोड़ूं ?

मितव्ययी को राग-जयी को होता सब कुछ संभव,
विभव-मोह जो तज देता है, तजता उसे पराभव।
यही सोच, निज कपड़े इनने धोये अपने कर से,
विधि धोने की सीखी सारी गान्धी ने निज घर से।

थे बैरिष्टर, अब हो धोबी, काफी करी कमाई,
खूब तरक्की करते हो तुम प्रति दिन गान्धी भाई।
यदि तुम भारत में ही रहते, तो फिर दादाभाई,
कैसे करने देते बोलो, ऐसी बड़ी कमाई !

अभी बने हो धोबी, जाने क्या क्या अभी बनोगे ?
भारत में तो भंगी भी हैं, किसका काम चुनोगे ?
विश्व-मित्र ने क्षत्रिय होकर, ब्राह्मण बनने खातिर-
घोर तपस्या की थी, ऋषिवर सफल हुये थे आखिर।

ऊपर से नीचे को गिरना, भली तुम्हारी शैली,
धोबी क्यों फिर बनो श्रेष्ठिवर, भर सुवर्ण की थैली ?

बेटा बोला—'जननी अब मैं क्यों न बनूं सन्यासी?'
माँ बोली—'सुत क्यो न बने तू राजा सुयश-विकासी?'

यही मसल क्यों करते तुम भी, धोबी बनकर मोहन?
नई बात यह नीचे गिरकर, किसका सुधरा जीवन?
क्या कहते थे, सुनो गोखले, बात तुम्हारी सुनकर?
'तुम वकील क्या सार निकालो बोलो धोबी बनकर?'

थे अफ्रीका गये गोखले, पट उनका कुछ बिगडा;
वह सुन्दर पट सुहृद्-भेंट थी, था धोने का झगडा।
उन्हें शीघ्र था भारत आना, थोड़ा समय रहा था;
तब मोहन ने धोबी बनकर, मधुर विनोद सहा था।

सफल हुआ पर प्यारे धोबी। धोया घर का आङ्गन,
निज मन धोकर, धोये घरके वसन-हृदय तन-वासन।
कौन मैल जो धो न सका तू ओ भारत के धोबी?
विश्व-कलुप को धोने का है बहुत बड़ा तू लोभी।

धोये जा तू गिरि-प्रपात सा धोबी। नीचे गिर कर;
देखें कितना कलुप बहावे, भाग न जाना फिर कर।
प्रभु-प्रसाद बिन यह झरने सा गिरना कभी न होता,
जो गिर करके बहे चरण-तल, वही नीर जग धोता।

महा तुच्छ जो हो सकता है, विश्व-मुकुट है वो ही,
सब को पूजे वह नर होता ऐरावत-आरोही।
अतिशय विनई निरभिमान नर, या नारायण दोही;
ये ही मगल परम मोद के महायान-आरोही।

अहं हीन जो बिल्कुल होवे खोकर प्रभुता सारी,
तोड़ स्वार्थ की छोटी सीमा हो जाता अविकारी।
स्वत्व-बाँध को रचते वोही, जो कारीगर छोटे,
बाँध तोड़ते सच्चे शिल्पी प्रभु के प्यारे मोटे।

बाँध तोड़ कर भव-सागर में, वे केवट बन जाते;
और एक दिन पार पहुँच कर, अमरित-निधियाँ पाते।
स्वत्व गँवाकर जो नर जग में बन जाता निरमोही,
फिरें ढूढते स्वत्व उसे फिर, उन्हें दीरघता बोली।

इसी लिये मोहन सा गिरना, जिस धोबी ने पाया,
कौन अर्थ-फल, कौन धर्म जो, उसने नहीं कमाया?
स्वागत तेरा अद्भुत धोबी। स्वागत मोहन गान्धी।
भारत माँ की सच्ची प्रतिमा तूने ही आराधी।

जन जन को अपनाया तुमने, मुझको भी तो धो दो,
तब समझूँ, जब कलुष हृदय का मेरा भी तुम खो दो।
सफल हुये हो धोबीपन में अभिनव कर्म-चितेरे।
अभी शेष पर, भांति भांति के जग में काम घनेरे।

गोरा नाई केश तुम्हारे यदि अब नहीं बनावे,
तो क्या इसका यही अर्थ है, तू नापित बन जावे?
गोरा होकर, कृष्ण-केश वह छूकर, अगर सवारे,
उस बेचारे को तो तजदें, गोरे गाहक सारे।

नाई बनकर, तुमने भी क्या केश सँवारे सुथरे?
मानो मिलकर चूहों ने हैं केश रात को कतरे?
क्या कहते हैं इष्ट मित्र सुन, ओ बैरिष्टर नाई।
'इस गान्धी ने आज गांठ की सारी अकल गवाई।'

धोबी से हज्जाम बने पर हमें धुलाई भावे,
करो हजामत गोरों ही की, मूछ न उन्हें सुहावे।
हम कालों को उजला होना, हमको धोबी रुचता,
भेद-उस्तरा पटुता-कैंची गोरे प्रभु को जँचता।

अपनी नीतिमई कैंची को चला उन्हीं पर मोहन,
नीति-पात्र है वेन नृपति जो करें प्रजा का दोहन।

एक हाथ में पद्म विष्णु के, गदा दूसरे कर मे;
रुका हुआ कर कैंची से पर, धोबी है तू घर मे।
इतने श्रम से धोता है तू, सब कुछ उजला करता,
तीव्र बहुत पर कैंची, जिससे प्रभुता-मद को हरता।
रत्नाकर मे सुधा वारुणी बहुविधि रत्न भरे हैं,
उपयोगी हैं, मूल्यवान है, सारे बहुत खरे हैं।
मथें सुरासुर, मिलें सिन्धु से, रत्न चतुर्दश उजले,
श्याम-श्वेत के इस मन्थन से देखें क्या क्या निकले।
अति महान मे बहु विरुद्ध गुण प्रभु-माया-वश दिखते,
पुण्य पुरुष वे यद्यपि, केवल प्रेम सत्य से रखते।
जहाँ श्याम गान्धी सा होवे, क्यों न श्यामता-मान बढे?
अरे आन के मानी तेरा, क्यों न मान-सम्मान चढे?
कष्ट उठाया, झुका न जौ-भर, सदा मान को साधा,
ढालू पर्वत-पथ पर डट कर, सही सैकडो बाधा।
सूर्य-किरण-सम पर तुम सबको, सदा एकसा भरते;
अमित करो से करते पोषण, या रोगों को हरते।
तुम्हें व्यक्ति से द्वेष नहीं है समदर्शी भ्रम-मोचन।
मोह न तुम को हो सकता है हे गुण-गण-मन-मोहन।
स्वाधिकार के नाते यदि तुम गोरो से हो लड़ते,
उससे ज्यादे जाति-कलुप से तुम हो सदा झगड़ते।
सदा श्वेत भी मुक्तकठ से तेरा सत्य सराहें,
मानस को क्या वायस कोकिल? सभी सदा अवगाहें।
गौरव-मानी सेनानी! यह राष्ट्र-प्रेम भी तेरा;
सन्धि-युद्ध क्या, सब कुछ तेरा, विश्व-प्रेम का प्रेरा।
श्वेत-श्रेय या श्रेय श्याम का, नाम भिन्न हैं केवल;
है गुलाब के रग बहुत से, विमल सभी का परिमल।

खुला सरोवर है यह गान्धी, कोई भरले प्याला,
कोई भी मतवाला होले, धौला हो या काला।
श्रेय एक मे निहित दूसरा, सभी सुधी यों कहते,
अन्योन्याश्रय जग के सब कण, एक नियम मे रहते।

परम श्रेय को छोड अन्य सब, है प्रतिभासित सपना;
अरु वह तुझ से भिन्न नहीं है, रूप खोज तू अपना।
यहाँ वास नैटल मे करते जो भारत के भाई,
जाकर उनके घर पर मोहन, लखते स्वय सफाई।

जहाँ कहीं कुछ गन्दा पाते, कह कर उसे धुलाते,
भोले वन्धु दरिद्र जनों को स्वच्छ पाठ सिखलाते।
भारत मे दुर्भिक्ष भयानक उन्हीं दिनो था फैला,
घूमे मोहन अफ्रीका मे, लिये भीख का थैला।

दीन-हीन भारत वालो ने मधुर पाठ था पाया,
जन्म-भूमि से प्रेम निभाकर, सुखी हुई थी काया।
मातृ-धरा से प्यार हृदय का कैसे कहे प्रवासी?
हुये सुपथ पा भारत-वासी नेह-नेम अभ्यासी।

इस भिक्षुक की झोली मे थी सबने भिक्षा डाली,
मातृ-धरा से प्रीति-रीति निज सबने भरसक पाली।
नहीं धनी की सुवरण-मुद्रा थी थैली मे केवल,
गिरमिटियो की स्नेह-भीख ने पूरी झोली छलछल।

मातृ-भूमि के वन्धु-विरह को सदा प्रवासी जाने,
कोई उसको छूभरदे, वह छटा स्नेह की ताने।
मोहन ने नित मानवता के अति अन्तर को पकड़ा;
इनने अधिक न मनुज अग के वाह्य भाग को रगड़ा।

एक जगह पर, कहीं आर्द्रता जन-जन मे है रहती;
वहीं स्नेह का महा कूप है, वहीं जाह्नवी वहती।

तनिक धूलि की झिलमिल जाली रहती उसके ऊपर;
स्नेह-धार से उसे हटा फिर, बहती गगा झरझर।
उसी कूप के महाद्वार का द्वारपाल, ले ताली;
परख भूमि के पात्र-भाव को, सींचे मोहन माली।
सींच रहा, एकाकी बैठा अपनी धुन मे माली,
रमणि-रसा की सुरस-भावना मोहन ने प्रतिपाली।

अफ्रीका मे बोअर रण की फैल गई जब ज्वाला,
युद्धानल ने मोहन को भी नव उलझन मे डाला।
बोअर ही का पक्ष हृदय को न्यायोचित था जॅचता,
सवेदन का पात्र दलित जन, यही भाव था रुचता।

इधर ज्ञान-कर्त्तव्य तर्क से खींच रहा था मन को;
उलझन की अड़चन मे मति ने डाल दिया मोहन को।
उन्हीं दिनों इस ब्रिटिश राज्य के ये थे बड़े प्रशासक,
कहते–'ध्वसक अन्य क्रान्ति है; ब्रिटिश-नीति है पोपक'।

'भारत का उत्थान सफलता गौरव अरु आजादी,
ब्रिटिश-योग से उन्नति सभव, वर्ना हो बरबादी'।
'इसी राज्य का तुच्छ नागरिक मै भी हूॅ, इस नाते;
मेरा क्या कर्त्तव्य नहीं कुछ'? कहते ये रण-राते।

'स्वाधिकार जब ब्रिटिश नागरिक जैसे, प्रतिदिन मांगू,
वही राज्य अब विपद्-ग्रस्त है, कैसे पीछे भागू'?
ब्रिटिश-शिविर में रह, आहत की सेवा-रक्षा करना,
अगर लगे गोली तो अति शुभ सत्य-मार्ग मे मरना'।

'धर्म यही है रण मे जाऊँ, जाकर हृदय बिछाऊँ;
एक प्राण भी अगर बचाऊॅ, धन्य भाग तर जाऊॅ'।
'जले दीप यदि बुझता कोई, प्रभुवर। मेरे करसे,
भाग्य सुधर कर, तव करुणा से होवे अजर अमर से'।

मन कहता—'बोअर बेचारे युद्ध विवश हो करते;
स्वाभिमान-हित राष्ट्र-व्रती वे वीर समर में मरते'।

'आहत-सेवा करने में पर, अहित नहीं कुछ उनका,
तथा रहेगा साथ उन्हीं के संवेदन मम मन का'।
इसी भांति निश्चय कर मन में, लगे कार्य में मोहन;
लगे जुटाने सेवा-साधन, कर करके उद्बोधन।

हुये इकट्ठे थे ग्यारहसौ सैनिक भारत-वासी,
जो थे सच्चे सेवक सारे मोहन के विश्वासी।
श्वेत, सदा भारतवासी को कायर समझा करते,
कहते—'ये है दास सदा के मरने से है डरते'।

अत इन्हें रण-सेवा-हित भी काफी अड़चन आई,
बहुत यत्न से पर मोहन ने आखिर आज्ञा पाई।
पर, दासो ने समर भूमि में काम किया जा इतना,
कर न सके थे श्वेत वीर भी यत्न सहित उन जितना।

अगणित आहत रण-सेना से ढो-ढो कर ये लाते
तीस मील तक पैदल चल कर, घायल खुद हो जाते।
पर मोहन की लौह अस्थि ने कभी न जाना थकना,
थी अदम्य प्रभु-सेवा-वाञ्छा, वह क्या जाने रुकना?

शक्ति-केन्द्र हो ज्योतित तो क्यों पुरजो को भय होवे?
मोहन से नेता के सैनिक कैसे धीरज खोवें?
हृदय धड़क कर सब अंगो में सुरस रक्त का सरसे,
और अकेला 'एंजिन' अगणित चक्र-यन्त्र-दल कर्षे।

काम किया कालो ने अबकी, जितना उजला रन में;
गोरों ने भी माना मनमें त्याग बहुत है इनमें।
मान मिला अरु बढ़ी कीर्ति भी, पत्रो ने गुण गाया
श्वेत-श्याम-सम्बन्धो ने कुछ शुभ परिवर्तन पाया।

एक 'बार तो हुआ यहाँ तक, रण से आहत लाते;
भारतीय अरु गौरे 'टामी' साथ साथ थे आते।
चलते थकते बहुत दूर तक, सबको प्यास लगी थी;
क्षुद्र जलाशय आया पथ में, पर अब प्यास भगी थी।

श्वेत कहें पहले तुम पीओ, हम बोले तुम पीओ;
गद्गद गान्धी बोले मन मे यों सब पीओ जीओ।
श्वेत-श्याम में स्नेह द्वन्द्व था, क्या न करो तुम संभव।
गान्धी भाई। तुमसे विधि भी माने तभी पराभव।

जिस 'टामी' को श्याम रग था अगारा सा लगता,
जिस 'शामी' की छाया से जो श्वेत दूर था भगता।
पर जादू की प्रेम-छड़ी ने किया आज सम्मोहन;
क्या न करो सिरताज हमारे भारत-भूषण मोहन।

जाने कैसी क्षेम-जड़ी से भरी तुम्हारी झोली;
महा मन्त्र से खेले होली, तेरी पावन बोली।
तभी अमावस में प्रकाश-धर तैंने रची दिवाली;
हम कालों की श्याम-निशा में की तैंने उजियाली।

विरम हमीं में चन्द्र हमारे, चन्द्र-सूर्य हैं जब तक;
मोह निशा के ज्योति-सहारे। चमक हमीं में अनथक।
भारत वाले बुला रहे हैं, चल, भारत में गान्धी!
इधर प्रवासी भारत ने है प्रेम-डोर निज बान्धी।

गोकुल मथुरा और द्वारिका बोलो कहाँ चलोगे?
किसको विरह-निशा में छोड़ो किससे सूर्य मिलोगे?
कहीं रहो, पर सुमन पराये योंही नित मसलोगे;
सदा स्नेह की चक्की में तुम पर-मन-धान दलोगे।

तुम्हें रुलाना और हँसाना क्या न कहो है आता?
पर तुमको यह पावन दृग-रस है कुछ ज्यादे भाता।

यहाँ प्रवासी भारत वाले थे भी तेरे चेले,
सीख गये हैं चाल तुम्हारी लग्न कर कष्ट भमेले।
अरे अहेरी! यहाँ मृगों ने उल्टे तुझे फँसाया,
प्रेम-विपिन के मधु-का चसका तुझको यहाँ लगाया।

प्रेम-जाल से अमर हरिण रे! कैसे भाग सकेगा?
स्नेह-घास के इस लोभ को, कैसे त्याग सकेगा?
स्नेह-रज्जु से बँधा हुआ तू जब ये तुझे बुलावें,
आना होगा तुझको बेबुधे, जब ये डोर हिलावें।

हुई सैकड़ों विदा-सभायें वह हग-रत्न लुटाया,
तेरा स्वागत-गान अनोखा अफ्रीका ने गाया।
भाव भावते, हृदय पिघलते, थे तुझ पर न्योछावर;
नयन-गिरा ने होड़ा-होड़ी, अरपे रत्न मनोहर।

सुहृदों के मन उछल उछल कर, बाहर उमड़ रहे थे,
शिष्यों के भक्तों के उर-स्वर बन्धन तोड़ वहे थे।
जाता है तो जा तू जलधर! लेकिन फिर कर आना
मातृ-धरा के चरणामृत को ढेरें तब भर लाना।

नेह-नाव के प्यारे नाविक! रुक न कहीं पर जाना,
जब हम तुझे पुकारें पावन! ले पतवारी आना।
आना परम प्रदीप! हमारे हमको पथ दिखलाना।
अपने भोले गिरमिटियों को मोहन भूल न जाना।

देह-मात्र थी यहाँ हमारी, तुमने प्राण भरे हैं,
हे प्राणों के प्राण हमारे! जीवन सफल करे हैं।
श्याम गात्र था, हृदय श्याम था आया तू घन श्यामल,
तैंने आकर, धूमिल मन में भरा तेज का नव जल।

तू न यहाँ आता तो मोहन! जाने क्या क्या होता?
बन्धु तुम्हारा भारत-वासी जाने क्या क्या होता?

चरण चूमते जो नर प्रभु के वह ही महा प्रबल हैं;
निर्बल समझे जो नर निजको, पशु वह सदा निबल है।

अपमानित को मान सिखाया, और दिखाया जीवन;
मान-शृङ्ग पर मर कर चढ़ना, सीखा तुमसे मोहन!
भाव-सुमन ले ले करें यों वे पथ में बिछा रहे थे;
विदा-सभा में जन-जन-लोचन बरबस वहाँ बहे थे।

मूल्यवान उपहार समर्पे, किया बहुत अभिनन्दन;
रत्न-हार क्या नयन-हार जब टूटे, करते वन्दन।
पर चलने के समय हुई कुछ दुविधा सी मोहन को;
भेंट कीमती कई मिली थी कैसे रखते उनको?

'स्नेह-भेंट सुहृदों की इतनी रखनी उचित नहीं है,
मूल्य नहीं सेवा का लूँ मैं, इनका स्नेह सही है'।
'मूल्यवान उपहार लियेसे, सेवा हलकी होती,
प्रभु के भव में निज प्रभाव की दिव्य शक्ति को खोती'।

'प्रत्युपकारी दाता को भी तोष तनिक सा होता,
यही तोष, सेवा के बल को एक हद्द तक खोता'।
'है पावन उपहार स्वयं ही, प्रभु-चरणों की सेवा;
खाले नर। निष्काम भाव से जन-सेवा का मेवा'।

यही सोच, निज पत्त कृती ने शिशुओं को समझाया;
पुनः देवि को, जाकर मन का अभिमत भाव बताया।
विशद-हृदय शिशु-कुल ने हिलमिल पत्त पिता का पोषा;
चतुर पिता ने उन्हे पूर्व ही युक्ति-सूक्ति से तोषा।

कहा देवि ने-'कहो उसे तुम, जो जन तुम्हे न जाने;
ले बच्चो को चढ़ आये हो झगड़ा यहाँ मचाने'।
'स्नेह-भेंट ये सुहृदों की है इन्हे नहीं लौटाऊँ,
तुमसा निष्ठुर कठिन हृदय मैं कहो कहाँ से लाऊँ''?

'अलङ्कार-शृङ्गार हेम के, रत्न-हार मुक्ता-माला'
रहा न कोई गहना मेरा, सब कुछ तो दे डाला'।
देवि! लुटा कर लूटा इनने प्यारा विभव हमारा,
स्नेह-मूलधन लिया, ठगा फिर हृदय ब्याज में न्यारा।

"हेम-हार उपहार हमारा, क्या अधिकार तुम्हारा?
क्या छोड़ा है कहो न? हमने लुटा दिया धन सारा'।
हँस कर बोला निर्मम मोहन- 'हेम-हार भी रानी
मेरी ही सेवा का फल है, करो न तुम मनमानी'।

कहा देवि ने चिढ़ कर, "घर में श्रम करती मैं निशि दिन,
व्यर्थ नहीं हैं काम हमारे, कहो बताऊँ गिन गिन'।
"कर सकते हो मुझे विरागिन, है अधिकार तुम्हारा,
कैसे दूँ पर सुत-वधुओं को सूना भवन हमारा'?

'मैं जो देता' बोले मोहन, 'कर तुम्हारा गहना
अपनी विधुरसी बहुयें पहनें शील-हार गुण-गहना'।
'हाय विरागी' कहा देवि ने, 'इच्छा रही तुम्हारी,
यही बहुत है बुद्ध अजिर में, हुये नहीं धन-चारी'।

'यह भूषण अरु पिछली भेंटें सब कुछ लेते जाओ,
सेवा का अधिकार जन्म-भर मुझको देते जाओ।
सब धन-भूषण ले निरीह ने मुन्दो को जा सोंपा,
चलते-चलते भी निर्मम ने स्तम्भ विकट सा रोपा।

प्रेम-प्रदर्शन तक की सुविधा बिना दिये ओ निर्मम,
स्वयं करे तू तानाशाही, अडिग गाह सा हर दम।
तू तो प्रतिदिन सुमन सभी के बैठ बाग में तोड़े,
इन्हें सूंघने जैसा हक भी निठुर नहीं तू छोड़े।

हेम-हार धन-रत्न बांट यों मोहन ने सुख माना,
पर-मन-मुक्ता-माला लेकर भारत हुये रवाना।

सन उन्निसंसौ एक लगा था मोहन [illegible] आये,
नव शताब्दि के प्रथम वर्ष में मेघदूत से छाये।
अखिल देश की राष्ट्र-सभा का सालाना अधिवेशन,
कलकत्ते में शुरू हुआ था शानदार सम्मेलन।
गये सम्मिलित होने ये भी, चाव चढ़ा था भारी,
जन-सेवा में देश-प्रेम था ज्यों [illegible] फुलवारी।

देखे इनने सर फिरोज से सुभट वचन-रण-गाढ़े,
बहु वक्ता सामन्त सजीले सभा-मञ्च पर ठाढ़े।
ताल ठोंक कर भिड़े मल्ल वे एक एक से भारी,
युक्ति-तर्क था, गिरा-घोष था, देते थे किलकारी।

भव्य भवन से गगन-चुम्बि वे सर फिरोज-बल वाले,
वाचा सीतलवाड़ सरीखे नीति-शिरा उजियाले।
तिलक बाल गंगाधर सुखकर नीरधि जैसे गहरे,
जिन्हें देख रिपु-शक्ति-नीति भी हिय में हहरे शिहरे।

अमर मलय के तिलक हमारे, पावन रुचिकर प्यारे;
जिन पर वाणी मोती वारे, जो ज्ञानामृत धारे।
कर्म-योग की गीता-गंगा यह गंगाधर लाया,
तरुण-हृदय की शुष्क धरा को रस देकर सरसाया।

लो शिव-गंगा-धर ने अबकी, ढका नाश का भोला;
विधु-शेखर ने चन्द्र-तिलक मिष, सुधा-श्रोत है खोला।
क्रांति-लता का कांति-तिलक वह, अमित ज्योतियुत दमका;
तरुण, पूर्व की प्रखर पटी पर तेजारुण सा चमका।

राज-नीति, नीरधि-निभ तुमको, देख रही है भीता,
किस रहस्य-रस से पूरित है तव गौरव-गति-गीता?
घोष मिले, भूपेन्द्र मिले, वे मन्त्री राष्ट्र-सभा के,
अरु सुरेन्द्र से सुन्दर दीपक उज्ज्वल राष्ट्र-विभा के।

मिले गोखले, गंगा-जल से सरल-शील के सागर
हुए स्वयं वे आगे बढ़कर मोहन के अभिभावक।

धन्य जौहरी, दिव्य हीरा को परखा तूने पल में,
छिपता नहीं भ्रमर से सरसिज यद्यपि रहता जल में।
एक बार जो नयन निरख ले नन्दन-वन की शोभा
फिर तो निशि-दिन हो मगन वह रहे खोज में लोभा।

हृदय खोल कर मिले गोखले सत्य-तेज पहिचाना
तरुण पुत्र-सम अनुज सखा सम मोहन को सनमाना।
नहीं गर्व-अभिमान वहां था था गौरव का भागी,
खुला द्वार था सेनानी था सरल वीर वह त्यागी।

तरुण सखा का शिष्ट जनों को परिचय देते रहते
थपकी दे उत्साह बढ़ाते, चुटकी लेते रहते।
तरु रसाल से मधुर गोखले करते मीठी छाया,
स्वादु आम्र-फल खिला पिला कर, शीतल करते काया।

धन्य धन्य हे मौट छत्र तू, अमर-दीप पर छाया,
पारिजात के चारु मूल में स्नेह-वारि ढुरकाया।
कष्ट प्रवासी भारतीय का शब्दों से बतलाकर,
अफ्रीका के गिरमिटियों का व्यथा-चित्र दिखलाकर।

अधिवेशन में मोहन ने निज प्रिय प्रस्ताव सुनाया,
धन्य, गोखले, आगे होकर उसको पास कराया।
मुदित-हृदय मोहन ने देखा राष्ट्र-सभा-अधिवेशन
उन्हें लगा कुछ पोला-छिछला सम्मेलन-हृदयाङ्गन।

सेवक उपनेता या नेता सब थे नायक स्वामी,
सब थे आज्ञा देने वाले, विरल रहे अनुगामी।
जन-सेवा की पूत भावना खोज रहे थे मोहन,
चडक भडक की चमक दमक थी था कागज का उपवन।

व्यर्थ शान थी, भेद-भाव था, छूत-छात थी फैली;
ऊँच-नीच की तंग गली थी, थी जो बिल्कुल मैली।
प्रतिनिधियों के वास-भवन में रही न कहीं सफाई,
केवल मोहन कर पाते थे थोड़ी बहुत धुलाई।

आठ कनौजी नौ चूल्हे हों, गाथा यहाँ प्रकट थी,
भीतर बाहर दोनों मैले, कैसी दशा विकट थी।
व्यर्थ काम में दश जन जुटते, नदी शान की बहती,
सच्ची सेवा नयन बिछाये बाट जोहती रहती।

भड़कीला नेतृत्व मिले जब फले सुफल भी ऐसे,
मरु प्रदेश में सुजल नहीं तो खिले आम्र-फल कैसे।
कलकत्ते में देखे इनने भारत के कुछ राजा,
जो थे यहाँ बजाने आये प्रभु कर्जन का बाजा।

आये पहन पजामा जामा, सब दरबारी बन कर;
बने खानसामा से सारे, साज सजाये चुनकर।
कोई कोई सजे हुये थे ज्यों अभिरामा बामा,
सजे नर्त्तकी यौवन-धामा नृत्य-हेतु ज्यों भामा।

कितने मँहगे मिले इन्हें ये सुवरण मुक्ता-माला!
बना मान-गौरव की हाला, भरे सजन का प्याला।
नयन खोल कर नृपति! निरख निज अध:पतन की लीला,
ओ राघव के कुल-धर! तुमको किसने ऐसा कीला?

श्वान-भोग-हित पूछ हिलाकर, चरण चाटता डोले;
ओ क्षत्रिय! तू झुक झुककर यों, चाटु वचन क्यों बोले?
एक दिवस था तुझे शक्र भी स्नेह-भेंट दे जाता;
नृप-मणि! तेरी कृपा-कोर-हित विधि निज लेख मिटाता।

वचन-मान-मर्यादा-हित तू राज-भोग तज देता;
हरिश्चन्द्र तू, स्वेच्छा से था श्वपच-वेष भी लेता।

वे राघव, अमिताभ बुद्ध वे, राज तजें वन जावें,
राहुल, लक्ष्मण, भरत जिन्हें नित गुरु-जन-मग-रज भावें।
शिवि-बलि-भरत रात-दिन जिनके कवि-कोकिल गुण गावें
दशरथ-व्रत पथ-वचन न जावें, प्राण जाय तो जावें।
धन्य पार्थ, पांडव यदुगण वे, वीर धीर अरु मानी,
व्रती भीष्म से जिनके आगे हार कृष्ण ने मानी।
वे बंशीधर सुघर गोपवर यदुपति कुँअर कन्हैया,
क्या न करें वे धर्म-सेतु प्रभु गीता-ज्ञान-गवैया?
मणि-आकर सा वंश तुम्हारा, बहुत हुये हैं त्यागी
गुप्त मौर्य अरु जाने कितने मानी कृती विरागी।
जिन खेतों में उपजा करते मतियों के रखवाले,
खुदे वहीं क्यों भोग-बिबर हैं, निकले भोगी काले?
गौरव-गिरि की गुहा, जहाँ थे निशिदिन सिंह विचरते,
आज वहीं हैं भरे हींजड़े तातायेई करते।
वज्र-वक्ष पर पहनी जिनने व्रणमाला-गुण-माला
आज उन्होंने मान बेचकर, हेम-हार गल डाला।
नृपति प्रजा-हित, गौरव-हित थे निशिभर जागा करते,
ये जागें, पर भोग-विभा में सुरा-केलि-रस भरते।
आन-मान के त्राण-हेतु वे प्राण राज्य सब तजते,
भोग-तान-हित ये त्यागी भी मान शान तज सजते।
यश-विधु-विरुद-चन्द्रिका उनकी घट ढुरकाती रस में,
ब्रिटिश-नीति शतरञ्ज बिछी है ये राजा हैं उसके।
जब चाहें तब किश्त लगावें, मात करें, घर खोवें,
'हाइनेस' ये रुचि-क्रीडा में, दास्य-नीति यदि सोवें।
वे गरबीले ठसकीले नित बिना सीप के ढोले,
किया भोग ने श्वान इन्हें, ये घिघियाने से बोले।

व्यर्थ शान थी, भेद-भाव था, छूत-छात थी फैली;
ऊँच-नीच की तंग गली थी, थी जो बिल्कुल मैली।
प्रतिनिधियों के वास-भवन में रही न कहीं सफाई;
केवल मोहन कर पाते थे थोड़ी बहुत धुलाई।

आठ कनौजी नौ चूल्हे हों, गाथा यहाँ प्रकट थी;
भीतर बाहर दोनों मैले, कैसी दशा विकट थी।
व्यर्थ काम में दश जन जुटते, नदी शान की बहती,
सच्ची सेवा नयन बिछाये बाट जोहती रहती।

भड़कीला नेतृत्व मिले जब फलें सुफल भी ऐसे;
मरु-प्रदेश में सुजल नहीं तो खिले आम्र-फल कैसे।
कलकत्ते में देखे इनने भारत के कुछ राजा,
जो थे यहाँ बजाने आये प्रभु कर्जन का बाजा।

आये पहन पजामा जामा, सब दरबारी बन कर;
बने खानसामा से सारे साज सजाये चुनकर।
कोई कोई सजे हुये थे ज्यों अभिरामा वामा;
सजे नर्त्तकी यौवन-धामा नृत्य-हेतु ज्यों भामा।

कितने मँहगे मिलें इन्हें ये सुवरण मुक्ता-माला!
बना मान-गौरव की हाला, भरे सजन का प्याला।
नयन खोल कर नृपति! निरख निज अधःपतन की लीला,
ओ राघव के कुल-धर! तुमको किसने ऐसा कीला?

श्वान-भोग-हित पूंछ हिलाकर, चरण चाटता डोले;
ओ क्षत्रिय! तू झुक झुककर यों, चाटु वचन क्यों बोले?
एक दिवस था तुझे शक्र भी स्नेह-भेंट दे जाता;
नृप-मणि! तेरी कृपा-कोर-हित विधि निज लेख मिटाता।

वचन-मान-मर्यादा-हित तू राज-भोग तज देता;
हरिश्चन्द्र तू, स्वेच्छा से था श्वपच-वेष भी लेता।

वे राघव, अमिताभ बुद्ध वे, राज तजें बन जावें,
राहुल, लक्ष्मण, भरत जिन्हें नित गुरु-जन-मग-रज भावें।
शिवि-बलि-भरत रात-दिन जिनके कवि कोकिल गुण गावें,
दशरथ-व्रत पथ-वचन न जावें, प्राण जाय तो जावें।
धन्य पार्थ, पाँडव यदुगण वे, वीर वीर अरु मानी,
व्रती भीष्म से जिनके आगे हार कृष्ण ने मानी।
वे वंशीधर सुघर गोपवर यदुपति कुँअर कन्हैया,
क्या न करें वे धर्म-सेतु प्रभु गीता-ज्ञान-गवैया?
मणि-आकर सा वंश तुम्हारा, बहुत हुये हैं त्यागी,
गुप्त मौर्य अरु जाने कितने मानी कृती विरागी।
जिन खेतों मे उपजा करते सतियों के रखवाले,
खुदे वहीं क्यों भोग-विविर हैं निकलें भोगी काले?
गौरव-गिरि की गुहा, जहाँ थे निशिदिन सिंह विचरते,
आज वहीं हैं भरे हींजड़े ताताथेई करते।
वज्र-वक्ष पर पहनी जिनने व्रणमाला–गुण-माला,
आज उन्हींने मान बेचकर, हेम-हार गल डाला।
नृपति प्रजा-हित, गौरव-हित यति निशिभर जागा करते,
ये जागें, पर भोग-विभा मे सुरा-केलि-रस भरते।
आन-मान के त्राण-हेतु वे प्राण राज्य सब तजते,
भोग-तान-हित ये त्यागी भी मान-शान तज सजते।
यश-विधु-विरुद-चन्द्रिका उनकी घट ढुरकाती रस के;
ब्रिटिश-नीति शतरञ्ज बिछी है ये राजा हैं उसके।
जब चाहें तब किश्त लगावें, मात करें, घर बाँधें,
'हाइनेस' ये रुचि-क्रीड़ा में, दास्य-नीति यदि साधें।
वे गरबीले ठसकीले नित बिना शीष के डोलें,
किया भोग ने श्वान इन्हें, ये घिघियाते से बोलें।

उन्हे न तजती चल कमला लख वज्र-मान-भुज-माला,
राज्य-लक्ष्मि क्या ? दास बने ये, हुआ वदन भी काला।
धर्म-सेतु वे विजय-केतु से, मान-हेतु लहराये;
ये निज प्रभु की ध्वजा उडाते दरबारी बन आये।

गिरि-वन भटके, कहीं न अटके, टिके धर्म-पथ डटके,
प्रभु को रट के, भट के झेले, कष्ट उन्हें जनि खटके।
अब देखो ये विष-रस-मटके, लडके उन्हीं सुभट के,
नाचे, लटके कर कटि-तट के, वेष बनाये नट के।

स्वागत हे दरबारी। आओ, गाओ, वीणा बजाओ,
नयन नचाओ, रस ढुरकाओ, प्रभु को तनिक रिझाओ।
ओ क्षत्रिय। तू क्यों सहता ये आन-मान की लूटे ?
राज-हंस रे। क्यों पीता है गँदले जल की घूटे ?

ओ नाहर। तू बाहर आकर लख, तुझको क्या मिलता।
बता जलज। इस मरु-रेता मे खिलता है या जलता ?
नील गगन का तारक होकर, क्यो परे मे बिखरा ?
तेरा रवि विधु कुल-यश अब भी सुवरण लिपि मे निखरा।

तव रतनारी चितवन मे थी जो गौरव-उजियारी,
कहाँ बिसारी लज्जा सारी ? तुमसे गणिका हारी।
समझ रहे हो सस्ता जिसको, सौदा है वह मँहगा,
सब कुछ तुमने गँवा दिया है, शेष रहा है लहगा।

आत्म-तेज सभ्रम बल बेचा, मिले भोग के टुकडे;
वे भी सूखे बासी जूठे दास्य-भाव से चुपड़े।
मिली 'टायटल' चाटो इसको, करो प्रजा का शोषण,
फिरो स्वयं तुम अस्थि लिये कर, हो स्वामी का पोषण।

प्रजा अजिर दृग-मोती बिखरे तुमसे राजा भागी;
जाओ, पैरिस याद करें वे तरुणी धन-अनुरागी।

हंस-वेष मे सजे काक सम, लखकर तुमसे नागर,
वे रंसागरी मेम नागरी करें प्रेम निशिवासर।
राघव ने तो तजी जानकी, तजी लाज निज तुमने,
प्रजा-पाल नृप मिले विरागी, पुण्य किये थे हमने।
प्रजा-प्राण के प्यारे प्रहरी, राज-धर्म नित पालें।
घर घर मे हैं क्षुधा-ज्वाल के, वहुत घने उजियाले।
कहाँ चौर-भय? धर्म-मूल नृप रहे जहाँ रखवाले,
कृपक वैश्य निर्धन योगी से, खुले पड़े है ताले।
प्रजा-नयन-जल हृदय-रक्त क्यो राजन। प्रतिदिन खीचो?
ब्रिटिश-विटप, निज लता-दासता, क्यो दोनो को सींचो?
प्रजा-सरोवर का जल सारा नृप-नालो से जाकर,
ब्रिटिश-राज्य की फुलवारी को सींच रहा निशिवासर।
मध्य-मार्ग शोषण-पोषण का, स्वयं नहीं जलवाला,
'मुझमे होकर रस तो गुजरे' मुदित इसी मे नाला।
भाग्य सदा नाले का काला, व्यर्थ गुलामी करता,
शोषित शोषक दोनो ही से, रहे रात-दिन डरता।
वानर नाचे, दर्शक हरपे, रोटी खाय मदारी
हो दलाल तो अपमानित ही, उभय दिशा में ख्वारी।
सुरा-सुन्दरी-कनक-दास नृप, अत सदा दुख पाता,
त्यागी था तव चॅवर ढोलते, अव तू रहे रिझाता।
हारे राघव धोवी से क्या? अखिल विश्व को जीता;
अमर-लोक से वनी सौगुनी, राम-राज्य-गुण-गीता।
इन्हे देख करुणा-घन मोहन वोले जल-सम वाणी,
"भोग-राग-वश गिरे कहाँ तक हाय अभागा प्राणी।
मिला पात्र प्रभु-चरणामृत-हित, भरके मदिरा उसमे,
करें दासता दीन-दुखी ये, खोज रहे रस विष में।

करें गुलामी अपने मन की, पुनः विषय-साधन की,
करे चाटुता फिर कर्जन की, दृष्टि तकें जन जन की।
तजें प्रजा-रञ्जन-मधु राजा, मरु-गलियों मे डोले,
दया करो प्रभु! दीन जान, जो ये निज दृग-पट खोले।'
फिर मोहन ने देखा जाकर कालीजी का मन्दिर,
हाय! रुधिर के नाले क्यों ये बहते इसके अन्दर।
ये वधिको से घिरे मेमने खोज रहे क्यो रक्षक?
कैसा होगा पाप जहाँ है धर्म जीव का भक्षक?
पय से सीधे निर्दोषी पशु जन जन को प्रभु माने;
निज रक्षा कर सकता नर तो ये छौने क्या जाने?
हरे खेत के गेन्द सलौने तृण के चारु खिलौने,
चचलता के रस के दोने भोले पशु के छौने।
सुगत बुद्ध अमिताभ! लखो ये मौनी सखा तुम्हारे,
त्रस्त भीत कातर नयनो से तुम्हे हेर कर हारे।
इनके नयन-झरोखें मे प्रभु तुम क्यो झॉक रहे हो?
वलि-पशु-शिशु ये तुम क्यो इनमे बैठे ताक रहे हो?
भीग करुण भय-जल मे वलि के क्यो निज दृग-पट खोलो?
अन्ध बधिर के वधिक धर्म में क्या लखते प्रभु! बोलो?
लोने लोने अजा-मेमने छोने चपल सलौने,
रचो बिछौने प्रभु! ये आते चिर निद्रा मे सोने।
तुम कहते प्रभु 'शशक मेमनो! क्रीडा करो अजिर मे,'
क्यो न भेड़िये दिखते तुमको जगह घिरी तव घर मे?
ताक रहे प्रभु क्यो चुप बैठे, सुख से नाक गहे हो?
ऐसी कटु लिपि ऑक रहे हो मिट्टी फॉक रहे हो?
मूक जीव-वलि देकर नर तू क्यों न राम को पावे?
छोटे मृग-शिशु-शशक मेमने प्रभु को अतिशय भावें।

पशु निरीह की लोहित सरि मे करता नित अवगाहन,
ओ मानव तू वना हुआ क्यो दानव पति का वाहन।
निज कुल अरु शिशु-मगल हित तू कलि मल की वलि दे दे
व्यर्थ पराये शिशु को मारे माँ के दिल को छेदे।
ये वलिदानी भक्त गर्व से कहते 'काली माई।
शत वलि देकर मैंने दुर्गे। माला मञ्जु चढाई।'
हाय भक्त वर, हाय कालिका हाय तुम्हारी माला।
पूत पराये मार सैकडो धर्म तुम्हीं ने पाला।
सौम्य शकरी स्नेहमयी माँ चन्द्र मौलि उजियाली,
रक्त देख विधु वदनी गौरी हुई कराली काली।
गिरिजे। तैने गिरिपर पाली जिन छौनो की टोली,
शैशव मे जिस पशु-शिशु-कुल से हिलमिल खेली होली।
अगणित वाल-सखा वे तेरे कटें रात-दिन आली,
घोर क्लेश यह झलका मुख पर हाय। हुई तू काली।
हाय खेल की मधु-वेला मे शिशु-कुल खडा अकेला,
कहाँ उजेला? कैसा मेला? वधिक प्राण लें हेला।
खून पराया चढा रहा शठ क्यो न चढावे अपना?
धर्म नहीं यह पाप कल्पना वाम-मन्त्र का जपना।
पर-हित मे जो निज वलि देता जयी मसीहा वनता,
पर-वलि देने वाला कायर रौरव मे दिन गिनता।
कैसी वलि यह है शिशु-हत्या नर क्यो रक्त वहावे?
सिह व्याघ्र की वलि भी दे तो सिह जयी कहलावे।
स्नेह-दया जल सींच वुद्ध ने विरवा दिव्य लगाया,
क्यो न फले ऋषि-धर्म-वृक्ष वह पीकर रक्त पराया।
मन्दिर था या वध शाला थी कांपे लख कर मोहन,
प्रभो। वुद्ध के भारत मे यह कैसा शोणित तर्पन।

इकत्तीस

पुनः भ्रमण भारत का करने अनुभव विविध बढ़ाने ;
गये यहाँ से गान्धी काशी शिव दर्शन-मधु पाने।

माया के परकोटे में पर छिपे हुये हैं शंकर ,
मुक्ता हीरक रहते भीतर बाहर दिखते कंकर।
ज्ञान-भवन की आकाशी यह विश्व नाथ की काशी ;
मन्दिर तो कण कण मे विभु का शिव घट-घट के वासी।

अरे उदासी भक्त हृदय मे क्यों विरमे कैलाशी ?
क्या करता तू यहाँ प्रवासी योग-याग अभ्यासी।
सुधा-प्रकाशी, भक्त कलुष विष खुद पीता सन्यासी ,
शिव अविनाशी भक्त विकासी भोलों के विश्वासी।

लो ये मोहन आये काशी गरल-पान-अभ्यासी ,
इन्हे सुधा सुख राशी दो प्रभु! कटे हमारी फाँसी।
पिया सिन्धु मे कुल विष विधु ने धरा मौलि पर उसको ,
गंगामृत दे किया सुधाकर शोपा शशि के विष को।

गरल पान से तनिक श्यामता सोम हृदय में आई ,
गर्व किया शेखर पर चढ़कर आभा विनय घटाई।
विनई गान्धी भक्त शम्भु के विष पीते रस लेकर ;
उनके मानस मे मराल से रमे स्वय प्रभु शकर।

काशी से फिर राज कोट तक नव अनुभव मधु भरते ;
गये तीसरे दर्जे मे ये सफर रेल का करते।
जिस विधना ने भारत खातिर दास धर्म है सिरजा ,
उसी जरठ ने रचा रेल मे यहाँ तीसरा दरजा।

लकड़हारा जब गाड़ी मे लकडी लेले भरता ;
वह भी उनको चुन चुन करके ऊँचा ऊँचा के धरता।
नियम माल के डिब्बों का भी उनका वजन विहित है ,
पर भारत के रेल मुसाफिर बिल्कुल स्वत्व रहित हैं।

जगह, स्वच्छता अरु जल की भी रहती उनको दुविधा ;
यदि हो यात्रा सकुशल पूरी यही बहुत है सुविधा।
सोने का तो बुरा जिक्र भी नयन नींद से जलते,
कभी कभी क्या यात्री प्राय खड़े खड़े तक चलते।

यह पश्चिम का देश नहीं है जहाँ सभ्य जन रहते,
बस जंगली भील यहाँ हम क्या न त्रास हैं सहते?
तू गुलाम है भारत-वासी इसीलिये दुख सारे,
स्वामी है परदेशी तेरा कष्ट सहो बस प्यारे।

वन-रस चूसे सारा तेरा यह परदेशी भौंरा,
श्याम हृदय का निर्दय अलि यह है बाहर से गौरा।
तव हित नूतन नीति-दण्ड-धर आया विधि का प्रेरा,
रञ्जन करने आया है या शासन करने तेरा।

शील मान शालीन सभ्यता रहे यहाँ या जावे,
इसको केवल शोषण करना इसे तरस क्यो आवे।
खुश यह, यदि तू जीवित रह कर निज रस इसे पिलावे,
कैसे रहता क्या करता तू इसे न यह सब भावे।

यहाँ रेल की सुविधा कैसी भरे पेट जो पूरा,
बड़ी बात जो भग्न कुटी मे रहे न अन्न अधूरा।
शिष्ट बात तू उस दिन करना जिस दिन भगे गुलामी,
जिस दिन होवे काला शामी अपने घर का स्वामी।

अभी बैल है तू तेली का पेले जा नित घानी,
शील-मान क्या अपने प्रभु को करने दे मनमानी।
खुले तम्हारा जूडा जिस दिन कटे हाथ की कड़ियाँ,
टूटे तेरे अग अग मे पड़ी दासता लड़ियाँ।

तच्छ रेल-सुविधा क्या उस दिन विश्व-सभ्यता आली,
फिरे खोजती वर-माला ले तुम्हे रसिक वन-माली।

सहे न साजन-विरह-व्यथा तव सुरुचि-शीलता-गौरी,
कहे—'श्याम तुम कहाँ दुरे थे करके उर की चोरी'।

दास तथा स्वामी की विधि मे अन्तर रहता उतना,
तम प्रकाश में तथा रसातल अम्बर मे है जितना।
यो करके कुछ भ्रमण पर्यटन घर मे लौटे मोहन,
देखा कुछ निज मातृ-भूमि के निर्धन-जन का जीवन।

२

कुछ दिन घर मे राजकोट रह वसे मुम्बई आकर,
चलने लगी वकालत भी अव सुयश-सहारा पाकर।
अभी वसे ही थे पर सहसा पुत्र दूसरा इनका;
हुआ रुग्ण मणिलाल अत्यधिक-वालक भोले मन का।

ज्वर असाध्य था निशि प्रलाप युत कहा वैद्य ने लखकर—
'अव औपध से लाभ नहीं कुछ जाँचा हृदय परख कर।
दो वलकारी पेय इसे अव अडे मुर्गी आमिष के,
शायद प्रभु की करुणा-भेपज शिशु का जीवन वचा सके'।

विधे! परीक्षा लेते लेते क्या तुम नहीं थके हो?
क्या न दिया मोहन ने तुमको तो भी नहीं छके हो?
ले भिखमगे पर तू तेरी खोल भाग्य की झोली,
क्या कहता यह शिर का दानी सुनलो इसकी वोली।

"शिशु को आमिप-पेय पिलाकर व्रत को कैसे तोडू,
अपना वैष्णव-धर्म गँवाकर प्रभु! किस धन को जोडू?
क्या मेरा अधिकार उचित है पर वालक के तन-पर?
कर न सका अधिकार अधम मै जव अपने ही मन पर।

लेकिन जिस विधि इसी दशा मे मैं निज तन को रखता,
प्रभु-रथ-पथ मे डाल देह को ज्यों निज भाग्य परखता।
त्यों प्राणाधिक वाल-वृन्त यह लेकर सभय हृदय से;
तेरे पथ पर लगा रहा हूँ प्रभुवर। नम्र विनय से।

तुम्हीं मेघ हो तुम्हीं जलधि हो लो निज वॉह पसारो,
कृपा-छत्र की घन छाया से प्रभु विपदातप टारो।
वॉह गहे की लाज तुम्हें नित हे सहस्र भुज-धारी।
दीन हीन साधन विहीन हूँ पाहि माम वनवारी।

कभी न दूंगा पर अखाद्य का वेसुध शिशु को भोजन,
हे विधि। इसके वदले लेलो तुम मेरा ही जीवन"।
डरते डरते पिता पुत्र की करने लगे चिकित्सा,
निशि-दिन वैठे प्रभु-करुणा की करते रहे प्रतीक्षा।

प्रभो! परीक्षा क्या लेते हो देते स्वय परीक्षा.
प्रणत-पाल। क्या फिर भी तुमको मिली नहीं है शिक्षा?
तीन दिवस मोहन को युग-सम राह देखते वीते,
टला न तिल भर ज्वर-दानव पर हुये न मन के चीते।

धड़ धड हृदय पिता का वेसुध भय से धडक रहा था,
तडित-वेग सा महाशोक फिर उर मे कडक रहा था।
'कहें कहें सव निठुर पिता ने अपने अन्धे हठ पर,
शिशु की वलि देदी है' मोहन कांपे ऐसा कह कर।

कॉप रहे ये थर थर भय से देखो तनिक मुरारी।
अभी न कॉपी है पर निष्ठा इनकी हे गिरिधारी।
मिला वज्र-विश्वास इन्हे क्यो प्रभु तेरे चरणो का,
मृदु प्रकाश यह चमक रहा है तेरी ही किरणों का।
कैसा अचरज कॅपे अङ्ग सव निष्ठा उल्टे खिलती।
कॉप रहा है दीप वायु से लौ न तनिक भी हिलती।

बैठा तेरे पथ पर ही पर लखो तपस्वी निश्चल।
शिशु को गीला वस्त्र उढा कर डाल रहा है कम्बल।

चला भवन से बाहर अब वह निशि मे तुम्हे सुमरते,
घूम रहा है पागल सा अरु कॉप रहा है डरते।
"प्रभु कृपालु तव पाद-पद्म मे शिशु की देह चढाकर,
आया हूँ मै भीख मॉगने कम्बल उसे उढाकर।

सघन घटा है घिरी दयामय। मेरे हृदय-गगन मे,
पर श्रद्धा चपला सी तोभी चमके मेरे मन मे।
कहता अब धीरज भी डोल तुम्हे छोड़ क्या अविचल?
करो कृपा अब करुणा-सागर हे शरणागत-वत्सल।"

प्रभु-पद गहके यें कहते थे या वहते थे मोहन,
दीन-बन्धु तुम क्या कहते हो बोलो भव-रुज-मोचन?
यें लेने के देने पड़ते मिले छात्र जब अडियल;
तभी परीक्षा-बान छुटेगी अरे पुरातन दढ़ियल।

ठनी परीक्षा यहॉ तुम्हारी देखें कितना बल है,
तुमको सौंपे प्राण भक्त ने यह तो हुआ सफल है।
हृदय-यन्त्र को बल से थामे मोहन घर पर आये,
पर आते ही पड़े कान मे सुत के बोल सुहाये!
"मुझे निकालो बाहर बापू। अमित पसीना निकले",
पर बापू तो घन-रव सुन कर शिखि से नाचे उछले।
बहुत दिवस जूझा ज्वर दानव भाग गया फिर डर कर,
नर-नारायण जहॉ साथ हों करे असुर क्या आखिर?

अभी स्वस्थ मणिलाल हुआ था मोहन ने था सुख माना;
अफ्रीका से तार मिला पर पड़ा इन्हे सहसा जाना।
कितने ही हों कष्ट तुम्हे तो जाना होगा गान्धी।
विश्व-प्रेम के दिव्य हेम की कंठी तुमने बान्धी।

शिशु-कुल से अरु प्रिया-प्रेम से होगा पुन बिछुडना;
प्रचुर मधुरता दृढ ईख का प्रतिदिन पडे निचुड़ना।
अभी हँसा था अजिर तुम्हारा भारत-सुख-वैभव से,
प्रिया प्रेम के प्रचुर पुण्य से शिशु-कुल के मधु-रव से।

नागर तुमसा कहा अन्य जो ढोले निज रस-गागर,
कौन उजागर-मधु-सागर से भरे पराया आगर?
रहे सहेगी कहे देवि क्या? नित दृग-जल बरसाते,
बुद्ध-वश मे व्याही आई जुडे साधु से नाते।

एक वर्ष की अवधि बताते क्यो तुम नोप दिलाते?
छोडो अब तो झूठी बाते क्या तुम इन्हे भुलाते?
व्यर्थ सत्य की महिमा गाते चला रहे हो घाते,
देवी को समझाते हो या अपनी पोल दिखाते?

तुम्हे जानती है कस्तूरी क्यो तुम व्यर्थ जनाते?
काटेगीं ये रोकर राते स्हे विरह की राते।
तुम तो निर्मम। जाओ गाते तोड प्रेम के नाते,
निशि-दिन इन्हे सताते क्यो हे पर-पीडा-मद-माते।

जाओगे तुम रुको न जाते जाने क्या सुख पाते?
सब जन हँसते रोते गाते अपना राग बजाते।
तुम क्यो सदा पराये घर मे वीणा बैठ बजाते?
रस-राते अलि। गुन गुन गाते पर-उपवन मे जाते।

पहले गये अकेले अब क्यो तरुण और ले जाते?
क्यो तुम इनको अपने जैसा उल्टा पाठ पढाते?
कावा गान्धी कुलवालो को द्रव्यार्जन सिखलाते,
तुम घर-खोनी राह दिखाते जीवन कठिन बिताते।

मगनलाल तुम क्यों पागल के चक्कर मे हो पड़ते?
साधु बनाकर छोड़ेगा यह किसका हाथ पकड़ते?

दया नहीं आती है इसको अपने पथ पर अड़ते,
खड़ा हँसेगा, यह निज पथ पर तुमको देख उजड़ते।
इस निष्ठुर को व्यथा नही है घर से स्वय बिछुड़ते;
सदा झगड़ते अपने घर को देखे रोज बिगड़ते।

अपने घर मे बैठ दीप से रची दिवाली लाओ,
राज-मार्ग में राही डोले तुम क्यों ज्योति गँवाओ?
यदि झोंके से बुझ जाओगे लोग हँसेंगे लखकर,
अपनी छोटी कुटी भली है सोओ पटरस चख कर।

यह तो अपनी—गान्धी-कुल की बलि देने को कहता,
पता नही क्यों निशि-दिन इतनी घनी पीड़ को सहता?
खुद सहता, घर वाले दहते, अविरल आँसू बहते,
सुना नही पर हमने इसको धीमे भी 'उफ' कहते।

कुलिश-सार सा उर है इसका कौन कहे यह कोमल?
वज्र-चोट जो झेले सम्मुख हिले न फिर भी अविचल।
जाओ उनके गान्धी भाई जाओ पथ दिखलाओ,
दिव्य महात्मा यश-रस नूतन अफ्रीका से लाओ।

अति अगम्य गति रहे नियति की मति भी उसकी चचल,
एक सत्य विभु निश्चित जग मे शेष सभी कुछ दल-दल।

या निश्चित है सत्य-पथिक वर
मोहन का प्रण भारी,
ध्रुव यह पथ पर बढ़ा जा रहा
देखो सत्याचारी,
दृष्टि गडी है दिव्य केन्द्र पर
जाता है एकाकी,
वज्र-केतु सुर-गिरि पर, फहरे
रहे न पथ मे बाकी।

३

यति-विहीन है गति मोहन की चकित लेखनी दीना,
तजे लिखे क्या निज कलि-मसि से जड यह सुध-बुध हीना।
सुना दौडना चलना उड़ना, यह गति सब का मिश्रण,
है प्रवाह-मिष प्रकटा भूपर नया दिव्य आकर्षण।
नवयुग का यह अरुणोदय या भाग्योदय है भव का,
इस इकतारे से है झरता झरना गौरव-रव का।
भव-सागर मे जिस केवट ने भेजा है यह बजरा,
उस केशव की करुणा-सूची गूथे मेरा गजरा।
इस गान्धी के चरित-सिन्धु मे जाने किसका प्रेरा,
चला तैर कर पार उतरने देखो साहस मेरा।

कविता-प्रतिभा नाव नही है नही कला-रस की पतवार;
पार उतारे जिसने पाहन उसी नाथ का है आधार।
इधर चन्द्र से अफ्रीका के नभ में मोहन छाये,
चेम्बरलेन उधर लन्दन से इन्द्र-दर्प से आये।
वे लन्दन से यहाँ वहुतसा सुवर्ण लेने आये,
गान्धी ने भी निज स्वागत मे नयनो के धन पाये।
अमित हेम-उपहार राज्य से उन्हे यहाँ था लेना,
अरु वदले मे उपनिवेश को धन्यवाद था देना।
भारतीय के स्वत्व-हितो की करुणा-दैन्य-कहानी,
कैसे सुनता श्वेत सचिव यह अर्थ-मन्त्र का ज्ञानी?
व्यर्थ हुआ मोहन का मिलना मरु मे जल क्यो निकले?
चेम्बरलेन हँसा फिर वोला वचन ऊपरी उजले,
"उपनिवेश की शासन-सत्ता है स्वतन्त्र सी होती,
वहाँ ब्रिटिश सरकार स्वत्व निज लगभग सारा खोती।
पक्ष तुम्हारा न्यायोचित पर तुम्हे यहीं है रहना,
अधिकारी का स्वत्व-भार कुछ पड़े सभी को सहना।"
चलो यहाँ से लो क्या मोहन स्वार्थ-भरा है नर का न्याय,
तुम वकील जिस न्यायालय के करना कहकर वहीं उपाय।
फिर डरवन से चलकर गान्धी ट्रांसवाल मे आये,
देख वहाँ की क्रूर दशा को डेरे वहीं लगाये।
भारत के कुछ सैनिक अफसर युद्ध-काल मे आये,
वे सव थे अव ट्रांसवाल मे राहु-केतु से छाये।

नया विभाग खुला था उनका भारतवालो खातिर;
किसी बहाने से था उनको काम लगाना आखिर।
युद्ध-काल मे ट्रासवाल से जिनकी हुई निकासी;
चाह रहे थे वापिस आना वे सब भारतवासी।
पर जिसको इस नव विभाग का अनुमोदन मिल जाता,
ट्रासवाल मे हिन्दुस्तानी वह ही आने पाता।
फलत फैली इस विभाग मे रिश्वत-खोरी भारी,
धनी दीन सब लूटे जाते अपनी अपनी बारी।
भारत से ये स्वेच्छाचारी अधिकारी थे आये;
इन गोरो ने रोग और भी नये नये फैलाये।
मानो क्षय का राज-रोग है, पराधीन जीवन अभिशाप;
पाप सभी जल-वायु उसे है दास सदा भोगे संताप।
इस विभाग मे रिश्वत का नित बढता देख दुराग्रह;
दोषी जन के बहु प्रमाण का करते मोहन सग्रह।
लख गान्धी की कार्य-पद्धती इनमे कुछ भय जागा,
एक अधिक अपराधी डर से आँख बचा कर भागा।
चला मुकदमा अभियुक्तो पर फैली कुछ कुछ हलचल,
इनके अगणित अपराधों के थे प्रमाण भी पुष्कल।
पर गोरे क्यों दण्डित होते न्यायालय था घर का,
शासक शोषण भेद नहीं कुछ खून चूसते पर का।
न्याय-तुला भी शासक-शिशु-हित माते का रचा खिलौना,
शासित खातिर शूल-बिछौना वैसे बहुत सलौना।

न्याय-व्यूह में पराधीन जन निरपराध ही फँसता
शब्द-जाल का स्वामी, व्याधा क्यों न रहे वह हँसता?
शब्द-भेद का मॅढा गेन्द यह गिरा-शिल्प की क्रीडा,
इस लचकीले न्याय-खड्ग से बढ़ी दीन की पीडा।
जो घन धूल महल की धोवे वोही तोडे दीन-कुटीर
जो अमीर को नीति पोषती बढ़े दीन की उससे पीर।
न्यायालय ने पक्षपात तो अपना स्पष्ट दिखाया,
पर मोहन के प्रसरे यश ने थोडा काम बनाया।
अधिक दोष-भाजन गोरों ने अपने पद को खोया,
इस विभाग ने यो कुछ अपना रिश्वत का मल धोया।
क्यों न पद-च्युत होते इनने दीनों को था लूटा,
तोभी करुणा-घन मोहन का स्नेह न इनसे टूटा।
मोहन ही ने करी सिफारिश कैसे मीठे भाव जगे?
म्युनिसिपैलिटी मे वे गोरे पदविहीन फिर काम लगे।
कुमुद-कान्त यह कीर्ति-कौमुदी यो था इधर खिलाता,
तथा स्व-शोधन के उबटन से निज मन धोता जाता।
हृदय सोम सा श्याम नहीं इस श्यामल तन को भाता,
अन्तर मे तो कलुष-लेश का स्पर्श न इसे सुहाता।
प्रभु-पद-युग में निश्चल निष्ठा निशि-दिन बढा रहा था,
नित्य नवल उपहार कीमती प्रभु के चढा रहा था।
तन-मन-धन के राग-विभव वे मोह-काम के मौक्तिक-हार,
लुटा लुटा यह पथिक मार्ग में करता था प्रभु की मनुहार।

अपरिग्रह अरु साम्य-भावना शब्द सरल से वैसे
पर तन-मन को छेदें, ये हैं शूल-नोक के जैसे।
जो जन इस हरि-गीता-पथ पर अपना हृदय लगावे,
तन ढांचे मे अस्थि बचें बस सारा मॉस सुखावे।
समदर्शी वह विभव-भोग से मन-हय-रुचि-लरि तोड़े
तजे हेम-मुद्रा की थैली अरु वराटिका जोड़े।
तन-मन-धन तीनो को साधक जो कोल्हू मे पेले,
त्याग-तेल का खेल विरल ही अन्त काल तक खेले।
जो मसीह सा प्राण-घातिनी पीड़ा हँसता झेले,
वही मुकुट कॉटो का ओढे तन पर ओटे ढेले।
ऐसे जन को तन-सपद भी होती पावन थाती
ऋद्धि-सिद्धि अरु वुद्धि त्राण का उस पर वोझ वढाती।
पालन, पोपण फिर सुपात्र वर चिन्ता-मात्र वढावे,
पुण्य-पुरुप की सपद कन्या, आखिर पर-घर जावे।
समदर्शी मोहन के मन मे फैल रहे थे येही भाव,
स्राव हुवा था उरमें सात्विक, था प्रिय प्रभु का प्रेम-प्रभाव।
वहुत सहस्रों की निज वीमा करा चुके थे मोहन,
कई 'प्रीमियम' भेज चुके थे पर अव पल्टा जीवन।
सोचा—"प्रभु का श्रद्धालू जन धन क्यो कहीं जुटावे?
कर्म करे वस फल-चिन्तन से क्यो निज भार वढावे?
दीन-वन्धु जो दलित दीन को देता दया-सहारा,
पत्नी को शिशु कुल को भव से देगा वही किनारा।"

बन्द किया इन विश्वासी ने फिर निज जीवन-बीमा;
खिले त्याग-ताम्बूल मिले जब दिव्य देश का कीमा।
जितने धन का सग्रह अरु ये अब तक थे कर पाये;
अग्रज-पद में वे कुल तन्दुल इनने सभय चढाये।
लिखा पूज्य अग्रज को सविनय—"क्षमा मुझे मिल जावे,
सरल अकिञ्चन निर्धन-जीवन मेरे मन को भावे।
निशिदिन वैभव अर्जन करके हरिजन क्यों धन जोडे।
क्षमा करे, इस ढीठ अनुज से आश द्रव्य की छोडें।"
पर अग्रज को रच न भाया निर्धनता का यह प्रस्ताव,
चाव उन्हें था अनुज कमावे कभी न होवे अर्थाभाव।
जनक-भाव से ज्येष्ठ-वन्धु का करते मोहन आदर,
आज खिन्न थे अग्रज इनसे जो थे स्नेह-सुधाधर।
लगा घाव पर सहा वीर ने धन धन पुण्य वटोही,
निर्मोही हो सहे सभी कुछ प्रेम अश्व आरोही।
एक दिवस ओ अनुज अलौकिक। अग्रज यही तुम्हारे;
सत्य ज्योति लख तेरी जागें अपनी भूल सुधारें।
ऋद्धि सिद्धिया नाचे तेरी निर्धनता के आगे,
लख नगी कृश काया यति तव मायापति अनुरागें।
विविध भांति यो आत्म-शुद्धि मे लगे हुये थे मोहन;
असन-वसन अरु रहन-सहन सब था वन-वासी जीवन।
तरुण अहिंसक सत्य-पुजारी ये थे शाकाहारी;
मिताचार की शिक्षा देते सबको ये व्रतधारी।

इन्हीं दिनों आ एक भद्र सी महिला बोली इनसे,
'गान्धी मेरे पुण्य-कार्य में मदद करो कुछ धन से।
भोजन-भवन भव्य सा खोलूँ बने वहाँ बहु शाकाहार;
शुभ प्रचार के साथ चले यों मेरा यह पावन व्यापार।'
द्रव्य हीन थे खुद मोहन पर एक सुहृद से लेकर,
इस महिला को पौंड सहस झट मुदित हुये थे देकर।
हुई भूल निज अवगत इनको पर थोड़े से दिन मे,
उस नारी ने इन्हें चुकाई पाई एक न धन में।
इधर मित्र से ऋण कह करके इनने द्रव्य लिया था;
उस सीधे ने इन्हे देखकर अपना कोप दिया था;
गान्धी का प्रिय भक्त सखा था सरल हृदय वह बदरी,
था गिरमिटिया श्रमिक धन्य वह बसा प्रेम की नगरी।
धन क्या उसने तन भी वारा उसे प्रेम था प्यारा,
गान्धी-उर-पुर-वासी का तो रस्ता ही है न्यारा।
किसी भाति पचकर मोहन ने सारा कर्ज़ चुकाया;
बदरी के घर धन भी आया तथा स्नेह भी पाया।
मँहगा बहुत पड़ा मोहन को सौदा शाक-भवन का,
कठिनाई से चरु मिलता है प्रभु के प्रेम-हवन का।
पैसा पैसा जोड़ बचाया तन-मन नित्य तपाया,
जाने कितना कष्ट उठाया तब वह ऋण चुक पाया।
तन-मन-धन की पुण्याहुतियाँ डाले जा प्रतिदिन यतिराज;
लाज आयगी हृदयानल को कभी देख तव कृशतनु-साज।

पार्थ-कृष्ण ने दण्डक-वन में अग्निदेव को पिछली बार;
हार मना कर छका दिया था मेट भूख का भार अपार।
तुमसे भी सत्यानल छककर एक दिवस मानेगा हार,
धार लिया हठ तुमने मोहन। तुम न करो चाहे स्वीकार।
धर्म जाति अरु वर्ण-भेद को अधिक न इनने माना;
व्यक्ति-मात्र को शुद्ध हृदय से अपने जैसा जाना।
सब सुहृदों के आगे मोहन अपना हृदय बिछाते;
इनके घर मे अतिथि बहुत से सब धर्मों के आते।
अरब पारसी दलित मुसलमां हिन्दू और इसाई;
गान्धी-गृह मे आकर रहते यथा सहोदर भाई।
साथी नौकर-चाकर मुशी सब समता से रहते;
सब सज्जन परिजन से रहकर गान्धी-गुण-मणि गहते।
यथा शक्ति परिचर्या-सेवा मोहन सबकी करते;
स्वयं अतिथि के मल-बासन सब निज कर धोते धरते।
पतिव्रता कस्तूरीदेवी अथवा बासन धोती;
कौन भार जो आर्य-वधू निज पति-पद-हित जनि ढोती।
एक बार आ बसा भवन मे मुंशी एक इसाई;
नया रहा था दफ्तर मे वह अरु था पञ्चम भाई।
उसके कमरे के वर्त्तन को धरे उठावे धोवे कौन?
झिझक रही थी देवि वैष्णवी देख रहे थे मोहन मौन।
स्वय उठाते लख गान्धी को जब देवी ने देखा;
कैसे पति को छूने देती खिंची भाल पर रेखा।

चली उठाकर बर्त्तन विमना, नयनो मे ये मोती,
बोले निर्मम मोहन, लखकर पतिप्राणा को रोती।
"मेरे घर में सुन कस्तूरी यह सब नहीं चलेगा,
इष्ट कार्य में रुदन व्यर्थ का कैसे यहाँ भिलेगा ?"
'रक्खो निज घर' रोष-मान से फुफकी नथुने फूले,
नयन-गगन में सहसा अविरल सावन भादों झूले।
पति-करके कटु शराघात को क्यो महीयसी सहती ?
गगा-जमुना दृग-मानस से क्यों न फूटकर वहती ?
प्रतिपक्षी था पति, क्या कहती रोकर झडी लगाई,
उमड वेदना अति दृग-मग से बरबस बाहर आई।
लो निष्ठुर ने कर भी पकड़ा बोला—'बाहर जाओ,
घर के बाहर जाकर झॉको देखो क्या सुख पाओ'।
गई कहाँ पर लाज तुम्हारी दिखा रहे हो किसको द्वार ?
प्राणाधार तुम्हीं तो इनके भूले कहाँ अहिसा-प्यार ?
यह कैसा आदर्श सभी से जो निज नाता तोडे,
या पौरुष की बर्बरता यह नहीं किसी को छोडे।
रहे रात-दिन चित्र नाथ का जिन नयनो के आगे,
उन सीता को राघव त्यागें क्यों न भावना भागे।
भले भूल कर गौरव मिप तव पौरुष लाज गॅवावे,
दीप-शिखासी आर्य-वधू पर जलकर ज्योति जगावे।
घर की रानी रहें सहें ये कभी न बाहर जावे,
यहाँ अहिसक हारे तू ही झूठा रोब जमावे।

कितनी चिता सजाई इनने तन मे आग लगाई !
सदियों से ये आर्य-देवियाँ निज बलि देतीं आई।
सहनशीलता और अहिंसा की ये पावन प्रतिमा;
सूर्य-किरण सी तपे जगे नित इनकी गौरव गरिमा।
प्रथम सती फिर शिव की गौरी सत की जलती ज्वाला;
चिन्ता तथा चिता मे हिलमिल रहतीं पति-गल-माला।
धन नारी के प्यार-सार को कौन उठावे इतना भार।
अश्रु-धार से आङ्गण भीगा ढका देवि ने गृह का द्वार।
कहो पुरुष क्यों पछताते अब मान गये क्यों मोहन हार ?
पार न पाओ मातृ-जाति से इनका अम्बुधि हृदय अपार।

४

भारतीय क्या इनने जाने जीते कितने जन-मन,
परम सखा थे गान्धीजी के बहु युरोपियन सज्जन।
परिजन मित्र कुटुम्बी से वे इनके घर मे रहते,
भारतीय जीवन-चर्या की शैली वे भी गहते।
किञ्चिन कैलिनवैक रीस से सुहृद धीर उपकारी;
शाकाहारी गुण-पय धारी सेवा जिनको प्यारी।
पूर्व पुण्य से मोहन जैसा मित्र मिला था उनको,
बडभागी ही पाते जग मे साधु-संग से धन को।
शुभ्र कुमारी डिक सी सरला योग्य लेखिका बाई;
गान्धी के दफ्तर मे जिसने जगह भाग्य से पाई।

कार्य प्रवीणा थी यह चतुरा निज विश्वास बढ़ाया;
अनुजा कन्या सम मोहन के मन में आसन पाया।
लेन देन लाखों के धन का इस युवती पर छोड़ा;
कभी न निष्ठा-प्रीति-पंथ में गान्धी ने मुंह मोड़ा।
इस अनुजा का मोहन ही ने आखिर ब्याह रचाया;
विधि सह निधि यह सौंपी वर को पात्र मिला मनभाया।
नेह-राह विश्वास बाँटते कभी न ये कहलाये पोन्च;
कोई इनको ठगे प्रीति में नहीं ठगाने में सकोच।
पुनः कुमारी श्लेसिन ने आ आफिस-भार सँभाला;
सरल ढीठ अतिशय निर्भय थी मानवती यह बाला।
लख मोहन के महात्याग को जागा इसका चेतन;
इस युवती ने लिया सदाही नाम मात्र का वेतन।
थी यह भोली अति श्रम-शीला और साहसिक भारी;
कार्य-भार कितना भी आया कभी न थककर हारी।
सत्याग्रह में जब सब नेता थे कारागृह-वासी,
चमकी पथ पर तब यह गौरी सचमुच ज्योति-लतासी।
सहस्रों भारत वालों को यह निश्चित राह दिखाती;
आफिस अरु धन-भार अमित था उसको अलग चलाती।
त्याग, तपस्या आत्म-शुद्धि की थी यह देवि त्रिवेणी;
स्फटिक सरीखी अन्तर बाहर मानो हिम की श्रेणी।
स्नेही मित्र ने भी मोहन का आकर काम बँटाया;
काम हुआ दफ्तर का सीधा जब यह सज्जन आया।

इन्हीं दिनों में मदन जीत अरु आये मनसुख नागर;
मानो गागर ले सब आते देख सुरस का सागर।
सोचा इनने भारतीय हम पत्र निकालें अपना एक;
नेक बात थी मोहन ने भी स्वीकृति दी अपनी सविवेक।
'भारतीय सम्मति' नामक यों पत्र मनोहर निकला;
था वह गान्धी के गौरव का सुधा-सरोवर उजला।
रहा इन्हीं पर एक तरह से पत्र-भार यह सारा;
बही किन्तु नित इन नर-गिरि से श्रम की अविरल धारा।
घाटा भी था बहुत पत्र में द्रव्य कहां से आवे?
प्रतिदिन अपनी सपति को भी आखिर कौन लुटावे?
पर गान्धी से पागल भी हैं जो न अर्थ निज देखें;
जो नर केवल सत्य सुयश अरु पर सेवा को लेखें।
रुपये सहस्रों मासिक क्रम से कमा कमा कर देते;
तथा लेख भी लिखते यों ये नाव पत्र की खेते।
करें कार्य आरम्भ डरें क्यों सुधी विघ्न जब कोई;
ऐसों ही ने अमर रंग में चादर सदा भिगोई।
मिले सफलता या न मिले पर आगे बढ़ते जाना;
विघ्न-यूथ से टक्कर लेते गिरि पर चढ़ते जाना।
अन्त समय तक संभावित जन तजें न अपना शुभ प्रस्ताव;
घाव लगें बहु तनमें मनमें तदपि न रुके भाव की नाव।
भारत में ज्यों दलित मुहल्ले बसे हुये हैं न्यारे,
पीड़ित मानवता के आँसू वहाँ पुकारें हारे।

निर्दय-लिपि में लिखी आर्य ने जय-मिष क्रूर कहानी,
हा अछूत पर होती आती सदियों से मन-मानी।
ओ सवर्ण के सभ्य! देख जो तैंने बीज उगाया,
अफ्रीका में उस विष-तरु के शूल सहित फल आया।
प्रकृति काल ये जन्म जन्म का ऋण व्याज समेत चुकाते,
भारत वाले आर्य, दास हैं निज कृति का फल पाते।
भाव गिरा गो-कर्म धर्म सब नर तू करता जितने,
विश्व-धरा के व्याप्त खेत में उगें बीज वे उतने।
ओ विराट के तुच्छ अङ्ग तू सोचे कहे करे जो,
कहाँ धरा तज और ठौर है तू निज कर्म धरे जो?
भला बुरा जो मनुज करे तू हस्त वचन या मनसे,
जाय कहाँ वह गिरे यहीं तो अत. शुभ्र कर तन से।
असन वसन धन धान्य भाव रस करके शोषण पोषण,
क्रमशः उगता विश्व-अजिर में शेष कर्म का कण-कण।
एक दिवस संस्कार बचेंगे तन का भी हो भावाभाव,
तू बचाव निज चाहे तो, दे शुभ कर्मों का सौम्य प्रभाव।
अफ्रीका के कुली-मुहल्ले भारत-वासी जिनमें—
रहते अरु अपमान-यन्त्रणा सहते थे तन-मन में।
दलित पतित ये शामी काले घृणित कुली कहलाते,
सखि निसर्ग के न्याय-दण्ड-तल झुक कर देह चलाते।
म्युनिसिपैलिटी ध्यान न देती रहती कहाँ सफाई,
गली गली में घर घर में थी मैल गन्दगी छाई।

श्वेत मुहल्लों में थी जितनी अधिक स्वच्छता रहती;
दास-वास-बाड़ों में उतनी अमित गन्दगी बहती।
इन्हीं दिनों खानों में फैली प्लेग भयङ्कर पूरी;
भारतीय कुछ कनक-खान में करते थे मजदूरी।
कृष्ण प्लेग-कीटाणु भीषण इन दीनों के चिपटे;
निबल जान कर क्रूर दैत्य ये देह-लता के लिपटे।
पर दीनों ने इस अवसर पर मदन जीत को पाया,
इन्हीं सदय ने झट मोहन को समाचार कहलाया।
सुनकर गान्धी सखा चिकित्सक विलियम को ले दौड़े;
सुभट समर में यम से जूझे किन्तु न मुख निज मोड़े।
सवेदन रस भरकर मोहन प्रेम-मेघ से छावे;
मानो कलि में मारुति फिर से सञ्जीवन गिरि लाये।
चार शिष्य मोहन के मुंशी दफ्तर में करते थे काम;
ग्राम-धाम निज तज आये थे थे सुशील त्यागी अभिराम।
वे माणिक गुणवन्त मनस्वी तरुण तपस्वी वे कल्याण;
'प्राण हमारे साथ तुम्हारे' बोले—'हम भी करें प्रयाण'।
शिष्य भावते थे मोहन के रुके न वे सब साथ रहे;
कैसे रुकते गान्धी-सर से भाव कज थे बहुत गहे।
एक बार यदि नर सुख विसरे, प्रभु-पथ पर चल निकले;
दृग, प्रकाश, पथ, असन-वसन मृदु, मिलते सहचर उजले।
जगे रात दिन अविकल मोहन—मद वे साथी उनके;
करते थे सब कठिन परिश्रम, ध्यान तजे निज तनके।

दवा पिलाना, पथ्य खिलाना करना अमित सफाई,
इन वीरों ने त्याग-मार्ग में रातें जाग विताईं।
मदनजीत अरु इन युवकों में निर्भय जोश भरा था,
शौर्यानल में त्याग हेम सा, यौवन-मिष निखरा था।
स्वर्णकार पाया मोहन सा उसने कनक तपाया,
प्रेम-नृपति की नज़र-भेंट हित द्युतिमय वलय वनाया।
वचे तीन रोगी थे, यद्यपि, तेइस में से केवल,
वढ न सकी पर प्लेग-दानवी, लडे वीर ये अविकल।
इन तीनों में दो थे ऐसे—जिनने मोहन का आचार;
स्वेच्छा से स्वीकार किया था प्रकृति चिकित्सा का उपचार।
तज कर दवा वैद्य की इनने, मोहन को अपनाया,
आर्द्र मृत्तिका के प्रयोग से सञ्जीवन फल पाया।
श्रद्धामृत अरु प्रेम-पथ्य से क्या न विश्व में सम्भव?
भव में द्रव-मधु इनसा उत्तम, और न औषध-वैभव।
एक 'नर्स' सरकारी भी थी आई भली विचारी,
किन्तु प्लेग की चोटों से वह दीना स्वर्ग सिधारी।
मोहन अरु वे संगी प्यारे रहे फूल से सारे,
जग हारे, प्रभु जिसे उवारे, उसे न कोई मारे।
फिर गान्धी ने प्लेग-विषय में, पत्र एक छपवाया,
नगरसभा के त्रुटि-दोषों का, उसमें चित्र दिखाया।
प्लेग-कार्य अरु तथ्य-प्रकाशन दोनों मिलकर वोले,
तव निज नयन सभा-सभ्यों ने तनिक चौंक कर खोले।

नगर-सभा ने अब कुछ अपना धन का त्याग दिखाया;
भारत वालों को मोहन ने विविध भाति समझाया।
मैला-कुचला कुली-मुहल्ला आखिर गया जलाया;
भारत वालों ने खेमो मे रह कुछ समय बिताया।
श्रमिक-वर्ग कुछ द्रव्य बचाकर, सदा छिपाकर रखते पास;
तम्बू में वे धरें कहाँ पर, और करे किसका विश्वास?
मोहन मे थी सबकी श्रद्धा, मानो मिली तिजौरी;
जो निष्ठा थी तनिक अधूरी, हुई प्लेग-मिष पूरी।
लक्ष-लक्ष मुद्रा मोहन ने धरे बैंक में जाकर;
अरे चोर। तू ले मत जाना, इनका कोष-गुणाकर।
वणिक ठगोरे। तैंने सबको खिली धूप में लूटा;
फिर भी मोहन तुझ मे मोह न अब तक उनका टूटा।
कैसी बातें, कैसी घातें, तुझे चलानी आती;
तुझे देखकर बुद्धि जनो की चली कहाँ पर जाती?
तन-मन देकर, तुम्हें कोष भी सौंपा इनने अपना;
सच्चा कर दिखलाया तुमने, वह सोने का सपना।
जो थी कवि की कविता केवल, उसको व्यक्त दिखाया;
जीवन-पट पर कृति-तूली से, जीवित चित्र रचाया।
इतनें 'शेयर' बेच बेचकर क्या व्यापार करेगा?
अमित प्रेम की पूंजी इतनी, लेकर कहाँ धरेगा?
भली कम्पनी खोली तुमने, धन्य वैश्य व्यापार-प्रवीन;
तरुण बावले भाग खरीदे, लखें लाभ के दृश्य नवीन।

पोलक वेस्ट सरीखे सज्जन, महिमा सुन खिच आये,
रग-भेद तज गान्धी-कुल मे, आकर शीघ्र समाये।
धनी दीन अरु श्रमिक-वर्ग सब, गान्धी-गुण-गण गाते,
नेह बढाते, नित रस पाते, हृदय-सुमन विकसाते।
अब्दुल्ला से सेठ आदि बहु, सुहृद हुये थे मोहित,
पैठा हृद-मन्दिर के भीतर, गान्धी प्रेम-पुरोहित।
अब भारत का विधु यह निर्मल, रहा न गान्धी केवल,
नेह-कमल का उज्ज्वल परिमल, फैला पल-पल चंचल।
मिला स्नेह-सम्बोधन इनको, कहते थे सब भाई,
किसने खाई और खिलाई ऐसी मधुर मिठाई।
ओ भाई! लख भ्रातृ-भावना तुझे देख मुसकाई,
आई, हृदय-कटोरा लाई, तैने प्यास बुझाई।
बढता था यों अफ्रीका मे दिन दिन भाई-चारा,
फैल रही थी मोहन के मिप, नवल नेह की धारा।
मोहन अरु वे साथी उनके करते थे नित आत्म-सुधार,
सत्य-सार है निज सुधार ही निहित इसी मे पर-उपकार।
रसकिन की सर्वोदय नामक अमर मनोहर पुस्तक,
एक दिवस गान्धी को पढ़ने, दे आये थे पोलक।
पुस्तक क्या है, कुञ्जी है वह नव जीवन की मानो,
उसे स्वर्ग के मधु-दृश्यों की चित्र-पटी सी जानो।
भव-रोगो की भेषज है या रवि-कर प्रखर तिमिर की,
लता मालती है वह अथवा सुन्दर सत्य-भ्रमर की।

जिसे देख कर त्याग-भावना, खिल जाने को मचले,
अमर मन्त्र थी सिद्धि सलोनी, जो जन-मन को बदले।
काव्य-विपिन मे जब बहार सी, ऐसी रचना विलसे,
सत्य-कमल की कली उसे लख, मन-तडाग मे विकसे।
मोहन-मन पर इस पुस्तक ने पूरा दखल जमाया,
त्याग विराग भरे जीवन का सीधा रूप दिखाया।
व्यक्ति-श्रेय मे है विराट का, शुभमय मगल अतिशय,
मुदित खिले श्रम के विनिमय मे मानवता का आशय।
कृषक, श्रमिक, बैरिष्टर, धोबी, सब समान है साधन,
किन्तु उचित तो श्रमिक-कृषक के, कर्मों का आराधन।
श्रम-कण से सर्वोदय-तरु का सीचो जब आत्मोदय-मूल,
तभी लगे इस हरित वृक्ष के मोद शान्ति के चिर फल-फूल।
इस पुस्तक को पढकर बदला जीवन का क्रम क्षण मे,
कभी न पीछे मुड कर लखते मोहन मन के प्रण मे,
वेस्ट सरीखे सुहृदो की फिर झटपट सम्मति लेकर,
नई नीव आश्रम की डाली डरबन पुर के बाहर।
मोहन यो फीनिक्स धाम मे खेती करने आया,
सरल पठित नागर कृषकों ने नूतन ग्राम बसाया।
ग्राम-धाम में सच्चा जीवन, राम नाम का जपना,
वहॉ न कोई बसे पराया, जन-जन परिजन अपना।
सींचो सदा स्वेद के श्रम-कण खिले स्वास्थ्य का मधु-वन,
तन-मन इससे विकसे निशि-दिन जाना तुमने मोहन।

इसीलिये मथुरा से मोहन गोकुल मे जा खेला ;
वह यदुवंशी कुँअर कन्हैया ग्वालों में जा फैला।
मेह नेह का बरसे उर-घन, तरुणी रागे मधुर मल्हार,
शान्ति-धार दृग-चातक पीवें, सुख-सावन की हरी बहार।
सुभग श्याम ने माधो वन मे, मुरली मधुर बजाई,
ग्वाल-बाल की प्रिय टोली ने प्रेम-छटा सरसाई।
मधु-माखन को चाखन खातिर राज कुँअर था ग्वाला,
नेह-नेम को पाला उसने, बना नन्द का लाला।
सरल सलोने सखा-सखी वे स्नेह-सिला के पुतले।
कहाँ नगर मे मिलते वैसे स्वाद सुधा के उजले ?
गो, गोपी गोपाल सभी को प्रेम-सूत्र से बांधा,
वंशी की दो तान सुनाकर ठगी मोहिनी राधा।
प्रीति-कली से गली खिली है भरा ग्राम कण-कण मे प्यार,
प्रकृति करे अभिसार, वही है श्याम-मुरलि की मृदु झनकार।
धन्य रसाकर कवि रसकिन तू, रचना धन्य तुम्हारी,
धन्य रसापर तव रसना ने जीवन गिरा प्रसारी।
ओ कवि। तैंने आदि काल से अगणित सुमन खिलाये,
भव में जाने अब तक कितने गौरव-भवन बसाये।
ओ प्रताप के गौरव-नाविक। शिवा-विरुद-बल-भूषण।
ओ पृथ्वी के चन्द कीर्त्ति-धर। प्रखर शौर्य के पूषण।
ओ रामाजिर-तुलसी बिरवे। शूर श्याम के सहचर।
सत्य-सूत्र के प्रेम-जुलाहे। भाव-पद्म के दिनकर।

भाव-ज्ञान के वायु-यान से विहरो अमर गगन मे,
झलकी जग-हित स्वर्ग-रग-छवि कवि! पहले तव मन मे।
अरुण चूड़! तू अरुणोदय के नव प्रभात का सूचक,
भाव-सुमन तव स्वप्न-विपिन के पारिजात से रोचक।
अमर-नगर के भाव-वारि-धर! प्रचुर पुण्य-कर कविवर!
करो नजर टुक सुधर इधर भी प्रणवे किङ्कर सादर।
कवि तव कविता मधुर मल्लिका कहाँ न जावे गावे?
पर जाने किस मन-उपवन मे कव मधु-चक्र रचावे?
राम-कृष्ण अरु ख्रिस्त-बुद्ध को तुमने सुलभ किया है;
स्नेह, शील, सवेदन, सौरभ, कितना दान दिया है।
नेह-नेम के हेम-हर्म्य बहु, भाव भरे ये भव्य भवन,
गौरव गिरि के रुचिर शिखर ये, नव रस-पूरित वन-उपवन।
कला-लता के केलि-कुञ्ज ये, सुगुण-शील-सर वापी-कूप,
रूप-भूप के ये परकोटे, शिव सुन्दर के स्तूप अनूप।
भव-पट पर कवि तव तूली से मिला इन्हे है चित्राधार,
सुधा-भाषिणी तव वाणी के स्वर से सरस हुआ ससार।
बूढे विधि की शीर्ण सृष्टि को दिये तुम्हीने सुख शृङ्गार,
प्रीति-रीति से शील-नीति से, भरो तुम्हीं नर का व्यापार।
हृदय-सेतु से छाया तुमने धरा स्वर्ग का अन्तर कीच;
काव्य-पाँवड़ा, कला केतु है, सुरुचि-सुरभि से पथ को सींच।
नव रस के मणि-दीप जलाये, लय-गति की स्वागत-झनकार;
वन्दनवार बँधे छन्दों के, बहुविधि भावों के प्रतिहार।

भावुकता मय भक्ति वीथि से चलो पान्थ रे। भरकर प्यार ;
देखो, कविवर टेर रहा है अमर-नगर का खोल द्वार।
रसकिन ने यों गान्धी-कुल को फीनीक्साश्रम भेजा,
वहाँ सरल जीवन के धन को इनने खूब सहेजा।
गान्धी के प्रिय सखा शिष्य भी गये वहीं मधु भरने,
साथ ले गये छापाखाना पत्र प्रकाशित करने।
सुहृद वेस्ट और मगनलाल ने मुद्रण-कार्य सँभाला,
कार्य-नियम निज योग्य, सभी ने पूरे श्रम से पाला।
शक्ति-केन्द्र थे मोहन विनई, वेस्ट सरिस पटु चालक,
छगनलाल गान्धी से सेवक आज्ञा के प्रतिपालक।
'भारतीय सम्मति' साप्ताहिक आश्रम से चल निकला,
मिटा पत्र का छिछलापन सब हुआ अधिक अब उजला।
इस आश्रम मे स्फूर्ति प्रगति-रस क्रमशः लगे विकसने,
स्वास्थ्य-शील-जल शुद्ध वायु से उर-तरु लगे उकसने।
लता-कुञ्ज से बहु कुटीर थे हरित भूमि पर छाये,
वन-नीडो मे नागर-पक्षी क्यो थे बसने आये?
सुनो सारिके, शुक, खग, कोकिल, यह जो मधु-वन प्यारा,
यही सदा से सहज सलोना प्रिय अधिवास तुम्हारा।
चिड़ियारानी। नगर-नीड़ की कारावास कहानी,
नादानी से मीठी जानी, व्यथा बढ़ी मन-मानी।

भूला रे वन-गगन-विहारी! पुर-पिंजरा अपनाया,
पीड़ित है तू, जबसे निज घर तुझको हुआ पराया।

जगल मे शुभ मगल भरके, खिला स्नेह स्वर्ण ससार,
रचती थी अभिसार, भावना पाकर ऐसा प्रिय परिवार।
श्वेत-श्याम का शोभन सगम, स्वर्ग-शील का शिष्टाचार,
धन्य सभ्यता सस्कृति जिसने मानव को सिखलाया प्यार।
पूरव पश्चिम धूप छाँह से खेले आँख मिचौनी खेल,
श्याम धवल इस गान्धी-कुल की, पलपल बढे प्रलय तक बेल।
एक वर्ष से अधिक समय यो मोहन को था बीता,
इन विधु बिन कस्तूरी माँ का भवन-गगन था रीता।
रहे कार्य-वश हुआ न सभव इनका भारत जाना,
तब निष्ठुर के पास देवि को पडा दूर से आना।
छोटे लड़के रामदास के अफ्रीका को आते,
कर पर चोट लगी, क्रीडा मे ऊधम बहुत मचाते।
उस पर भी मिट्टी की पुलटिस व्रण को धोकर बाँधी,
पक्के प्रकृति उपासक है ये प्रभु-विश्वासी गान्धी।
दर्द घटा फिर मिटा घाव भी, नित निष्ठा-तरु फलता,
सच्ची श्रद्धा का सुखमय फल कब न विश्व मे मिलता?
इन्ही दिनो मे श्री पोलक की गान्धी-गृह मे आकर,
बसे स्नेह से रसकिन भी शुभ परिपाटी अपना कर।
यद्यपि पोलक-दृग-गोलक ने प्रेम-रग था धारा,
तदपि तरुण वह धनाभाव से अब तक रहा कुँआरा।
एक दिवस तब उसे बुलाकर, मोहन ने समझाया,
"तजो द्रव्य-चिन्ता क्यों तुमने झूठा बोझ बढाया?

जाओ, लाओ शीघ्र वधू को, व्यर्थ न यों शरमाओ,
व्याह रचो, मधु-मास मनाओ, प्रेमामृत सरसाओ।"
मोहन ही ने आखिर इनका मगल व्याह रचाया;
पोलक-दम्पति ने अभिभावक, सखा, बन्धु यों पाया।
युगल हृदय की स्नेह-धार यह चली उछलती ले निज नीर,
मिली, मुदित हो कलरव करती, गान्धी-कुल-गगा के तीर।
क्यो न मानता युवक वेस्ट फिर मोहन की शुभ सरस दलील ?
अन्तर-बाहर से अति सुन्दर लाया वह भी वधू सुशील।
भारतवालों मे से कुछने निज परिवार बुलाये,
यो आश्रम मे सबने मिलकर स्नेह-कलश ढुरकाये।
हिलमिल कर सब शिक्षा देते, लेते पावन दीक्षा,
नव अनुभव से, नव जीवन की, होती नित्य परीक्षा।
ग्रामीणों से अधिक सरलता थी इनने अपनाई,
नागर-शील-भाव ने उसमे भरी कला-सुघराई।
सारी आश्रम-भूमि सँवारी, रची वीथि फुलवारी,
खेल रही थी प्रति क्यारी मे विमला कला-कुमारी।
थे क्रीडालय, कल कुटीर अरु बाल-भवन, विद्यालय,
श्रम-विभाग था, क्षेत्र सजे थे, था पावन देवालय।
धर्म-ध्यान के भोगी मानो थे गृहस्थ ये योगी,
यथा-स्थान सब वस्तु सजी थी, जो थीं अति उपयोगी।
पगडडी थी बनी बीच से, गमले लगे हुये थे,
इस आश्रम मे भाग्य कला के मानो जगे हुये थे।

मणि मुक्ता-शृङ्गार हर्म्य में हेम-भार हैं भारी,
दबकर, सिकुड़े कला-लता सखि, खिल न सके बेचारी।
कभी न विकसे बडे घरों की बेलि नवोढा गौरी,
नेह-नीर बिन शुष्क शान से पनपे कौन किशोरी?
मधु-वन मे नित मुक्त वायु-जल पाकर कला-कुमारी,
विकसे, रुचे न इस हरिणी को मणि-मय महल-अटारी।
आश्रम-सर मे मञ्जु मराली खिल खिल खेली, फूली;
हलकी होकर निशि दिन निखरी, क्रीड़ा में सुध भूली।
झूली श्यामा रस-झूले पर, भगी भीति, गाये मधु-गीत,
तूली लेकर आँक रही थी, मुग्धा प्रीति रीति परतीत।
इन्हीं दिनों नैटल में सहसा जूलू-बलवा फैला,
या बलवे के मिप जूलू पर हुआ भाग्य का हमला।
जूलू नायक किसी एक ने कर का देना रोका;
शासक ने सुन निखिल जाति को दडानल में झोका।
गौरे प्रभु ने द्रोह-शान्ति-मिप, मानव-मृगया खेली,
जूलू ने उन क्रूर करों की गोली तन पर झेली।
श्वेत-हस्त ने निरपराध पर निर्मम हंटर मारे;
कड़ी मार से हुये बहुत जन मरणासन्न बिचारे।
उस अनाथ जूलू बस्ती में श्वेत सिपाही जाकर,
भून रहे थे दीन जनों को, मृत्यु-उपल बरसा कर।
निर्बल-तन-मन-भवन भून कर, जो जन खेले होली,
उस पापी के तन की झोली किस से जावे तोली?

क्षण भंगुर जीवन की खातिर रे नर! पाप करे क्यो?
मूर्ख, तुच्छ से तन-थैले मे कलि-मल बीन भरे क्यो?
प्रेम-वृन्त-हित मिला देह का तुझको उजला गमला;
दुरित-कीच से ही क्यों उसको रखता मैला-कुचला?
छोटा सा मन-मन्दिर प्रभु का पूजा कर, अरु दीप जला;
नरशिशु! प्रेम-प्रसाद, विनयसे खुद खाकर फिर हमे खिला।
सेवा का अधिकार सदा से मोहन का है प्राणाधार.
अत किया इस बार यहाँ भी इनने आहत का उपचार।
उन दीनो के घाव भयावह धोये बिना सडे थे,
कोडे बहुत पड़े थे तन पर, व्रण सारे बिगडे थे।
परिचारक थे श्वेत सिपाही, व्रण को क्रूर न धोते,
भले चिकित्सक जूलू-गण की दशा देख कर रोते।
मोहन आया, लो गागर भर स्नेहामृत है लाया;
आहतगण ने अरु 'सर्जन' ने मानो नव बल पाया।
प्रिय-सेवा से उन दीनो के घाव भरे, सुख छाया;
शुभाशीष दे, उनने भी नित मोहन-मगल गाया।
चालीसों मीलो तक पथ मे प्रतिदिन पैदल चलकर,
मोहन और सखागण लाते आहत काधे धर कर।
पर-सेवा मे अबतक किसने निजको इतना भूला?
सेवा-व्रत को मोद मान कर कौन कभी यो फूला?
सेवा को कर्त्तव्य समझ कर, धर्म-कर्म के नाते,
अब तक पिछले साधु सुधी थे, नियम पालते आते।

पर न किसी ने श्रेय अन्य का चरम सौख्य था माना,
'है स्वभाव ही सेवा नर का' यह तुमने ही जाना।
लें देकर कुछ सेवा करते, मना-मनू कर, मन को,
लखा-सुना था अब तक हमने उपकारी सज्जन को।
ऐसे विरलों को भी जग ने खूब सहारा गाया,
गा-गा कर कवि-कोकिल-कुल ने यश उनका विकसाया।
सेवा मोद-सार की मोहन! देह बनी पर तेरी,
जूझ रही है जो दानव से, बजा प्रेम-रण भेरी।
गान-मान तो पाते जग के बहु सभावित मानी पूत,
क्या दें मोहन! दीन तुम्हें हम हे प्रभु के लोकोत्तर दूत?
एक बार कस्तूरी देवी रुग्ण हुईं अति भारी,
की सर्जन ने शस्त्र-चिकित्सा, पर न घटी बीमारी।
इन देवी ने शस्त्र-वार की महा-यन्त्रणा झेली,
अस्थि मात्र थी बची देह में, अति निर्वलता फैली।
लख कर रोग-दशा मोहन से बोला योग्य चिकित्सक—
'आमिप-पेय इन्हें देने दो शायद प्रभु हो रक्षक'।
मोहन-मन को सरजन का यह कथन न बिल्कुल भाया,
रुग्णा ने सुन, इङ्गित से निज स्पष्ट विरोध बताया।
सुहृद डाक्टर बोला-"इनको मैं निज भरे भवन में,
मरने दूँ क्यों धर्म-रूढि के अन्धे पागलपन में?"
पर इनका शुभ निश्चय निश्चल, हुआ न बिल्कुल चंचल,
विकल चिकित्सक, सरल भाव से, समझा हारा विह्वल।

किन्तु देवि के दुर्बल तन को डरबन से ले जाना;
फीनीक्साश्रम तक अति दुस्तर था जीवित पहुँचाना।
तीन मील तक विषम सड़क से था आश्रम को जाना,
कहा वैद्य ने खतरनाक है तन को तनिक हिलाना।
रिम झिम बून्दे बरस रही थीं, खतरा था अति भारी,
कहा देवि ने 'चलो शीघ्र अब' तनिक न हिम्मत हारी।
चले सुमर कर गिरिधारी को, मोहन कॉप रहे थे,
निष्ठा-रण में तीर वीर ने अब तक बहुत सहे थे।
धन्य देवि पर पथमे मुख पर नाच रही थी मृदु मुसक्यान,
स्मिति मे, पति ने सुनी मग्न हो प्रभु-मुरली की मनहर तान।
जाने सिन्धु-विहारी को क्यो सदा परीक्षा प्यारी?
उसके दिव्य सखा-कुल ने है कितनी निधियाँ वारी।
मानस से दृग-थाली भरकर, मुक्ता भक्त लुटाते,
पथशूलो पर देह-पॉवडे हरिजन रोज विछाते।
या भक्तो का बना बहाना देख धरा को रोती,
प्रिय प्रभु भव मे विखराता है नव भावो के मोती।
सत्य-छत्र-तल, युगल भक्त ये पहुँचे आश्रम सकुशल,
विषम मार्ग यो सरल बने है ईश-कृपा-वश मगल।
की मोहन ने स्वय चिकित्सा, बचीं रोग से देवी,
सदा जीतते निष्ठा-पन्थी पक्के प्रभु-पद-सेवी।
स्वस्थ न अब तक भली भांति थी कस्तूरी हो पाई,
एक दिवस लख वदन-पीतिमा, बोले गान्धी भाई।

विफल हुये उपचार अभी तक एक बात पर मेरी;
एक बार यदि मानो फिर भी होवे आशा पूरी।
एक वर्ष तक तजो लवण अरु विविध दाल के भोजन,
है विश्वास मुझे फिर होवे निश्चय रोगोन्मूलन।
हँसीं देवि अरु कहा- नमक तो तुम भी तज न सकोगे,
अगर परोसूं विना दाल तो, थाली छोड़ भगोगे'।
"मुझसे प्यारी दाल तुम्हें है हे मेरे उपचारी।"
रुकी मौन हो, सहसा क्यो फिर वह विनोदिनी नारी?
चौंक पडी, पतिप्राणा ने जब पति-नयनो को देखा-
दिव्य दृगों मे दुरी, चमक के एक ज्योति की रेखा।
पति बोले मुसका कर-"मैंने अब से तजे नमक अरु दाल,
प्रिये। धन्य है याद जगाकर, तुमने मुझको किया निहाल।"
'अरे अरे' बस इतना ही तो बोल सकीं कस्तूरी,
तब तक तो पति-रसना ने थी करी रसेच्छा पूरी।
क्षण मे छोड़ा लवण-दाल को सहज प्रतिज्ञा करके
चतुर वैद्य ने दिया प्रिया को प्याला भेषज भरके।
"वापिस करो वचन निज स्वामी। जो कुछ कहो करूँगी,
और आज के पलटे जो भी बोलो, दंड भरूँगी।
अधमा और अबुध हूँ मै तो सहज निरक्षर नारी;
ऐसे शत-शत प्राण, हृदय-धन। हों तुम पर बलिहारी।
हाय अभागी खातिर पर तुम बनो न यों व्रत-धारी;
हारी, अबला कैसे झेलूं वचन-भार यह भारी?

मैं विनोद थी करती, तुमने उसको सच्चा माना,
ऐसा दुष्कर प्रण क्यों सहसा मेरी खातिर ठाना?"
पति बोले-"पत्नी, पति खातिर सब कुछ करे निछावर,
कभी पुरुष को भी करने दो थोड़ा स्नेह-समादर।
अनुशासन से मेरे मन को समुचित सीख मिलेगी,
प्रिया-प्रेम सिप धन्य, हृदय की निष्ठा-बेलि खिलेगी।
तनिक तुम्हारे योग्य बनूं मैं, करके दमन दुरित का,
करने दो अनुकरण मुझे कुछ अपने पुण्य-चरित का।
तनिक बात में देवि! न यों तुम नयन-धार बरसाओ,
शान्ति-लाभ हो मुझको इससे, स्वास्थ्य-लाभ तुम पाओ।"
कस्तूरी के बहने वाले नयनों की पर रुकी न धार,
दृग-मराल छक, फेंक रहे थे, चुन मानस का मुक्ता-भार।
इसी भांति तो पावे पौरुष पति कहलाने का अधिकार,
धन्य हृदय-व्यापार मनोहर जिसके पीछे स्नेहाधार।
कभी न चूके, स्वाति बून्द ही चुने पारखी चातक,
उसे प्रेम का पन्थ भले ही हो प्राणों का घातक।
ऐसी ही शाला की शिक्षा मोहन ने थी पाई,
प्रभु-माला में निज मन-मणि भी इनने बेन्ध गुथाई।
जब जब ये अनुराग त्याग का पाते कुछ भी अवसर,
सदा अग्रसर रहे समर में, कभी न भूले नर-वर।
रहा न कोई इनसा पक्का प्रभु-चरणों का चेरा,
प्रभु ने भी अभिमत करुणामृत इन पर सदा बिखेरा।

प्रतिपल हिलमिल विमल युगल ये कस्तूरी अरु मोहन,
ब्रह्मचर्य व्रत ले यौवन में बिता रहे थे जीवन।
दिन-दिन जीवन-यापन-साधन घटा रहे थे मोहन,
उर-धन प्रभु को अर्पन करके करते थे तन-शोधन।
खोज-खोज कर जोड़ रहे थे छन-छन सुधन सरलपन,
मद्यप जैसे मदिरा खोजे, लोभी खोजे कञ्चन।
बासन मलते, कपड़े धोते, करते विविध सफाई,
लगे चलाने चक्की भी अब, प्रतिदिन मोहन भाई।
शिष्य सुहृद सब देखादेखी हुये सरलता-साधक,
रहा न बाधक कोई, मानो सभी वहाँ थे स्नातक।
शिशु-कुल को तो भाती अतिशय ऐसी मधुर पढाई।
मुदित खेल मे हँस-हँस उनने चक्की खूब चलाई।
शिशु की ज्यो जब अध्यापक को अधिक न भावे अक्षर-ज्ञान,
क्यो न उठे फिर उस गुरुकुल से हास्य-मोद की ऊँची तान?
लखो बालको। तुम्हें मिला यह अध्यापक मतवाला,
खुद भी तुम मे मिलकर खेले ऐसी इसकी शाला।
खेल खिलावे, काम सिखावे, मीठी बात सुनावे,
करे काम जो स्वय, खेल मे तुमसे वही करावे।
अरे छोकरो। तुम सबको भी ढग यही क्यों भावे?
सच है, बन्दर भालू को तो चचलपना सुहावे।
विद्या-धन की आश तजो तुम, अपने घर को जाओ,
इस पागल की शाला में क्यों आकर समय गँवाओ?

यह तो तुमको फूटा अक्षर एक न यहाँ पढावे;
काव्य-गणित-विज्ञान-माधुरी यह क्या तुम्हें चखावे?
पागल साधु विरागी है यह डोले धूल उडाता,
देह, द्रव्य, सुख, बुद्धि, समय निज योंही फिरे लुटाता।
जो कुछ पावे, फेंके पागल, आशा उससे कैसी?
जिसकी जैसी मति होवे वह, सीख सिखावे वैसी।
जिसने निज पुत्रों को अब तक विद्या नहीं सिखाई,
वरतन भांडे धोने की ही उनको मिली पढाई।
उच्च काव्य अँग्रेजी शिक्षा इसे वहुत कम भाती,
सव वच्चो को सिखा रहा है गँवईपन्न गुजराती।
कहता स्वर्ग-सदन सी सुन्दर, घर की टूटी कुटिया,
खटिया, शक्र-सेज सी सुख कर, रस-सागर सी लुटिया।
प्रिय स्वदेश-गुण वेप गिरा का जो जन रक्खे गौरव मान,
धन्य कृती कुल-कान्त जयी वह, करे आन का जो नित त्रान।
इन्हीं दिनो जब व्यग्र चाव से लगे हुये थे मोहन-
करने मे नित भोजनादि के वहुविधि नये परीक्षन।
एक सुहृद कैल्यनवक नामक सहसा इनने पाया,
मधुर भाग्य ने मानो उसको इनके निकट पठाया।
उसको भी कुछ वुद्ध-वाग की शीतल हवा लगी थी,
इसीलिये कुछ पागलपन की मनमे सनक जगी थी।
सदृश-शील-व्यसन की जोड़ी, अगर कहीं जुड़ जावे,
उनके मन की मोद-माधुरी फिर न कहीं पर मावे।

साथ सुहृद को ले सत्पथ पर लगे दौड़ने गान्धी,
स्फूर्ति-तेज-गति-शील-जोश की मन मे उमड़ी आन्धी।
तन-चल्ले दृढ हृदय गेन्द सा, सत्य-खेत मे निशि-दिन,
महा मोद मे उछल रहा था खेल रहा था यौवन।
फान्दा करते युगल मित्र नित विविध विघ्न की खाई,
इष्ट-मार्ग के मृत्यु-खेल मे शङ्का निकट न आई।
प्रभु के पथ पर काल-केलियाँ नित दोनो को भाई।
देख विपद से वचा स्वय को, कहते गान्धी भाई—
"पैर फिसलता और अगर हम गिर करके मर जाते,
सत्पथ पर है अत स्वय प्रभु हमे उठाने आते।"
प्राणेश्वर का प्रेम-सरोवर सुखकर किसे न भावे?
पुण्य-पथ पर मरण मनोहर बड़भागी नर पावे।
कैल्यनवक ने लख मोहन को, छोड़ा सारा वैभव-भोग
तन-मनसे वह तरुण विरागी लगा साधने निशि-दिन योग।
मिताहार तो था मोहन का सीधा नियम पुराना,
दाल-लवण भी छोड़ चुका था पहले ही मस्ताना।
ब्रह्मचर्य-व्रत-धारी ने अव फलाहार अपनाया,
फलाहार को सदाचार हित अत्यावश्यक पाया।
प्रभु-चरणों के चेरे ने अव तजा दुग्ध-रस पीना,
नहीं कठिन कुछ उसे, जिसे हो, पर-हित-खातिर जीना।
वर्षों विलसे कन्द-मूल-फल प्रभु राघव वन-वासी,
तुम भी फल पर रहो न क्यों फिर रघु-कुल-पथ अभ्यासी?

क्यो न अनुज हों अनुगामी, जब अग्रज हो वन-चारी ?
कैलिनवक हों क्यो न कहो फिर, तेरी ज्यों व्रतधारी ?
निराहार उपवास विविध अब प्राय करते मोहन,
दमन-शमन का मोद सहित नित करते थे सम्पादन।
सुहृद अनुज वे, जैसे जो भी, गान्धी भाई करते,
वेद-वाक्य-सम उसे मान कर, चौकस मन मे धरते।
जिन जिन साधन से ये गुरुवर करते शोध-परीक्षण,
उन्हे देखते थे आश्रम मे सारे छात्र सखा-गण।
करने को अनुकरण गुरु का, छात्र हृदय ललचाते,
व्रत रखते वे हर्षित होकर, गुरु-निदेश जब पाते।
थी प्रयाग का पावन सगम वह आश्रम की शाला
विविध वर्ण-मणि छात्रो की थी मानो मोहन-माला।
हिन्दू, मुस्लिम, दलित, पारसी तथा इसाई कुल के छात्र,
आँक रहा था, शिल्पी हँस हँस सुवरण के बहुरगी पात्र।
है अभेद का परम उपासक इसे एक है सभी अनेक
सबके नेत्र-घटो मे दिखती इसको रवि की प्रतिमा एक।
हिन्दू छात्र यहाँ पर जैसे उपवासादिक करते
वैसे मोहन की शिक्षा से मुस्लिम रोजे रखते।
आर्य-भारती करें आरती, वे गिरिजा-घर जावें,
ये नमाज के शान्त साज से दिव्य ताज-गुण गावें।
हे रहीम, नारायण, प्रभुवर, हे अल्लाहो अकबर,
अमर-प्रेम-गागर ढुरका कर करो कृपा नित नर-पर।

यहाँ सभी थे भाई भाई, मुस्लिम-आर्य-इसाई,
बलि मोहन की प्रेम-पढ़ाई, जिसने शान्ति सजाई।
कभी न टूटे स्नेह-सजाई, निखरे नित्य निकाई,
जिसने प्रीति लगाई, उसने जीवन-निधियाँ पाई।
शाकाहारी रोज़ों में भी रहते मुस्लिम भाई,
हिन्दू स्नेही उन्हें जिवाते निशि मे स्वादु मिठाई।
प्रति उर-पुर की डगर-डगर में स्नेह-सुधा था सरसा,
ओ मोहन तू श्याम मेघ सा आश्रम-वन में बरसा।
आश्रम की यह पावन शाला फैला था उजियाला,
कैलिनबक से सेवक आला दीप जलाते ला-ला।
बालक माली थे प्रभात में उपवन रुचिर लगाते,
खेल खेल में कैलिनबक थे उनको सबक सिखाते।
मोहन कपड़े-बासन धोते करते कभी रसोई,
निज निज रुचि से विविध काम मे लग जाते सब कोई।
अध्यापक या दर्जी अथवा जूता सीने वाले,
सब उपयोगी काम यहाँ पर करते रहने वाले।
स्वास्थ्य भरी उपयोगी विद्या सीख रहे थे हिलमिल छात्र,
शुद्ध वायु-जल, स्नेह-योग फिर, विकस रहे थे तरु से गात्र।
पढ़ते शिशु गुजराती तामिल प्रिय भारत की भाषा,
भरते थे अनुराग भरे उर निज गौरव निज आशा।
गणित, काव्य, विज्ञान, संस्कृत अरु अंग्रेजी शिक्षण;
क्रीड़ा ही मे यथानियम नित पाते थे सब शिशुगण।

छात्र-हृदय में संवेदन की गहरी नींव लगाना;
उस पर शोधे सदाचार का मनहर महल रचाना।
उच्च शील-सीमेंट सलौना, शुद्ध स्वास्थ्य के प्रस्तर,
सहन शक्ति-श्रम चूना-गारा, बने भवन यों सुन्दर।
शम-कूँची से स्नेह-रंग की करके रुचिर पुताई,
पावन भावों के चित्रों की शोभा भरी सजाई।
ललित कला-मणि गुण-गण-मुक्ता, झालर टँके हुये हों,
हरे काव्य-छन्दों के गमले, आँगण ढके हुये हों।
देश-प्रेम अरु स्वाभिमान के हों गवाक्ष-वातायन;
जिनमें विचरे मुक्त समीरण स्वतन्त्रता का वाहन।
धर्म भावना अरु विद्या की ठाकुर-वाडी होवे,
संस्कृत वाणी जहाँ भोर ही पूजा साज सँजोवे।
छात्र-हृदय पर बना रहे थे मोहन ऐसा मन्दिर,
जिसके अन्दर रमे रात-दिन सारे सुर-गण सुन्दर।
भक्ति-दीप प्राणेश्वर प्रभु का जग कर हरे अँधेरा,
ऐसे घर के रुचिर अजिर में संपद करे बसेरा।
छात्रालय में धर्म-कर्म अरु आत्मिक शिक्षण का आधार,
तप्त हेम सा था मोहन का धर्म-रूप जीवन साकार।
केशव को नित शैशव भाता, भोला अबुध अयाना,
कम रुचता है प्रभु के मन को, शिक्षक अधिक सयाना।
कृष्ण कन्हैया बालकपन से थे खुद नटखट चञ्चल,
प्रतिपल सरल हृदय चल जल सा, होता निर्मल निश्छल।

शिशु-शिक्षक भी देवानां प्रिय वालक जैसा होवे,
वाल-दुग्ध मे घुल मिश्री सा वह अपनापन खोवे।
उनसा उनमे रह कर खेले, कूदे, हँसे हँसावे,
साथ-साथ रह पावनता के सत्य-गीत भी गावे।
और कभी राजा-रानी की उनसे कहे कहानी,
कौतुक भर कर प्रिय वाणी से धर्म-दान दे दानी।
चाहे जितने काम सिखावे, विद्या-कला पढ़ावे;
पर जो कुछ भी उन्हें वतावे. उसको खेल वनावे।
शिशु-सुमनो का शाला-उपवन सींचे वोही माली;
भक्ति-नहर से नेह-नीर ले खोले जो मति-नाली।
वालक हैं प्रभु-फुलवारी की सुन्दर कलियाँ कोमल;
वन-विटपों पर विलस रही हैं नन्ही नन्ही कोंपल।
आन्धी-ओले-आतप-पशुगण विघ्न वहुत है वन मे;
वहुत यत्न से पाल इन्हें नर! प्रभु-चिन्तन भर मन में।
अमर रहे गान्धी की शाला अरु यह उसका शिशु-धन,
जाने इनमे स्वर्ग-कोप का हीर छिपा हो पावन।
राम कृष्ण प्रभु नवी मसीहा सवका है शिशु-कुल मे वास;
सावधान रे शिक्षक। तुझपर निर्भर नर का विश्व-विकास।
एक वार इस आश्रम में भी दो छात्रों ने मिलकर,
कुछ नैतिक अपराध लिया कर, मोह-ताप मे गल कर।
इन लड़को का दोप वृत्त यह जव मोहन तक पहुँचा,
शोकानिल से था चलदल सा, वोधि-वृक्ष वह ऊँचा।

'हाय विधे !' कह अमित कष्ट से लगे काँपने मोहन,
"किन कलि-शूलो से है मेरा अभी भरा मन-कानन ?
यदि मैला हो कोण अजिर का, गृह-स्वामी है दोषी,
गृह प्रबन्ध की कला न उसने भली भाति है पोषी।
आश्रम मे भी झाँक गया है किन छिद्रो से दानव ?
ईश-चरण की शरण विना नित मरण तुम्हारा मानव"।
राम-चाप की अभ्रभेदिनी प्रलयङ्कर टङ्कार,
क्यो न निबल नर उन्हे पुकारे, क्यो किसको धिक्कारे ?
पुन तपोवन मे तो कोई राक्षस भूल न आवे,
विघ्न रहित हो आश्रमवासी, यज्ञागार सजावे।
बोले मोहन—"क्यों न पाप का प्रभु उपचार करेंगे ?
यहाँ प्रजा-जन नृप-चरणों मे खुद निज दड भरेंगे।
पाँच मास तक एक बार मै करूँ दिवस मे भोजन,
अरु रक्खूँगा दीन अभी से एक पक्ष तक अनशन।
प्रभो ! पुत्र सम प्रिय छात्रो की पतन-भूल को लखकर,
टीस पीड की रह रह उठती रोता हृदय बिलखकर।
छात्र-हृदय-द्वारे पर विरमे प्रभु तव कृपा-ज्ञान-प्रतिहार,
तथा तुम्हारे दण्डाधिप का करूँ दीन स्वागत-सत्कार।
निखिल विश्व के महाप्रतापी व्यापक तेज भरे सम्राट !
हम नगण्य फुलझडियाँ तेरी मिले कृपा-वर अहे विराट !
मोहन की सकल्प कथा यह जब आश्रम ने जानी,
सवेदन के तीव्र ताप से हृदय हुये सब पानी।

बहुत दुखित थे व्यथावात से सारे आश्रम-वासी;
इस चकोर-कुल में थी छाई पीडा अमा-निशासी।
'कहो पूज्य ज्ञानी क्यों ऐसी निपट कठिन हठ ठानी?
क्यों करते मन-मानी तुम तो शील-कला के दानी?'
देखो तो सब छात्र सुहृद गण कैसे विलख रहे हैं!
मौन गिरा ने दृग-कविता मे अभिनव भाव कहे हैं।
हृद-मन्दिर मे गिरा पुजारिन प्रभु की पूजा करके;
नयन द्वार से नभ-सुर-सरि-जल छिडके अरघा भरके।
क्यों सुहृदों का सुमन मसलकर सबको सता रहे हो?
भेद जताकर बात कौनसी इनको बता रहे हो?
व्यथा-वेद की कथा तुम्हारी इन्हें न भावे भाई,
यही कष्ट की करामात बस तैने है दिखलाई।
देखो रोते हैं किशोर अब वे अपराधी भोले,
मानो इनके हृदय-खेत पर पड़े दुख के ओले।
फूट फूट कर विलख रहे हैं बहते है दृग झरने;
भरने आया दंड यहाँ तू अथवा वेसुध करने।
गल कर हाय हृदय-हिम उनके तव किरणों से बहते,
सुनो तनिक ये दोषी बालक धीमे से क्या कहते—
'क्षमा करो हे पूज्य दोष सब फिर न बने ऐसा अपराध,
तुम अगाध हो स्नेह-सिन्धु हे। तजो देव अनशन की साध।
हे गुरु। भार उठावें इतना कैसे हम बालक नादान?
गरल-पान तज कृपा-दान दे रक्खो हम शिशुओं का मान।"

आर्द्र कठ से कैल्लिनवक भी बोले यो मोहन से—
"त्याग नहीं यह आत्म-घात है वैर करे जो तन से।
कन्द मूल फल के भोजन से चला रहे हो जीवन;
सूख रही है काया सारी और करो क्या शोधन?
इस अनशन के योग्य नहीं तुम स्वय शुद्ध हे मोहन।
अगर दोप के भाजन तुम तो कौन विश्व मे पावन?
पर हठ-वश सकल्प करारा टरे न यदि यह टारा,
छिप न सकूंगा मै अनुगामी दूँगा साथ तुम्हारा।
पर न किसी आँधी से डोला व्रती अटल यह गान्धी,
मुख से निकली सूक्ति कठिनतम सदा सिद्ध ने साधी।
"जिस व्रत का सकल्प मात्र ही है ऐसा फल-दायक;
चला रहे हे सुहृद सहायक मधुर नेह के सायक।
मेरा लोभी दिल यह अपतो और अधिक ललचाया,
इस भागी ने व्रत से पहले निज अभिमत फल पाया।
स्नेह-मोह ने बन्धु भावते तुमको विकल किया है,
मिथ्या हठ तो उलटे तुमने मम हित धार लिया है।
छोडो बातें सशय वाली राम करें रखवाली,
मेरी बात न तुमने टाली धर्म-नीति नित पाली।
मुझे अकेले व्रत रखने दो कष्ट न तनिक खलेगा,
सुहृद-नेह से बल-तरु मेरा प्रतिफल खिले फलेगा।"
यो कह कर झट किया व्रती ने अनशन का उद्यापन,
कैल्यनवक भी निराहार रह करते स्नेहाराधन।

धन्य कृती कैलिनबक तुमने तजा न गहकर प्रिय का हाथ;
शूल विघ्न-मय विषम मार्ग पर रहे सदा मोहन के साथ।
दुग्ध जले तब मित्र-नेह को क्यों न निबाहे सहचर नीर?
बता सुहृदवर जर्मन तुझको किससे मिली प्रेम की पीर?
मोहन से मिल खेल बहुत से खेले इस व्रत-रत ने,
इसकी प्रेम-कथा मे जाने प्रिय प्रसंग हैं कितने?
परम सखा अरु निश्छल मन का था यह गोरा जरमन,
कथन मान कर मोहन का था हुआ अकिञ्चन निर्धन।
जो कुछ गान्धी कहते इससे सत्य मान कर करता,
सत्य-विन्दु चुन चुन कर चातक प्यास हृदय की हरता।
एक दिवस यह मित्र 'डेक' पर 'वैनोक्यूलर' लेकर,
देख रहा था बहुत चाव से नभ के दृश्य मनोहर।
अमित चाव क्या इसे मोह था दूरबीन का भारी;
अत' यन्त्र अति मूल्यवान ही रखता था गुण-धारी।
देख मित्र को व्यस्त मोद मे मोहन बोले आकर—
"खोज रहे हो कहो मिला क्या नभ मे ज्ञान-सुधाकर?
सूक्ष्म यन्त्र से देख बताओ मुझको प्रभु हैं कैसे?
नयन-भोग-तृष्णा के तुम भी दास हुये क्यों ऐसे?
परम ज्योति क्या तुच्छ यन्त्र यह गह सकता है नकली धूप;
विमल प्रेम की खुर्दबीन से लखो सत्य का सुन्दर रूप।
दीन-हीन का सरल तुच्छतम जीवन हमे बिताना,
व्यर्थ शौक हित उचित कहाँ फिर वैभव-रोग जुटाना।

धनी तरुण के योग्य भोग है ऐसे ठाठ अमीरी,
अगर दैन्य को तुम्हे चिढाना तो फिर तजो फकीरी।
क्यों न लजावें हम दरिद्र का कपट-वेप यों भरकर,
हैं किसान के घर पर कितने ऐसे वैनोक्यूलर ?"
काग नहीं तुम राज-हँस हो सफल तुम्हारा शुभ अनुराग,
भाग वढाओ युगल धरा पर विमल तुम्हारा अनुपम त्याग।
गान्धी ने ले खुर्दवीन को फेंका, किया सिन्धु की भेंट,
मिलकर यों मन-मल पशु-दल की प्रतिदिन करते ये आखेट।

५

फिर उन्निससौ छै मे सहसा
जूलू बलवे के पश्चात,
ट्रांसवाल शासन ने अबकी
रचा एक नूतन उत्पात।
भारतीय के पीडन खातिर
बना क्रूर खूनी कानून,
घृणित मलिन अपमानभरा था
इसका सब कुत्सित मजमून।
बाल-वृद्ध नर-नारी सारे
भारतीय इसके अनुसार,
परवाना लेने की खातिर
वाध्य हुये खोकर अधिकार।

बालक अरु महिलाओं को भी
क्रीत दास सम अपने आप ;
देनी पड़ती परवाने पर
अपनी दस उँगली की छाप।

भारतीय को यह परवाना
रखना पडता प्रतिपल साथ ;
अरु शासन का तुच्छ गधा तक
गह सकता था उसके हाथ।

कर सकता था क्षुद्र सिपाही
परवाने के मिष अपमान,
नित्य तलाशी लेकर घर में
कर सकता था दड-विधान।

लख कर ऐसा शब्द-शब्द में
भरा हुआ भीषण अपमान ;
लगा कॉपने गान्धी का भी
धैर्य-मेरु सा हृदय महान।

गान्धी ही क्यों, अफ्रीका मे
भारत-वासी जन प्रत्येक ;
शिहर उठा निज दास्य देखकर
हुआ तनिक नव भावोद्रेक।

बढा यहीं से गान्धीजी के
कन्धों का गुरु गौरव-भार ;
गरबीले शासन के बल का
करना था समुचित प्रतिकार।

मिले भाग्य से नेता मोहन
लाभ न था यह कोई अल्प,
आन-मान के त्राण हेतु था
किया कौम ने शुभ संकल्प।

करी कौम ने कठिन प्रतिज्ञा
साक्षी थे उसके भगवान,
"भले प्राण भी जांय किन्तु हम
नहीं सहेंगे यह अपमान"।

जगह जगह पर भरी सभायें
लगी फैलने नव झङ्कार,
सभी जगह था सर्वानुमति से
हुआ प्रतिज्ञा का स्वीकार।

शान्त मधुर विधि-विनिमय द्वारा
शान्ति हेतु गान्धी सविवेक;
करते थे शासन से प्रतिदिन
मिल-जुल कर भी यत्न अनेक।

पर किस प्रभुता के मानी ने
कब माना सीधा व्यवहार,
अत हुये अब गान्धीजी के
शान्ति-यत्न सारे बेकार।

किया कौम ने आखिर थक कर
सत्याग्रह का यज्ञारंभ;
बिना क्रान्ति संघर्ष जगत में
कभी नहीं झुकता है दंभ।

हुई घोषणा—"कोई हिन्दी
आज न ले परवाना एक;
यों खूनी कानून तोड कर
भारतीय रक्खे निज टेक"।

प्रति सरकारी दफ्तर के ढिग
रहते कौमी पहरेदार,
विविध यन्त्रणा-कष्ट झेल कर
करते थे सविनय प्रतिकार।

कोई भूला-भटका हिन्दी
परवाना लेने के काज—
जाता भी तो, पहरा लखकर
आगे बढ़ते आती लाज।

और सभायें भरतीं प्रति दिन
जिनमें आकर जन-समुदाय;
सुनता था नव जीवन वाले
काव्यों के नूतन अध्याय।

झंकृत करते प्राण शौर्य की
स्वर-लहरी का अभिनव जोश,
नई छटा थी, किन्तु दर्प में
लखता क्यों शासक बदहोश?

उसे ज्ञात क्या, सत्याग्रह है
नवयुग का प्राणद सन्देश,
नवविधि का आदेश शस्त्र यह
मेटे नर के क्लेश अशेष।

मानवता थी काल निशा का
महाशस्त्र यह है अमिताभ ;
पुण्य-प्रभ रूपाभ करे यह
जयी पराजित सब का लाभ ।

पहले तो सैनिक-शासन ने
समझा, "यह बच्चों का खेल,
जरा जेल की तेज हवा से
उडे जोश का तेल-फुलेल" ।

किया गया झट गान्धी बागी
इसीलिये पिजडे मे बन्द ;
पर वह बागी बडा विरागी
सभी जगह उसको आनन्द ।

धन्य त्याग-अनुरागी बागी
धन्य तुम्हारी विप्लव-नीति ,
जयति अग्नि-जीवन की दावत
तेरी धन्य बगावत-रीति ।

हुआ जेल का डर पर पल मे
भारतीय का मीठा खेल,
बढ़े सैकड़ो यात्री आगे
करने को पिजडे की सैल ।

अब समझा शासन ने कुछ कुछ
खेल सही, पर है गभीर ,
कठिन जेल के कष्टो से जब
भिदी न गान्धी की प्राचीर ।

इसीलिये समझौते के मिष
गढ़ा गया जाली मजमून ;
दिया गया आश्वासन मिथ्या—
"रद्द करे खूनी कानून"।
"स्वेच्छा से ऐच्छिक परवाना
भारतीय यदि ले इस बार ;
तो खूनी कानून मिटाकर
तुष्टि उन्हें देगी सरकार"।
गान्धी की सम्मति से यह भी
हुआ कौम को था स्वीकार,
किन्तु विरोधी समझौते के
थे पठान भाई दो चार।
बोले वे—"समझौता ऐसा
है केवल सरकारी जाल ;
गान्धी भी है मिला शत्रु से
इसीलिये बिगड़ा है हाल"।
"सरकारी दफ्तर में गान्धी
जायेगा यदि तज कर लाज,
तो परवाना लेने के पहले
कत्ल करें हम उसको आज"।
पर खतरे से डर कर कोई
पुण्य-पथिक कब तजता राह ?
हो तबाह पर आह न निकले
उसको तो प्रभु-पद की चाह।

गान्धी बोले—"जो परवाना
कल तक हमको रहा हराम ;
आज उसे स्वेच्छा से लेना
महापुण्य का पावन काम"।
"कल तक डर से लेना पड़ता
किन्तु आज वह ऐच्छिक दान,
स्वेच्छा का अभिवादन निर्मल
बढता है करता का मान"।
"क्यों हम मानें ? अथवा भय क्या
यदि यह हो सरकारी जाल ;
सत्याग्रह का शस्त्र प्रखरतम
करे मधुरता से प्रतिपाल"।
यों आखिर परवाना लेने
सर्व प्रथम जब गान्धी वीर,
पहुँचे ही थे दफ्तर के ढिग
घिरे विपद से वीर गभीर।
'गान्धी! वापिस जाओ' बोले
आकर वेही हठी पठान ;
'वर्ना आन-मान के बदले
लें हम आज तुम्हारी जान'।
किन्तु कहाँ जावे ध्रुवतारा ?
वज्र सरीखी उसकी आन,
बढे तनिक जब गान्धी आगे
झपटे उन पर कई पठान।

खाये क्रूर लाठियों द्वारा
पुण्य देह पर अमित प्रहार ;
पड़े भूमि पर हाय मृतक से
मानवता के स्नेहाधार।

किन्तु अभी इस पावन तन को
पाकर धन्य पादरी डोक ;
लगे साधने परिचर्या से
बड़भागी निज दोनों लोक।

गान्धीजी के अपराधी वे
निष्ठुर भोले हठी पठान ;
चकित हुये थे, पाया उनसे
जब था सहज क्षमा का दान।

शासन का विश्वासघात पर
हुआ शीघ्र जनता को स्पष्ट ;
अभी बहुत लड़ना था बाक़ी
और बहुत सहना था कष्ट।

सब परवानों की होली का
किया क़ौम ने अब ऐलान ;
हुये इकट्ठे भारतीय, सब
जुड़ी चौक में सभा महान।

दिया सभा को भाषण द्वारा
गान्धीजी ने सत्य विवेक ;
हुआ अमित उद्रेक तेज का
गही सभी ने निर्भय टेक।

किया कौम ने प्रभु-साक्षी से
सत्याग्रह का कौल करार,
"प्राण जांय पर पार जॉयगे
किया सभी ने व्रत स्वीकार।

जला भभक कर इधर अग्नि मे
परवानों से भरा कटाह,
मिली दाह मिष मानो सब को
क्रान्तिमई इज्जत की राह।

मधुर दृश्य प्रह्लाद भक्त सा
मुसकाता था गान्धी धीर।
परवानों से परवाने थे
जलते क्रान्ति-ज्योति के तीर।

सहसा आगे बढ़कर आया
चकित भीत सा वही पठान
कुछ दिन पहले जो गान्धी की
लेना चाह रहा था जान।

आकर बोला—"क्षमा करो हे
सत्य-ज्योति के पावन चित्र";
क्षमा-सिन्धु गान्धी क्या कहते
रहे न किस दिन उसके मित्र ?

ऐसा अनुपम दृश्य देख कर
हुआ सभा मे जयजयकार,
ओ गान्धी! यह तार प्रेम का
विश्व-शक्ति का अद्भुत सार।

सत्याग्रह के आत्म-मेध का
शुरू हुआ अब मन्त्रोच्चार,
तन-मन-धन की आहुतियों से
करना था जीवन-संस्कार।

व्यक्ति सैकड़ों लगे तोड़ने
स्वेच्छा से खूनी कानून;
दूर-दूर से आकर चढते
कृष्ण-भवन मे नये प्रसून।

सुरावजी शापुरजी जैसे
बढ़े समर मे सच्चे वीर,
वृद्ध सेठ दाउद महमद से
रुस्तमजी से धीर गभीर।

तरुण रायपन जोसिफ जैसे
वैरिष्टर भी पहुँचे जेल,
ट्रान्सवाल नेटल के हिन्दी
खेल रहे थे नूतन खेल।

अरु इमामसाहिब के जैसे
नाजुक तन के जन शौकीन;
बँधे जेल-जीवन मे हँसते
किन्तु हुये बँधकर स्वाधीन।

महल सरीखी चहल पहल में
बने रहे जो सदा नवाब;
वे शराब वैभव की तज कर
पीते थे आटे की राब।

सहा सभी कुछ इन लोगों ने
इन्हे मिला था गान्धी-सूत्र ;
पत्थर फोड़े, कोड़े खाये,
क्या न किया ? धोया मल-मूत्र।

कड़ा परिश्रम घोर यातना
मूर्छित होकर गिरते वीर,
किन्तु न मुह से आह निकलती
कभी न रोकर हुये अधीर।

तरुण तपस्वी नागापन सा
जिसे सहन-पथ तन का त्राण,
वन्दी-गृह मे सडकें खोदी
आखिर किये समर्पित प्राण।

मानो खोदी सड़क स्वर्ग की
हुआ आज तन भी स्वाधीन,
वीर हृदय तो नागापन का
था पहले ही वन्धनहीन।

दी जाती थीं विविध व्यथायें
देश-निकाले जैसे दण्ड,
शान्ति सहित सहते थे सैनिक
शासन का सव दमन प्रचण्ड।

घोर यन्त्रणा सहते रहते
जीवन-सर के ये जलजात,
अत्याचार जुल्म के द्वारा
पीसे जाते थे दिन-रात।

गिरमिटियों पर पड़ा हुआ था
तीन पौंड के कर का भार;
अब तक भी सरकार नहीं थी
उसे हटाने को तय्यार।
वचन हटाने का देकर भी
किया उसे शासन ने भंग;
दंग हुये सब भारत-वासी
लखकर ऐसा बदला ढग।
रुका नही पर इतने ही से
दंभी शासन का अभिमान,
भारतीय महिलाओ का भी
करना था उसको अपमान।
भारतीय पद्धति से जो भी
अफ्रीका मे हुये विवाह,
उन्हें गैर कानूनी करके
दिया हिन्द को नूतन दाह।
ढहा हमारी इज्जत पर था
अबकी तो यह काला शैल,
सावित्री सी आर्य-नारियां
नये नियम से हुईं रखैल।
कैसे सहता गान्धी इसको
कैसे सहता कोई और?
कैसे सहतीं बहनें वधुये
था प्रहार यह घोर-कठोर?

टालस्टाय फार्म में जितनी
महिलाओं का था अधिवास ;
उन सबको तो कष्ट-सहन का
हुआ बहुत कुछ था अभ्यास।

क्या आश्चर्य बढीं वे आगे
प्राणाधिक था उनको मान,
सत्याग्रह के रण-विधान में
मिला आज उनको आह्वान।

फिर फिनिक्स आश्रम की बहनें
कर पर धर प्राणों का दान,
प्रस्तुत थीं गाने को रण में
नव विहान का नूतन गान।

वे सुकुमार सुमन की कलियां
जगी ज्योति-किरणोंसी आज,
चकित मुदित गान्धी ने देखा
प्रभा-विभव का अभिनव साज।

किन्तु जहाँ गान्धी के द्वारा
हुईं निमन्त्रित बहनें अन्य,
क्यों न वहाँ आगे बढ आती
कस्तूरी सी महिला-गण्य।

वह महीयसी बोली पति से—
"क्यों न करो मुझपर विश्वास ?
जो तुम सबका वह पथ मेरा,
मुझे कठिन क्या कारावास"?

गान्धी बोले, "जान रहा हूँ
तुम्हें मान्य मेरा आदेश;
किन्तु जेल में इष्ट न मुझको
जो तुम पर-वश करो प्रवेश"।

"वन्दीगृह या न्यायालय में
जाकर अगर तुम्हारे पैर;
कांप उठें कष्टों के सम्मुख
कहो कहाँ फिर मेरी खैर"?

"कैसे खड़ा रहूँ मै जग में
कहां रहेगा उन्नत शीष?
करो तुम्हें जो प्रिय हो, मै भी
मौन भाव से दूँ आशीष"।

कहा देवि ने, "सत्याग्रह से
लौटूं अगर मान कर हार,
तो आजीवन इस अधमा का
तुम न कभी करना स्वीकार"।

कहा निठुर ने—"पुनः सोचलो
तुमको मेरा विदित स्वभाव;
रख न सकूंगा मैं फिर तुमको,
नहीं सत्य में उचित दुराव"।

"मत रखना तज देना" बोली,
मानो सूर्य-प्रभा साकार;
"तुम सब जिन कष्टों को झेलो
मुझको ही क्या उनका भार?

रुकी न सीता गई विपिन में
समझाना था व्यर्थ प्रयास,
त्रास न माना कस्तूरी ने
किया व्रता ने कारा-वास।
गईं और भी बहन बहुत सी
शिशुओं तकको लेकर गोद,
कडा परिश्रम रद्दी भोजन
किन्तु मनाया सबने मोद।
धन्य वालियामा सी श्यामा
अभिरामा गौरव की मूर्त्ति,
बलि प्राणों की पूर्णाहुति से
की थी मान-यज्ञ की पूर्त्ति।
रुग्ण वालियामा से गान्धी
बोले—"तुम जो अपने आप—
गई जेल मे, क्या न तुम्हें अब
होता इसका पश्चात्ताप?
वीर-प्रसूता बोली हँसकर—
"मिले जन्म जो मरकर और,
करूँ समर्पित उसे देश पर
धन्य भाग्य-निशि का यह भोर"।
इन बहनों के शौर्य त्याग की
मान-कथा फैली दिन-रात,
अफ्रीका क्या भारत तक थी
कीर्त्ति-गन्ध फैली अवदात।

खानों के मजदूरों में भी
उमड़ पड़ा अद्भुत उत्साह;
कष्ट अपरिमित थे पर उनको
अब तक नहीं मिली थी राह।

न्यूकैसिल के गिरमिटियों ने
गान्धी सूत्र गहा तत्काल;
श्रमिक सहस्रों आये रण में
करके खानों की हड़ताल।

गान्धी बोले—'धन्य सैनिको,
हटा न लेना पीछे पैर;
सत्याग्रह के दिव्य समर में
नहीं किसी से होता वैर"।

"सब कुछ सहना गौरव-पथ पर
यही हमारा प्रिय हथियार,
वार व्यर्थ हों प्रतिपक्षी के
कूच करो होकर तय्यार"।

"करें आज हम हिजरत ऐसी
विजय बिना क्या लौटें देश?
चलो भद्र-विद्रोह मार्ग से
ट्रांसवाल में करो प्रवेश"।

शीघ्र सहस्रों मजदूरों ने
गान्धी-रण में किया प्रयाण;
प्राण जांय तो जांय, मानका
करना था मिल करके त्राण।

आगे गान्धी पीछे सैनिक
नर-नारी अरु बालक-वृद्ध,
चला बुद्ध के युद्ध-मार्ग से
आज नया सेनापति सिद्ध।

अगणित पथ-कष्टो को सहता
चलता था यह जन-समुदाय;
आज महाभारत में जग के
जुडा एक नूतन अध्याय।

खतरे की छाती पर चढने
चली धन्य गान्धी की फौज,
फैल रही थी लहर ओज की
बढते थे सैनिक हर रोज।

भरी भीड मे भय भरने को
किया राज्य ने प्रथम प्रहार;
गिरफ्तार करते थे पथ मे
गान्धीजी को बारबार।

हुआ शुरू मे क्रुद्ध तनिक जब
तरुण सैनिको का आवेश;
समझाया पोलक ने आकर
सत्याग्रह का मन्त्रादेश।

पोलक कैलिनवक से साथी
अरु अनुगामी कई हजार,
ट्रासवाल मे घुस कर सबने
पार किया बन्दी-गृह-द्वार।

अब तो कारागृह के अन्दर
उमड़ पड़ी थी मानव-बाढ़ ;
था प्रगाढ़ गान्धी-घन बरसा
पाकर सत्याग्रह-आषाढ़ ।

हरबतसिंह सा महावृद्ध जन
करने को प्राणों का दान ;
बाक्सरेस्ट में बन्दी होकर
बढ़ा लेगया निज सम्मान ।

तजे जेल मे प्राण वृद्ध ने
खेल गया जीवन का खेल ;
कुल की बेल बढ़ाने को झट
जीवन-रस-घट गया उँडेल ।

गिरमिटिया जन जब खानों से
लगे निकलने बेशुम्मार ;
शासन ने यह वेग देखकर
रचा एक नूतन प्रतिकार ।

खानों ही को जेल बनाकर
करते थे श्रमिकों को बन्द ;
किन्तु मन्द साहस क्यों होता
सत्याग्रह है परमानन्द ?

कड़ी परीक्षा थी पर अबकी
बहुत बढ़ा था अत्याचार ;
इन खानों का सारा सोना
चढ़ा कसौटी पर इस बार ।

श्रमिक-हेम वह दंडानल में
खूब तपाया जाता नित्य;
कोडे ठोकर या डडों से
खाल उडाते गोरे भृत्य।
और निहत्थी शान्त भीड, पर
करके गोली की बौछार;
बाल-वृद्ध क्या महिलायें तक
हुई दंभ की विविध शिकार।
किन्तु खरे सोने से तपकर
शुद्ध-प्रमाणित थे सब वीर,
पीर भयङ्कर सब सहते थे
धन्य प्रवासी रक-अमीर।
शासन-सत्ता लगी हारने
देखा जब इतना बलिदान।
जगह जेल मे रही न बाकी
थकित हुआ था दड-विधान।
भारत मे भी उधर गोखले
करते थे दिन-रात प्रचार;
अखिल हिन्द का हृदय हिला था
सुनकर बढता अत्याचार।
लाट हार्डिज जैसो ने भी
किया हिन्द मे कडा विरोध,
कौन हृदय रुक सकता, पाकर
उन अगणित कष्टो का बोध ?

रुग्ण गोखले बहुत व्यथित थे
करने को कोई प्रतिकार;
दीनबन्धु एण्ड्रूज पियर्सन
मिले मित्र उनको अविकार।
ये दोनों अफ्रीका पहुँचे
लिये गोखले का सन्देश,
दोनों पक्षों की कटुता को
करना था मिलकर निश्शेष।
सुलझ गया आखिर सब किस्सा
बैठा जांच-कमीसन एक;
मुक्त हुये सब गान्धी-सैनिक
रही सत्य की शोभा-टेक।
तीन पौंड कर गिरमिटियों का
रद्द हुआ खूनी कानून;
हुये विवाह हिन्दी सब जायज
बदल गया सारा मजमून।
स्मट्स सरीखा सैनिक हारा
लखकर सत्याग्रह का तेज,
किन्तु कठिन यह असि-धारा-पथ
है न सरल फूलों की सेज।
उन्हीं दिनों जब समझौते की
चर्चा में थे गान्धी व्यस्त;
किया रेल के गोरों ने था
बहुत अधिक शासन को त्रस्त।

करी युनियन के गोरों ने
मिल-जुल कर व्यापक हड़ताल,
गान्धी से कहलाया उनने—
'लो हम मिलकर खेलें चाल'।
पर शासन को महज सताना
है न कभी सत्याग्रह इष्ट,
भले रुष्ट हो गोरे, गान्धी
क्यों करते निज रण-विधि नष्ट?
इसीलिये तो कहा स्मट्स ने—
"अद्भुत यह गान्धी व्यापार,
हार गये हम इन्हें सताकर
तजा न इनने निज व्यवहार"।
"कोई इन्हें कष्ट दे कितना
और कहाँ तक हो पाषाण?
भले प्राण पर बने, किन्तु ये
करें शत्रु का भी कल्याण'।
इसी तरह के संस्मरणों की
गाथा है गान्धी का युद्ध,
कैसे हो अवरुद्ध मार्ग जब
रहे पथिक दृढ़ युद्ध-प्रबुद्ध।
है प्रकाश का दिव्य 'बम्ब यह
सत्याग्रह का शुभ हथियार,
धार अपरिमित पैनी इसकी
है यह महा-शक्ति का सार।

निन्यानवे

महा सूक्ष्म यह अणु-विस्फोटक
गलें वज्र से हृदय-निवेश;
प्रखर शान्ति का भीषण वाहक
प्रभा-चक्र का मन्त्रादेश।

६

कभी न छोड़ा प्रभु-पथ इनने घर या बाहर घरके;
सदा सत्य का साथ निबाहा अमित कष्ट सह करके।
आश्रम नहीं अदालत में भी नहीं सत्य से डोले,
करी वकालत वर्षों तक पर मिथ्या कभी न बोले।
कहें लोग सब बिना झूठ के चलती नहीं वकालत;
पर मोहन ने सत्य-गिरा से मोही सदा अदालत।
लिये हजारों 'केस' किन्तु ये नही कभी भी हारे,
बिल्कुल बिगड़े हुये मुकदमे प्रभु ने सदा सँवारे।
किये करारे वार शत्रु ने पर न कभी ये भागे,
सखा सत्य ने ऐन वक्त पर ढाल लगाई आगे।
निज केसों की त्रुटि कमज़ोरी सरल भाव से कहकर,
फिर भी जीता सदा दिवाना शरण सत्य की गहकर।
निश्चित देख पराजय सम्मुख फिर भी खड़ा रहा यह,
स्पष्ट हार का खतरा लेकर सत पर अड़ा रहा यह।
कई बार तो इन वकील ने भीषण अवसर पाये;
पर निराश होकर भी इनने सत्त हित दाँव लगाये।

एक सुहृद व्यापारी का था बडा मुकदमा भारी;
हुआ अचभा उसमें प्रभु ने बिगडी बात सँभारी।
उसके कहीं बही-खाते मे भारी भूल हुई थी,
कुछ नावे की रकम जमा मे भ्रम-वश चली गई थी।
मोहन ने दी सम्मति हम यह भूल स्वय स्वीकारे,
स्वय अदालत को बतला कर अपना दोष सुधारें।
इसी केस मे एक और भी था वकील ऊँचा प्रख्यात,
जँची न उसको किसी भाति भी मोहन की यह सीधी बात।
बोला वह—"यह आत्म-घात है सोलह आने पागलपन,
समझो मुझको विलग केस से बहस करेंगे यह मोहन।
अपनी निश्चित निर्बलता यो दुश्मन को दिखलाना,
राज-नीति मे उचित नहीं यो घर मे चोर घुसाना।
पटु-वाणी की युद्ध-चातुरी चलती न्यायालय मे,
धर्म-कर्म ही करना हो तो जाओ देवालय मे"।
मोहन बोले—"राजनीति तो मैंने नहीं गुनी है,
धर्म-युद्ध की चर्चा तो पर सबने सदा सुनी है"।
सरल सुहृद वह इन दोनो को ताक रहा था भय से,
आलोड़ित था हृदय व्यथित का धर्म और संशय से।
डरते डरते भी पर उसने सत्य-मार्ग सन्माना,
आखिर उसका सलाहगीर था मोहन बहुत पुराना।
अलग हुआ पर केस छोडकर वह विश्रुत बैरिस्टर,
क्यो वह अपना सुयश गँवाता अन्ध सत्य मे फँसकर।

मनमें प्रभु-चिन्तन कर मोहन लड़ने गये अकेले;
कपित डर से धर्म-युद्ध मे शस्त्र दिखा कर खेले।
एक वार तो न्यायालय भी चिढ़ा, क्रुद्ध हो चौंका;
पर मोहन की सरस गिरा ने सत्य-तेज से रोका।
सुन्दर वाणी, मधुर युक्तियॉ स्वय सत्य जव गावे गीत;
वुद्धि-वाद की जगती मे भी सभव वने धर्म की जीत।
सेठ पारसी रुस्तमजी थे निकट मित्र मोहन के;
एक वार वे अति उलझन मे फँसे लोभ-व श धन के।
भारत से आयात अमित ये करते माल मँगाते,
अरु जाली वीजक से प्राय तट-कर रहे वचाते।
साख जमी थी यश फैला था थे नामी व्यापारी,
इन पर था विश्वास सदा से कर-विभाग का भारी।
पर न सदा थिर रहते छिप कर मदिरा पारद चोरी;
एक दिवस मृग-मद-स रभ से प्रकटित हो वरजोरी।
चुगी वाले दफ्तर ने जव चोरी पकडी इनकी;
साश्रु नयन इन दुखित सेठ ने सम्मति ली मोहन की।
मोहन वोले—'मेरी तो है शैली वही पुरानी;
दोप करो स्वीकार, भाग्य को करने दो मनमानी।
पाप तथा लज्जा तो तव है जव दुष्कर्म करें हम;
स्वीकृति तो है।दोप-निवारण फिर क्यों व्यर्थ डरें हम"।
कहा सेठ ने—"स्वीकृति से तो पड़े जेल मे जाना,
यों सव सुयश गँवाने से तो अच्छा है मर जाना।

शुभ्र साख मर्यादा कुल की कैसे कहो गँवाऊँ ?
मुझे उबारो गान्धी भाई जन्म जन्म गुण गाऊँ" ?
"अगर जेल जाना भी होवे तो भी क्यो पछताना ?
पाप मिटे प्रायश्चित होवे क्यो फिर व्यर्थ लजाना ?
तथा जेल जाना ही होवे यह क्यो तुमने माना ?
प्रभु-करुणा से शुभ फल पाना सँभव है बच जाना।
साहस धारो करो उचित नित प्रभु-पद मे करके विश्वास,
घट-घट मे है वास नाथ का करे दास की पूरी आस"।
परामर्श गान्धी का दृढ हो रुस्तमजी ने माना
आखिर मोहन-मण्डल ही का था सदस्य मरदाना।
चुगी-अफसर से मोहन ने मिलकर हाल बताया,
स्नेह भरे शब्दो मे उसको विविध भाति समझाया।
वही चौपडे सभी दिखाये सब चोरी स्वीकारी,
आखिर विधु से चन्द्रकान्त सम द्रवित हुआ अधिकारी।
सत्य-सूर्य से सभी रग के हृदय-कज सब सरसे,
पुण्डरीक अरविन्द खिले सब जैसे उत्पल विकसे।
बचे सेठ रुस्तमजी केवल देकर तब जुरमाना,
इस कृतज्ञ ने प्रिय गान्धी का आजीवन गुण माना।
इस घटना का चित्र मँढाकर बैठक मे टँकवाया,
कुल-थाती सा सदुपदेश का सुन्दर हीरा पाया।
धन्य कृती मोहन ने छूकर किये कलुप भी उजले,
इनका पाणि परश कर कलि मल विमल पुण्य मे बदले।

पढ़ा काव्य मे होता है, पर ज्ञात न था है कैसा ?
मोहन ! तुमने हमे बताया पारस होता ऐसा।
राघव के पद पूत परसकर तरी अहिल्या नारी;
होता था विश्वास न हमको भ्रान्त हृदय था भारी।
यो तिरते है पाहन जल मे अब- यह हमने जाना,
कैसे कलि-मल बदल पुण्य हो आज यहाँ पहिचाना।
कहाँ तैल सिकता मे निकले कहाँ तिमिर मे छिपा प्रकाश ?
पुण्यवान हे ! किन्तु तुम्हीं से मिला हमे अब आशाभास।
अफ्रीका-मिष तुम्हे राम ने किया वहाँ वन-वासी,
लगभग चौदह वर्ष वही तुम विरमे योगाभ्यासी।
ब्रह्मचर्य-व्रत धर राघव ने कन्द मूल फल खाये,
सत्य-हेतु प्रभु वचन-बद्ध हो परवश वन मे आये।
आज राम ने तुम्हे पठाया वन मे दिया बसेरा,
कौन कहे स्वेच्छा से, तू तो, आया प्रभु का प्रेरा।
माँ रंभा ने ईश राम का तुमको नाम बताया;
पात्र जान कर प्रभु ने तुमको भली भांति अपनाया।
सत्य-धाम ने प्रेम-चाप से सत्कृत-तीर चलाया,
बाण-फलक से प्रभु ने तुमको अपना पथ दिखलाया।
मन-मन्दिर में प्रेम-दीप धर पूजा प्रभु को पाकर;
ज्ञान-धनुर्धर सत्य-साँवरे राघव बैठे आकर।
राम-दूत गान्धी ! जब तुमने प्रेम-मान-पण रोपा;
प्रभु ने तुमको सत्य-प्रेम का निखिल भेद तब सौंपा।

विश्रुत विरुद बढ़ाने का निज सब रहस्य बतलाया,
राघव सा प्रभु पाकर तुमने मनवाञ्छित फल पाया।
बोले प्रभु—'मुझ जैसे मेरे जाओ यत्न रचाओ,
मुझसे अधिक विपुल मनहर वर विमल सुयश-फल पाओ।
जूझो तमसावृत-रावण से मुझे बहुत तुम प्यारे,
सदा रहूँ मै साथ तुम्हारे धनुप-बाण कर धारे।
यों कह प्रभु ने भाग्य तुम्हारे अपने हाथ सँवारे,
विघ्न-दैत्य जब खुद प्रभु टारे तुमको कौन प्रचारे?
और तुम्हारे मिप हे मोहन! पाया हमने भाग्य-विकास,
सच पूछो तो हम सब खातिर प्रभु से तुमको मिला प्रकाश।
अगणित रज-कण सिन्धु-बिन्दु अरु नील गगन के तारे,
कौन गिने सख्या निर्धारे गणपति वाणी हारे?
उस विराट व्यापक की बोलो सीमा कौन बतावे?
परिधि व्योम के महा व्यास की किसका चित्र दिखावे?
अम्बु अपरिमित है अम्बुधि मे क्या परिमाण लगावें?
धन्य भाग्य जो रस-सागर से निज गागर भर लावें।
गागर के उस पूत पाथ को देखें और दिखावें,
दृग-फल पावें सुख सरसावें भव-भय से तर जावें।
इस छोटीसी लुटिया मे जो हमको मिले नमूना,
फिर रस का व्यापार हमारा दिन दिन विकसे दूना।
अमरित निधि थोडी भी पाकर बनें सुधाकर हम तो,
आखिर लख पीयूप हमारा भाग जाय तम-यम तो।

कहे फूल कर हम भी जग से–'मधु-रस होता ऐसा,
तुम क्या जानो पूछो हमसे सुधा-सिन्धु है कैसा?
अष्ट-याम के एक दिवस मे लव निमेष पल जितने,
सदा बिताये व्यग्र कार्य मे मोहन ने सब उतने।
प्रतिपल मानो चारु चित्र है अभिनव मधुर चरित का,
पुण्य-पुञ्ज मोहन है मानो सूरज तिमिर-दुरित का।
सविता तेरी प्रति कृति-कविता पुण्य किरणसी चमके,
समय-सिन्धु की लहर लहर मे कान्ति कनक सी दमके।
पल पल मे तुम व्यास अनोखे नूतन काव्य करो तय्यार,
कवि। अपार ससार तुम्हारा क्यों न गिरा फिर माने हार?
अफ्रीका मे इस दानी ने दिया दिव्य सुन्दर उपहार,
जिसको पाकर मानवता ने देखा नव-युग का शृङ्गार।
महामहिम की महिमा तो जग दिन-दिन दूनी जाने,
गुह्य मर्म तो आने वाली सन्ततियां पहिचानें।
महा ज्ञान-मुक्ता का अञ्जन लाया यह भ्रम-भञ्जन;
पारिजात से इत्र प्रेम का लाया जन-मन-रञ्जन।
प्रेम शील संस्कृति का सुन्दर तरुवर यहाँ लगाया,
दीन प्रवासी पथिकों ने भी पाई पावन छाया।
बुला रही है भारत माता उठ अब गान्धी भाई।
एफ्रीका में तो तुमने है प्रचुर गन्ध फैलाई।
बुला रहे हैं तुम्हें गोखले जाओ मोहन जाओ,
ओ वन-वासी। मातृभूमि मे जा निज मार्ग दिखाओ।

शुद्ध बुद्ध तुम रण-रहित अब साची से तन-मन मे,
विरमो विजिन विपिन मे अथवा विहरो राज-भवन मे।
रस-रुचि आज तुम्हारी दासी पुण्यारण्य निवासी।
जागरूक तुम द्रष्टा हो अब रहे न हो अभ्यासी।
तुच्छ मोह-बन्धन अब तुमको मार-जयी क्या बांधे?
मुक्त विरागी ऋद्धि सिद्धियाँ खडी तुम्हें आराधें।
देख रहा है दर्पित भय से दानव-पति बेचारा,
अरे अहिंसक! तू मुसकाता देख दीन को हारा।
बाँट बाँट मुसक्यान-मिठाई तैने ठगी भलाई,
प्रेम-जाल का उत्तरदाई तू ही गान्धी भाई।
सुगत बुद्ध को मातृ-भूमि मे जाने का पूरा अधिकार,
वानप्रस्थ से हुये आज तुम रसजित सन्यासी अविकार।
रोक रहे है सुहृद यहाँ सब उचित रोकना इनका;
कैसे छुटे चटोरे मन का स्वाद दुग्ध मक्खन का?
मीठी मीठी दाख चाख कर क्यों न जीभ ललचावे?
किसे न शहद सुहावे बोलो किसे रसाल न भावे?
सुनो प्रवासी सखा-बन्धु-गण तुम हो भारत-वासी,
मातृ-धरा का प्रेम न भूलो बनो न स्वार्थ-विलासी।
माना सबके हृदयासन पर सोहे इसकी प्रतिमा,
आभा सी अणु अणु मे छाई प्रिय मोहन की महिमा।
सच है सुमन ठगे सब इसने बोला गूथू माला;
माली बनकर आया कपटी इत्र बनानेवाला।

अफ्रीका के वन में सहसा आया कुशल अहेरी;
सबके मन-मृग जीवित वांधे फेंक प्रेम की डोरी।
सबका मन-धन लेकर अब यह जाता है व्यापारी;
व्यापारी का रूप बनाकर ठगता फिरे जुआरी।
दीन-हीन का वेष बाहिरी भीतर कोष भरा है,
इसकी उर-कन्था में जाने कितना माल दुरा है।
कैसे निपट अनाडीपन का अभिनय करे खिलाड़ी,
हृदय कुसुम सब तोड़ वाटिका इसने यहाँ उजाडी।
वृद्ध-तरुण सब मोहे जो थे स्वतन्त्रता-मतवाले;
इस 'जेलर' ने उनके दिल सब वन्दी-गृह मे डाले।
सत्याग्रह का नाम बताकर पागलपन सिखलाया,
घरभेदी ने कारागृह का उल्टा मार्ग दिखाया।
कुछ भी हो पर भवन-भवन मे खिची यहाँ इसकी तसवीर,
विरह-पीर कब बुझे भले नित दृग जल सींचें हृदय-उशीर।
सुभट वीर गभीर सिपाही है सेनापति यह रण-धीर,
भारतीय-हित-रक्षा-हित है इसकी देह दुर्ग-प्राचीर।
भारत-लक्ष्मी वन्दी गृह मे आज पराई चेरी;
खोज रही है त्राता को अब नव आशा की प्रेरी।
जाने दो इस व्यापारी को यही उचित अधिकारी,
रह न सकेगी बहुत दिनों तक रमा वैश्य से न्यारी।
भुवन-भावना-भाव भरा सब भव का गान्धी भाई;
नभ-गगा सी भव्य भावना इसने यहाँ बहाई।

रुक न सकेगा एक जगह पर स्थिर हो दिव्य बटोही,
पर-हित-राता राहगीर वह पुण्य-अश्व-आरोही।
बड़े भाग्य से नर ने ऐसा मार्ग-प्रदर्शक पाया,
मार्ग-चिह्न यह सरल मुक्ति की सड़क चाँकने आया।
प्रभु-पुर के सीधे सम पथ पर चिह्न आँकता जावे;
'एञ्जीनियर' पठाया प्रभु ने सुन्दर मार्ग बनावे।
एफ्रीका से चला पथिकवर साथ चली कस्तूरी,
'कैलनबक' भी रहे साथ में हुई त्रिवेणी पूरी।
किया इन्होंने लन्दन होकर निश्चित भारत जाना,
वहीं गोखले था गान्धी का अभिभावक मस्ताना।
सखा हितैषी शिष्य बन्धुगण वे अफ्रीका वाले;
विवश सभी ने अपने अपने हृदय कठिन कर डाले।
युग भर से इस प्रिय लुहार की चली प्रेम की टाँकी,
हृदय हुये थे चलनी सबके कुछ न रहा था बाकी।
हृदय-सुमन-मकरन्द लूटकर चला मधुप यह बाहर आज,
रसिक-राज ये तुझे न भूले लेता जा नयनों के साज।
दृग डलिया में भाव-सुमन भर मन-माली देते उपहार,
लेले इनकी भेंट पाहुने! मानेंगे तेरा उपकार।
रसिक राज ऋतु राज पधारे कुसुमाभरण सजाके,
प्रकृति मुग्ध हो स्वागत करती पाटल सरिस लजाके।
पर तेरा तो आते जाते मोहन! मंगल धारी,
स्वागत-साज सजावे राना! सुहृद-हृदय-फुलवारी।

जब तू आवे नयन नाच कर अमित मोद से रोवें;
जब जावे दृग-हृदय उमड कर तेरा पद-पथ धोवे।
ये गिरमिटिये सखा तुम्हारे कहते—"प्यारे राजा;
हमे छोड़कर जाता है तू घाव लगाकर ताजा।
सहते हैं हम यहाँ दासता क्यो न वियोग सहेगे;
भाग्यहीन हैं विधना रक्खे जैसे क्यो न रहेगे?
किये तुम्हीं ने मन स्वतन्त्र, वे तेरा साथ गहेगे;
तथा नयन ये मन-मणि खोकर फणि से विकल रहेंगे"।
ये व्यापारी अरब पारसी मदरासी गुजराती;
इनकी रसना थके न तेरे निशि-दिन मगल गाती।
मिला धर्म तू इन्हे अर्थ मे घृत सा पावन पय में;
उभय लोक परलोक बने, तव विजयभरे नव नय मे।
अरे समन्वित शहद-सुधा से तुमको भूले कैसे?
कैसे धीरज धरे हृदय मे जाता लख कर ऐसे?
तुमसे इनने नेम मान का तथा प्रेम है पाया,
तन-धन-हृदय समय निज तुमने पथ मे स्वय बिछाया।
इनको तुमसा 'अपना' अन्य न भव मे और मिलेगा;
इनके अपने बिछुड़ रहा तू दिल फिर क्यों न जलेगा?
मातृभूमि की खातिर पर ये सहें तुम्हारा परम वियोग;
भूल न सकते तुमभी, इनमें भावभरे हैं भोगे भोग।
हुई अनेको विदा-सभायें प्रेम भरे मृदु वन्दन,
जैसे मोहन हैं वैसा ही हुआ यहाँ अभिनन्दन।

नयनों ने तो मोती गूथे आर्द्र गिरा ने गजरे,
कमल-करों ने माला गूथी कुसुम प्रेम के बिखरे।
कई दिनो तक विदा सभा मिष सावन-रस सा सरसा,
जाते जाते प्रेम-मेघ यह बहुत शील मिष बरसा।
गूथ गूथ कर भाव, हार-मिष प्यारों ने पहिनाये,
या अभिनन्दन पत्रों के मिष मन के चाव दिखाये।
स्नेह-भेंट उपहारों के मिष सौंपी विरह-निसानी,
माणिक ले मन-मजूषा से वार रही थी वानी।
यहाँ तपस्या करने आया सीधा गान्धी भाई,
चला महात्मा शुद्ध बुद्ध सा भारत को सुखदाई।
सत्य-तपोवन से आश्रम मे कुटी प्रेम की बाँधी,
ट्रांसवाल नैटल मे सचमुच तपने आया गान्धी।
लता-अहिसा तपोभूमि मे यहीं सुरस पी विकसी,
धन्य देश यह गली गली मे सौरभ उसकी सरसी।
इस सुर-वन की कल्प-लता के सत्याग्रह फल आया,
यही सुधाफल भरतभूमि ने यति गान्धी से पाया।
तपा वहाँ पर साधक चहुँ दिशि धूनी कई लगाई,
अरे सिद्ध। सञ्जीवन लेकर चला कहाँ अब भाई।
सुधि की धूनी रही यहाँ तो शोले रहे विरह के,
चला मतलबी टिका न पल भर सिद्धि सलोनी गह के।

मति-झोली मे सत्याग्रह-फल हृदय कमण्डल मे रस-प्रेम,
तन-कन्था में छिपे अहिसा सदाचार शम दम का नेम।

७

व्रत-दृढता की पहन खडाऊँ एक शील-पट का शृङ्गार ;
सयम का कौपीन सजाये मधुर गिरा की शक्ति अपार।
सुधा-साज ले पुण्य-पथ पर चला जारहा है यतिराज ;
भव-सागर में देखो लोगो प्रकटा प्रभु का दिव्य जहाज।
इसके पद-चिह्नां पर वाणी चढ़ा रही नव रस के फूल ;
आज नयन-धन सफल गिराके पाकर पद-चिह्नों की धूल।
शासक श्वेत-हृदय-हिम को भी द्रवित तनिक करके दिन-नाथ;
श्याम-हृदय-भय-ओस शोष कर चला छोड़ निज गौरव-गाथ।
देश मान का गान सुनाकर दे दासो को गौरव-दान ;
नव-जीवन की तान छेड़कर भरा प्राण मे अरुण विहान।
वन्धु प्रवासी पछी दिन-मणि ! कभी न भूले तेरी याद ;
पाया तुमसे इस प्रिय कुल ने नये प्रात का नया प्रसाद।
तव उर-विनय-उपा-पातुर के मुग्ध नृत्य के लज्जित स्वाद ;
याद रहेगे अरु ये सहृदय देगे प्रतिदिन उसकी दाद।
चमको कुल-धर ! मातृ-अजिर के नभ मे लेकर नया प्रकाश ;
यों प्रवास यह पुण्य वनेगा जिस दिन फले हमारी आश।
अभी पहुँच पाये थे लन्दन अफ्रीका से मोहन-दास,
घिरा विश्व मे महा युद्ध मिष क्रूर रुद्र का भीषण हास।
महा काल ने प्रलयानल में शुरू किया था मानव-मेध,
अगणित नर-पशु-वलि लाते थे दानव लगा लगाकर सेंध।

ओ प्रलयङ्कर। शुरू किया क्यों सहसा ऐसा ताण्डव नृत्य ?
लगे नाचने तुम्हें देखकर तेरे दैत्य-सखा-गण-भृत्य।
तव नर्त्तन से खसे लोक सब ढुरक बहे मदिरा की धार,
मोह-मत्त नर यों ही रहता दे न उसे मादकता-सार।
गर्व-सुरा पीकर नर कायर पाप युद्ध का सजता साज,
कपट-वीर-सज्जा मे सजते आज न आवे उसको लाज।
जल मे थल मे और गगन मे छिप छिप कर करता है वार,
निर्बल दल पर करे व्याध सा गोली की भीपण बौछार।
काँप रही है विजय-वधूटी देख शौर्य का यह विद्रूप,
री रण-शोभे। अब न रहे वे प्रिय रण-दूलह भूप अनूप।
वीर वेप मे भरे आज ये शूर नहीं, कायर मद-चूर,
व्याध-बुद्धि के कूट-नीतिमय कलुप-गेन्द विस्फोटक क्रूर।
देवि कराली काली तू भी ले न सके ऐसी कटु भेंट,
युद्ध नहीं यह नर-हत्या है निर्बल की निर्दय आखेट।
ओ प्रलयङ्कर शङ्कर। तू भी लखकर यह रण-अत्याचार,
अरे भयङ्कर इन मुण्डों से कर न सके भैरव-श्रृङ्गार।
दीन-मुण्ड ये वायु खींच कर करें करुण क्रन्दन के गान,
इन नर-मुण्डो की माला से विसर जाय लय ताण्डव-तान।
रुद्र सुनी हैं अब तक तुमने विपधर उरगों की फुफकार;
सह न सकोगे इन निबलों की उर पर करुणा भरी पुकार।
बर्वरता का अट्टहास यह सुनकर मोहन स्नेहाधार,
रसागार तय्यार हुये ये ले निज प्राणो का उपहार।

भरतभूमि के नागर-मानी थे गुण-सागर मोहन दास,
इसी समर मे क्यो न कहो फिर खिलता उनका स्नेह-प्रकाश ?
आहत जन की परिचर्या का लिया यहाँ भी सेवा-भार,
करते श्रम-उपचार प्रेम से बहुत अधिक मोहन अविकार।
कई मित्र बोले यह शैली भारतीय-हित के प्रतिकूल,
ब्रिटिश-युद्ध मे मदद करे हम है यह राजनीति की भूल।
प्रभु प्रदत्त इस अवसर से हम लाभ उठाकर पूरे आश,
उचित यही अभिलाष दास की त्रास हरे खोले निज पाश।
पर गान्धी को रुची न तिलभर राज-नोति की ऐसी राय;
क्यों भाता इस गौरव-गिरि को कायर-पन का क्रूर उपाय ?
व्रती अहिंसक अमर शौर्य-धर उदित जहाँ होवे अमिताभ,
वीर-भूमि भारत क्यो खोजे विपद पराई मे निज लाभ ?
कर न सके पर फिरभी मोहन अधिक दिवस सेवा-उपचार,
श्रम था अविरल श्रान्ति-भार को सह न सकी काया इसवार।
पिछले व्रत-उपवासों से अब निर्बल बहुत हुई थी देह;
किया स्नेह-वश अमित परिश्रम हुये रोग-वश ये गुण-गेह।
यत्नशील थे सुहृद वैद्य सब घटा न फिरभी इनका रोग;
सफल नही होते थे कोई मित्रों के उपचारक योग।
दुग्ध दाल आमिष बल-कारक पेय न पीते थे गुण-धाम,
इन सबको अफ्रीका मे थे त्याग चुके मोहन निष्काम।
प्राणाधिक प्रिय पुत्र प्रिया के जिस दिन थे जोखिम में प्राण;
उस दिन भी जब इस मानी ने किया आन का पूरा त्राण।

निज तन-पर थी विपद, इसे था प्रश्न सरलतम यह तो आज,
इस विदेह के भाव-साज से क्यो न रहे कविता की लाज ?
त्यक्त पेय तो छुये न इसने पर सुहृदो का आग्रह मान,
भारत-नभ के मगल-विधु ने मातृभूमि को किया प्रयाण।
प्राण-सखा कैलनवक भारत जा न सका मोहन के सग,
युद्ध-काल था, वह जर्मन था, हुआ नियतिवश यह यति-भग।
और गोखले चले गये थे मोहन से पहले निज देश;
चले आज गान्धी भी भारत लेकर आरत-चल सन्देश।
ओ भावी कप्तान। हमारे ध्वजा तिरंगी लेकर आज;
जा भारत को शीघ्र यशस्वी खेकर गौरव-पुण्य-जहाज।
अत्यावश्यक गमन तुम्हारा सकुशल जा प्यारे मल्लाह,
जा प्रवाह मे राह दिखा तू विना ताज के सच्चे शाह।
भेद दासता कपट डाह मे सारा भारत हुआ तवाह;
आह भरा है दाह दीन का जा तू लेकर सुधा-प्रवाह।

तन-मन कन्था-झोली मे भर
सुर दुर्लभ मणि-माणिक-साज,
शुद्ध बुद्ध यतिराज विदेही
चले महात्मा गान्धी आज।

तृतीय सोपान

१

आये बहुत दिनों में आये,
आज अजिर में मंगल छाये।
प्यारे कविता-कान्त पधारे,
शान्त क्रान्ति-सिद्धान्त हमारे।
राजकुँवर वन-वासी आये,
आज प्रवासी ने घर पाये।
जननी! अपने मोहन आये,
नवल सुमन-धन वन से लाये।
वन-शोभा-शृङ्गार सलोने,
दिव्य कुसुम मधु सौरभ-दोने,

सखि सुषमा के अलकार वे,
पावनता के हृदय-हार वे,
हरेभरे कवि-धन से सोहें,
जिन्हे देख सुरपति-मन मोहे।
चुन चुन कर निज उरमें भरकर,
लेकर वन की मधुर धरोहर—

मातृ-भूमि-मन्दिर में मोहन आये हैं अर्चा करने;
आये माँ के अरुण चरण मे ऋतुपति मधु मंगल भरने।

हृद-वीणा पर गाते आये,
त्याग-विहाग सुनाते आये।
राम-रंग बरसाते आये,
हृदय-कुसुम सरसाते आये।
नव अनुराग बढ़ाते आये,
जीवन फाग उड़ाते आये।
सत्याग्रह का चक्र सुदर्शन।
लाये पुण्य-सारथी मोहन।
तीन रंग की लिये पताका,
करने आये नूतन साका।
(विजई विश्व तिरंगा प्यारा,
गौरव-झंडा यही हमारा;
राष्ट्र-त्रिवेणी का यह संगम,
जीवन-तीर्थ हमारा जंगम।)

सुरस सुनहला सुरभित लाये,
सघन प्रेम-घन मोहन आये।
लाये हैं कितना दृग-रञ्जन झोली में भरकर अञ्जन;
दास दूर हो त्रास तुम्हारा भेषज यह भव-रुज-भञ्जन।
जीवन-जड़ी महात्मा लाये,
हमने बिछुड़े वैभव पाये।
गये पाहुने वापिस आये,
मन भाये सुख घरमें छाये।
मंगल-बिगुल बजाते आये,
गुण-मणि विपुल लुटाते आये।
गये यहाँ से थे बैरिस्टर,
शोभा-सागर सभ्य वेष-धर।
लौटे आज अकिंचन बनकर,
श्रमिक-वेष में मोहन नागर।
आये यति-वर स्नेह-सरोवर,
लाये हलधर धर्म-धरोहर।
सन्यासी सेनापति प्यारे,
आये मुनि' कप्तान हमारे।
शूर मौलि-मणि महावीर ये,
रथी-श्रेष्ठ भट समर-धीर ये।
भर अमोघ उर-तरकस मे बहु अस्त्र-शस्त्र वन से लाये;
दिव्य शक्ति मेधा की लेकर विश्व-जयी भट गान्धी आये,

दिखा तनिक सेनापति प्यारे !
तव तरकस के तीर दुधारे।
सुना करें ये मार करारी,
तीव्र नोक इनकी अनियारी—
अन्तस्तल तक घाव लगावे,
रण में तव जय-ज्योति जगावे।
विद्युत्द्युति सी आभा इनकी,
दृष्टि-शक्ति हँस हरे नयन की।
चमक-चौन्ध-वश शत्रु अयाना,
क्षण भर भूले वार बचाना;
तब तक तव शर घुसें हृदय में,
विजई होवें तनिक समय में।
समर-दिवाकर महा धनुर्धर,
अमर-विरुदधर परम शूरवर,
सत्य-शक्ति का दिव्य हुताशन,
सत्याग्रह का प्रखर शरासन—
लेकर दलपति धीर हमारा मन्थर गति से लहराता;
देखो वह मुसकाता आता मधुकर रण-रस का राता।
रण-विधान का दिव्य सुधारक भीति-निवारक तारकसा;
सत्याग्रह का आविष्कारक आता है उद्धारक सा।
धर्म-वर्म है वज्र-वक्ष पर,
मुड़ें जिसे छू लक्ष लक्ष शर।

धैर्य-कवच है झलझल झलता,
साहस निष्ठा ज्योति उगलता।
महेष्वास यह शौर्य-विधायक,
आया अपना सखा-सहायक।
भरे तूण में बहुविधि सायक,
आया नायक जय-फल-दायक।
रागी गृही विरागी त्यागी,
विविध शक्ति-गति इसमें जागी।
वचन-बान की ज्वाला-माला,
मानो कटि-तट पर असिवाला।
दुर्गम श्रद्धा-ढाल सुहावे,
जिसे वज्र भी भेद न पावे।
रण-सज्जा इस रण-दूलह की,
यश-निधि है भव-शोभा-गृह की।

जिसको पाकर शासक शासित दोनों होवें बडभागी,
उभय पक्ष का अनुरागी यह आया है प्यारा वागी।

देखा सबने गान्धी आया,
जन-समूह ने दर्शन पाया।
लाखों नयन झुके निज निधिपर,
ज्यों रसाल पर उमड़ें मधुकर।
इन प्यासों ने मानस पाया,
गागर में रस-सागर आया।

मधु पीलो सब भर दृग-प्याली ,
हृदय-अजिर में हो हरियाली ।
लखकर सुखमय अरुणोदय सा ,
शुभ का आश्रय मूर्त्त विजयसा ,
अनुपम सगम तेज-विनय का ,
धीर समीरण मधुर मलय का ,
जन-लोचन थे अगणित उमड़े ,
जैसे घटा गगन में घुमडे ।
लक्ष लक्ष कठों ने निर्भय—
कहा महात्मा गान्धी की जय ।

उस विनई का साज देख पर उमड़ पड़ा अचरज भारी ,
घुमड़ी उधर दृगाम्बर मे थी मधुर घनावलि भी न्यारी ।

ज्यों चकोर कैरव निज विधु को ,
लखते थे अलि-दर्शन मधु को ।
सरल वेष नरवर का लख कर ,
कहते दर्शक-वृन्द परस्पर—
"देखो वह जो आता ठिगना ,
वही महात्मा गान्धी अपना ।
चहुँ दिशि आवृत नयन-घटासे ,
तदपि खिला मुसक्यान-छटासे ।
देखो रे वह धीरे धीरे ,
हँस हँस लुटा रहा है हीरे !

यही वही है मोहन अपना,
मूर्त्त स्वर्ग कविता का सपना!
सुमन हार से विनय-भार से,
शील प्रेम के अलङ्कार से,
गुणाभरण से ढका हुआ वह,
दबा हुआ वह झुका हुआ वह।

कितना भी नत होकर चलले कहाँ जायगा तू झुककर?
ओ अम्बर तक उन्नत भूधर। तू चमके क्षिति पर ऊपर।
तन पर हिम की चादर धरकर छिप न सको हिमधर गिरिवर;
एक दिवस हिम गलकर बहकर कीर्त्ति कहे सुरसरि बनकर।

दीख रहा है सीधा कैसा,
गिरमिटिये श्रम-जीवी जैसा।
किन्तु सुना यह अति रण-बाका,
पद पद पर यह आके साका।
अफ्रीका में अडा आन पर,
डिगा न तिलभर खडा मान-धर।
धीर चिबुक पर उँगली धर कर,
मनन करे कुछ जब यह नर-वर,
लगा देख इसका सिद्धासन।
डोल उठें दर्पित सिंहासन!
बडे बडे साम्राज्य स्तब्ध से,
गति-विधि इसकी लखें क्षुब्ध से।

राजनीति अति भीत चकित हो,
रहे देखती इसे त्रस्त हो।
पर यह निज मग चलता जावे,
नम्र हँसी निज हँसता जावे।
द्वेष-राग से दूर चतुर यह मानो कोई जादूगर;
इसका सहज कार्य भी सबको चक्रव्यूह सा लगे अपर।
महा महिम यह दुबला पतला,
तपे हुये सोने सा उजला।
निशि-दिन आहुतियां दे देकर,
सुखा लिया है स्वयं कलेवर।
यज्ञ-वह्नि यह पीड पराई,
उर-मख-शाला में सुलगाई।
पूत धूम मिष कलि-मल खोता,
आया त्याग-श्रुवा-धर होता।
विधि ने नर-पथ किया विहित है,
स्रजा प्रजा को यज्ञ सहित है।
यज्ञ-विज्ञ यह अमर-अजिर से,
आया हमें सिखाने फिर से,
कर्बुर-पुर का शील सनातन,
भरत-भूमि का पुराय पुरातन।
सुर-निवेश का दृश्य दिखाया,
दीन धरा ने माध्यम पाया।

गीम

निज तन-मन के निर्मल पट पर मधुर दृश्य नन्दन-वन के,
आया यह चल चित्र दिखाने कर्म-यन्त्र-सञ्चालन से।

आज यहां यतिराज पधारे,
सारे स्वागत-साज उधारे—
लेकर भी अभिसार हमारे
मधु-वन सा खिल अजिर सजारे।
तेरे ये सर-ताज पधारे,
उपवन के ऋतु-राज पधारे।
कवि गायक मृदु वीणा लेकर,
कोकिल सा गुण गाले जीभर।
ओ गुण-गरी उषा-नागरी!
गत विभावरी स्वजनि जागरी।
गाले अपना हेम-राग री,
जगें प्रात मिष सुमन-भाग री।
दिनमणि सुवर्ण-पर्ण लुटावें,
अरुण वर्ण किरणें फैलावें।
हिला समीरण मलय-हिंडोरा,
धन्य गन्ध जो तुमने चोरा।

खग-कुल-कुशल-कलाविद कोकिल मङ्गल-गान सफल करले,
खिले कमल-ढिग बजा नफीरी सरस बधावा अलि। भरले।

सजा प्रकृति! तू भी निज थाली,
तू है रानी फूलों वाली।

सुमन-हार से अलङ्कार से,
कला-सुरुचि शृङ्गार-भार से,
झुका झटिति निज यौवन-डाली,
आली ! होकर फिर मतवाली
आज लुटादे सब हरियाली,
आये हैं मोहन वन-माली।
ओ वन-शोभे ! ओ फुलवारी !
सौरभ-सज्जा सफल तुम्हारी।
टँकीं अपरिमित वन्दन-वारें,
धन्य धरा ने मार्ग सँवारे।
मञ्जु वसन्ती साड़ी पहने,
सुमनों के अरु गुण के गहने,
पुर-बालायें हरस रही हैं,
मधु-मालायें बरस रही हैं।

और इधर अगणित पुर-नागर दर्शन-प्यास बुझाते हैं;
तरुण स्वयंसेवक ये विनई वाद्य बजाते गाते हैं।
स्वागत-हित पुर-वीथि-द्वार सब बहुविधि सजे हुये हैं;
आज पुरी ने नख से शिख तक सब शृङ्गार किये हैं।
अम्बरभेदी जय-नारों के इस अभिनव जय-रव से;
विकल पराभव-भय से कैसे चौंक रहे नृप वासव से।

ये कविता सी पुर-वनितायें,
मूर्त्त प्रेम-यौवन-सरितायें,

विधि-शिल्पी की कला-पुतलिया,
दृग-अलियों की रंजक कलिया,
रूप-छटायें अटा चढी हैं,
ज्योति-शिखायें हेम मँढी है;
शोभा-मणि की टॅकी कतारें,
या मगल की वन्दन-वारें।
भर भर कर-कमलों के दोने
बरसाती हैं सुमन सलौने।
पुर-जन फूल उछाल रहे हैं,
श्रद्धाजलिया डाल रहे हैं।
कुसुम-वृष्टि ने मार्ग ढके हैं,
किन्तु न अब भी हृदय छके हैं।
फूलों की चादर पर चादर
बिछा रही है धरणी सादर।
गान्धी। तेरे मग मे इनने कितने पुष्प बिछाये है।
कीर्त्ति-वधू ने बिछा पॉवडे या उर-भाव दिखाये है?
जिस मग पर यह गान्धी जावे,
पथ-शूलों पर फूल बिछावे।
अपना हृदय बिछाकर सविनय,
मार्ग-विजय पाता है निर्भय।
जय-रव जब कंटक ढक लेता,
तब अनुगों को आने देता।

अथवा गान्धी-चरित अपरिमित
कुसुम-रूप धारण कर अगणित,
उच्छल विहग से खेल रहे है,
धारा-गगन में फैल रहे हैं।
पर यह सुमन-सुरभि-गति परिमित,
कीर्त्ति-गन्ध चरितों की विश्रुत।
पुण्य-चरित इन महाभाग के
पारिजात से देव-बाग के,
सदा खिले अरु हरे रहें ये,
हरें ताप त्रय सुयश कहें ये।

कुछ भी है पर तू न विराना कैसे भी करले स्वागत;
कृश-तनु क्षुधा प्रतीक हमारे तुम न पाहुने अभ्यागत।
ओ लहराते मानस। हमको टुक निज दर्शन पाने दे;
भीड़ बहुत है पर हमको भी तन्दुल-सुमन चढ़ाने दे।
अवगाहन तो करें कृती जन हम तो तव लहरें लखकर,
करें आचमन डरते डरते भागे मृदुता को चख कर।
घर आकर फिर हमभी गर्वित मानस-स्वाद बखानेंगे,
तेरे यश-बल से हमको भी कुछ जन पडित मानेंगे।
बहुत दूर से बहुत दिनों मे आया घर मे आजा अब;
प्रिय सेनापति! प्रथम विरमले बजवाना रण बाजा तब।

मोहन का अभिनन्दन करने,
श्रम हरने पद-वन्दन करने,

नवभारत की द्वारपालिका,
हुई मुम्बई नई द्वारिका।
हुआ पुरी में स्वागत-उत्सव,
बिखर रहा था चहुँदिशि वैभव।
भव्य वेष भूषा में सज्जन,
सज-सज आये विविध शिष्ट-जन।
बहु विशिष्ट पंडित विज्ञानी,
धनी विज्ञ बैरिष्टर मानी,
शानभरे वे मानभरे थे,
भोग-विभव-रसभरे हरे थे।
इधर श्रमिक के नम्र वेष में,
निपट पराये से स्वदेश में,
गान्धी विनई नीचे चिमटे,
सभा-मध्य थे बैठे सिमटे।
गगन-चुम्बि प्रासादों में भी पर्ण-कुटी न्यारी सोहे;
लता-फूल के सरल वेष में क्यों न कुञ्ज-छवि मन मोहे?
सहज देश का वेष सुहावे,
नहीं पराई सज्जा भावे।
कोमल किशलय-वसन सजाकर,
झाँके जब शिशु-सुमन लजाकर,
छके नयन छवि पीकर उसकी,
गाथा गावें सौरभ-रस की।

द्रुम पल्लव के हरे वसन में,
किसे गुलाब न मोहे चन में ?
कब सोहें मखमल के पल्लव ?
घटे सुमन का शोभा-वैभव।
कुसुम-सुरभि में जन-जन लोभ,
कलरव में कोइल की शोभा।
फबे न बिलकुल वेष पराया
दास्य-भाव है उसमें छाया।
उस स्वागत-हित सजी सभा में
चमके मोहन-चन्द्र विभा में।

ये भारत के शिष्ट विज्ञ बहु बैठे हैं क्यों व्यर्थ तने ?
हैट कोट पतलून लगाये अपने जाने सभ्य बने !
जुडे अभागी भरतभूमि के बडे बड़े जन-नेता वे;
अथवा स्वागत-श्वाङ्ग सजाये आये थे अभिनेता वे।

असली नट से देखो देशी
खडे हुये हैं बने विदेशी।
क्यों स्ववेष शुभ उन्हें सुहावे ?
जिन्हें नकल में लाज न आवे।
सदा रिझावे निज स्वामी को,
उचित नकल ही अनुगामी को।
मुकुट कलंगी बान्धे सर पर,
भला फबेगा कैसे अनुचर ?

हेम-मुकुट पुरखों न ओढे,
सिंहासन पर बैठी पौढे।
हमें न सोहें वेष पुराने,
हम दासों न फैशन जाने।
यों यह स्वागत-सभा जुडी थी
दास्य-भावना भरी पडी थी।
यहां पराई थी भाषा भी,
पर-चेरी थी हृदयाशा भी।

शिष्ट-जनो के अंग्रेजी ही में हुये वहाँ स्वागत-भाषण,
बडे भाग्य जो पर-शासन से मिला सभ्य का दासासन।
परम पावनी भारत माता बनी भाग्यवश तुम 'मॉदर',
साहब सुत की माँ हो, सादर पहनो 'गाउन' तज चादर।

धन्य धन्य अंग्रेज विजेता,
बलि बलि गोरे शासक नेता।
तू रेता में नय्या खेता,
पल में अगम सुगम कर देता।
कुछ न असंभव तुझको जगमें,
प्राप्त विश्व-वैभव है मगमें।
हृदय-कोष तक तैंने छीना,
दिया दास का गर्हित जीना।
वेष तुम्हारा देश हमारा,
देह हमारी हृदय तुम्हारा।

जेता ! हमें हुआ अति प्यारा
भाषा शिष्टाचार तुम्हारा।
तेरी भूषा तेरी भाषा
सीखें यही हमारी आशा।
चरम लक्ष्य यह इस जीवन का,
गौरव यही हमारे मन का।

जीत तुम्हारी हार गये हम हमें न निज भाषा प्यारी;
अन्तस्तल तक नीति-कटारी भोंकी तैंने दोधारी।
हा दीना जननी की बोली काँप रही गौरव खोकर;
बेटे माँ की गिरा न समझे कष्ट कहे किससे रोकर ?

यह सत्याग्रह शस्त्र निराला
सभी कहें है अद्भुत आला।
पर जाने यह चक्र सुदर्शन
किस दिन करे हृदय-परिवर्त्तन ?
ब्रिटिश-शस्त्र हैं किन्तु दुधारे,
जिनने बदले हृदय हमारे।
धन्य नीति जो दास बनावे,
अनुपम सेवा-व्रत सिखलावे।
हम उन्नति-सीमा तक पहुँचे.
कहा चढ़ेंगे इससे ऊँचे ?
दूषण आज हुये हैं भूषण,
बने विभीषण देश-विभूषण।

आज मीरजाफर हैं हर्षित,
मूँछ पनाते डोलें गर्वित।
भरे गर्व में दास-भाव जब,
करें कहो क्या शौर्य-चाव तब?

नहीं पलाशी मे थे हारे, हारे हम हैं आज यहाँ:
किस क्लाइव ने कब कृपाण से जीता हमको कहो कहाँ?

अँग्रेजी में स्वागत-भाषण,
परभाषा में निज गुण-वर्णन,
रुचा न गान्धी को वे बोले
मानवनी ने रद-पुट खोले—
"मै बाहर से घर पर आया,
इसीलिये क्या हुआ पराया?
मैं तो इसी भूमि का चाकर,
चरण-कमल का किङ्कर मधुकर।
इस गोदी में क्यों खेला,
किया धूलि से इसको मैला।
इन जननी की रस में घोली,
स्नेह भरी वह मधुरी बोली,
क्या मैं समझ न सकूँ अभागा?
जो अम्बा ने मुझको त्यागा।
क्यों मेरा घर मुझे पराया,
किसने देश विदेश बनाया?

पर-भाषा पर-वेष कहो हम क्यों अपना कर गर्व करें ?
दास्य-भाव क्यों भरें हृदय में क्यों स्वदेश का मान हरें ?
इसी गर्व का नाम गुलामी यह विद्या-धन पाप भरा ;
पंकिल पतन यही पर-वश का शिष्ट-वेष में दास्य दुरा।

जब तक हम अँग्रेजीपन में
शान बहुत सी माने मन में ,
दूर रहे तब तक आज़ादी ,
शौर्य तेज की हो बरबादी।
इसी कीच से परागधना
जुड़ी हृदय में दास्य-साधना।
मान-भावना आज हमारी
पद विहीन है पतित विचारी।
हाय हमारी भाषा दीना
अपमानित है आज अधीना।
विज्ञ आप हैं वृथा कहूँ क्या ,
अज्ञ अबुध मैं अधिक बहूँ क्या ?
यही ढीठता मुझ अनुचर की
बहुत अधिक है इस अवसर की।
क्षमा करें मुझको सब सज्जन"।
मौन हुये यों कहकर मोहन।

मुग्ध हृदय श्रोता जन सारे चौंके सुन सन्देश नया ;
मानो सहसा यहीं हिन्द ने गान्धी को नेतृत्व दिया। "

श्रमिक वेप का सरल महात्मा पैठा सबके अन्तर मे,
देश-प्रेममय ओज-हिलोरें उमड़ रही थी प्रति उर मे।
जय-निनाद अम्बर तक फैला रव से मण्डप कॉप हिला,
सत्याग्रह के दिव्य धनुप से मानो पहला वाण चला।
प्रथम दिवस ही ब्रिटिशसिह को सेनापति ने ललकारा,
देखें किस दिन मिले किनारा उमड पड़े जब रण-धारा।

२

पुण्य भूमि भारत में आकर,
चमक उठा यह नवल सुधाकर।
सचमुच माँ तू रत्न-गर्भिणी,
तव गुण-गीता सुधा-वर्षिणी।
कीर्त्ति-कोप गान्धी के जैसे
रत्न जने किस माँ ने ऐसे?
कोहनूर क्या पूर्ण चन्द्र भी
बलि जिन पर हैं माँ! सुरेन्द्र भी।
स्नेह-सुधा का यह व्यापारी,
हाट लगा कर बैठा न्यारी।
क्रय-विक्रय में लगा सुधाधर,
वणिक-धर्म में पगा वैश्यवर।

पारिजात की रूइ दिखा कर,
कल्प वृक्ष का सुरस चखा कर,
जुटा रहा था नित नव गाहक,
यह प्रवीण स्नेहामृत-वाहक।

हृदय-इन्त्र निज बिन्दु-मात्र भी यदि यह गान्धी ढुरकाता;
यश-सौरभ उड़ दूर-दूर तक विज्ञापन था फैलाता।
सुहृद प्रशंसक अरु अनुयायी मिलते इनको बहु सख्यक,
बढ़ा रहे थे दिन दिन गान्धी भारत का अनुभव भरसक।

जिनके होवें राम सहायक
मिलें गोखले से अभिभावक।
क्यों न मिले मधु को कुसुमाश्रय?
कौस्तुभ-मणि को हरि-हृदयालय?
मिलें कृती को सदा सदाशय,
प्रभु-प्रतिमा को ज्यों देवालय।
गान्धी ने संरक्षक पाया,
संरक्षक ने पुण्य कमाया।
धन्य गोखले सच्चे नेता,
दूर दृष्टि-धर विरुद-विजेता।
तैंने दिव्य कुसुम को जाना,
गन्ध परख पलमें पहिचाना।
श्रद्धा तेरी बढ़ी सुमन में,
रक्खा माँ के अरुण चरण में।

फूल हुआ जननी का प्यारा,
स्नेह दृष्टि से उसे निहारा।

मातृ-भूमि की प्रेम-दृष्टि से सुमन-सुरभि छिटकी महकी,
निखिल देश की फुलवारी मे कीर्त्ति कोकिला सी चहकी।

महा पात्र गान्धी सा पाया,
बहुत गोखले ने अपनाया।
मानो निज युवराज बनाया,
अपने हाथों छत्र उठाया।
पाकर ऐसा दिव्य नगीना
सफल हुआ था मानो जीना।
दिन दिन स्नेह बढे था दूना,
पुना में था प्रेम-नमूना।
सेवा-समिती नामक सस्था
थी पूने में मधुर व्यवस्था।
इसके ही तत्त्वावधान में,
गान्धी के सम्मान-गान मे,
प्रीति-भोज अरु स्वागत उत्सव
हुये प्रीति के अभिनव अनुभव।
बहुत गोखले तब थे रोगी,
तदपि हुये स्वागत-सहयोगी।

प्रीति-भोज मे आकर माने, पर निर्वलता छाई थी,
अत उन्हें बैठे बैठे भी कुछ मूर्छा तक आई थी।

यहाँ भोज में मोहन ने यह नई मिठाई पाई जब;
रस-लोभी ने चुपके से कुछ मन मे चुरा छिपाई तब।

प्रौढ वयस ही में पर आखिर
चले गोखले अमर मुसाफिर।
मानो गान्धी ही की खातिर
बाट जोहते थे वे आतुर।
भार सौंप कर योग्य करों में
तुष्टि-लाभ ले मिले सुरों में।
भार-मुक्त वे हलके होकर,
क्यों रुकते फिर? उड़े गगन पर।
जब लोकोत्तर विहिताचारी
मिले पात्र उत्तराधिकारी,
तब महान जन रुकें न जगमें,
जाते हैं निज लोक स्वर्ग में।
पर गान्धी-नयनों का पानी—
—थी सहने की बान पुरानी—
जाने कहा रुका कब छलका?
बाहर दृगमें तनिक न झलका।

किन्तु विरह के साथ कार्य का अमित भार उरपर धरकर,
निकला बाहर कर्म-भूमि में अद्भुतकर्मा नर-नाहर।

गान्धी अब तक रहे प्रवासी,
अभी हुये थे भारत-वासी।

अत· इन्हें था अनुभव करना,
था प्रान्तों में स्वय विचरना।
सामाजिक व्यवहार-व्यवस्था,
शक्ति भक्ति धन-धान्य-अवस्था,
बहुविधि भाषा रूढ़ि-रीतिया,
धर्म-कर्म बहु जाति-नीतिया,
विद्या शिक्षा स्वास्थ्य चरितबल,
प्रान्त प्रान्त का कृषि-धन उज्ज्वल,
कृषक श्रमिक निर्धन का जीवन,
शोषक शासक के सुख-साधन,
राष्ट्र-रीति अरु राजनीति की,
विविध भावना वैर-प्रीति की
करके देश-दशा-अवलोकन,
करना था गुण-दोष-विवेचन।

अत भ्रमण भारत का करने विचरे गान्धी नगर नगर,
किया पर्यटन एकाकी ही सन्यासी ने डगर डगर।
कवि के शान्ति-निकेतन में भी कुछ दिन तक विरमे मोहन,
कवि-रसाल ढिग मधुप-चाल जहँ सीख रहे हैं मधु-दोहन।

कवि रवीन्द्र का शान्ति-निकेतन
है कविता का मूर्त्त निवेदन।
अरुण उषा के उजियाले में,
मानो शत-दल के प्याले में

सखि कविता गीताजलि भरकर,
कुसुमाभरणा सहज सँवर कर,
—संग सहेली कला-किशोरी
नित मुसकाती नव-रस-बौरी—
कवि-सविता को अर्घ्य चढ़ाने,
अलि-निकुंज में रस ढुरकाने,
अनुरागभरी मुसक्यान-छटा पर
झीना लज्जा—घूँघट देकर,
शान्ति-निकेतन में नित आती,
मृदु बेला सी मधु बरसाती,
अमृत-बाला है वह अमरी,
पर है मधु की लोभिन भ्रमरी।
विश्व-भारती को भारत में शान्ति-निकेतन कुञ्ज मिला;
वीणा से कल्याण-राग में साम-गान-मधु फूट चला।
अतिथि-रत्न मोहन सा पाकर कवि-उर-शान्ति-निकेतनमें;
राग-भावना आही पहुँची ले निधि-लोभ तपोवन में।
ऐसे मोहन विचर विचर कर
देख रहे थे ग्राम नगर पुर।
करने मातृ-भूमि का दर्शन
प्रान्त प्रान्त में किया पर्यटन।
देखी पुण्य-चन्द्र उजियाली,
मातृ-हृदय-वन की हरियाली।

हृदय हमारी इन जननी का
पुण्य-केन्द्र है इस धरनी का।
उर है अथवा स्नेह-सरोवर
भाव तत्त्व की आर्द्र धरोहर।
धन्य हृदय में सुर-सरिता सी,
विधि कवि की अगम कवितासी।
कितनी रस-सरि खेल रही हैं!
मानो स्नेह उँडल रही हैं।
रस से तारे वरा-धाम को,
सत्य करें नित रमा नाम को।
माँ के पीन पयोधर की मृदु पय-धारा बल कारक है,
ये अम्बा की गंगा-जमुना शिशुओं की उद्धारक है।
गौरव-शिखर अम्बका हिम-धर
क्षितिपर सबसे ऊँचा होकर
निज उपमान खोजन ऊपर
झाँक रहा है छूकर अम्बर।
हराभरा लहराता आँचल
जिसे हिलाता है मलयानिल।
तथा खिला है सुखमय निर्मल
मृदुल गोद का हरित धरातल।
इसीलिये क्यों तजकर हलचल
सोवे सुख से माँ का शिशु-कुल?

इस गोदी का लोभ सुरों को
रहा सदा से है अमरों को
आते लोभी नर-तनु-धर-धर,
यहा बुद्ध शङ्कर बन-बन कर।
सुजल सुफल धन धान्य सुमन जब
मिलें यहाँ पर सुख-साधन सब।

दीन देव क्या नारायण भी रमा सहित है ललचाते;
भूमि-भार का बना वहाना विन न्यौते दौडे आते।
कहाँ सिन्धु मे व्रज-विहार के घन कदम्ब मधु-वन मिलते?
यमुना तीरे राका रजनी कहाँ रास-साधन खिलते?
वशी-वट-तल रविजा-तट पर वे राधा-दृग रस-माते,
वह मुरली वह नैश-मधुरिमा उन रातों की वे बाते।

सजा हिमाचल-प्रान्त मनोरम,
कश्मीरी सुषमा है निरुपम।
स्रष्टा की रस-बोध-चातुरी
यहां प्रकट है कला-माधुरी।
झरनों में शशि-सार गला है,
वन-शोभा में रूप ढला है।
गिरि-वैभव बिखरी हरियाली
कण-कण में है झूम निराली।
विधि ने प्रकृति-नटी की खातिर
कला-मेज शृङ्गारी सुन्दर।

प्रान्त प्रान्त के कोष भरे हैं,
हरे धान से खेत घिरे हैं।
धन्य उर्वरा भारत-उर्वी
रत्न-धान्य फल-वन से गुर्वी।
हरे सांवले घने वनों में
ऋतु वसन्त के खिले दिनों में—

नन्दन-वन तज कर कुसुमायुध सुमन-तृण भरने आता,
वन-देवी की लता-अलक के फूलों पर अलि मँडराता।
सब सुख-साधन रत्न-भरा है अजिर हमारी अम्बा का,
तरण तारिणी कलुष हारिणी शिशुओं की अवलम्बा का।

रत्न-राजि ये किसे न प्रेरें
क्यों न लुटेरे यह घर घेरें?
पर कितना भी कोई लूटे
कब अटूट रत्नाकर टूटे?
लूट नहीं प्रतिदिन हो सकती,
दानव की भी गति है रुकती।
पर जब कोई चतुर लुटेरा
देख रात का गहन अँधेरा,
व्यापारी का वेष बनावे,
साहूकारी बाट्ट सजावे,
धीरे धीरे निपुण नीति से,
चढ़े वैश्य की भेद-रीति से,

एक दिवस वह बणिया नामी
रत्न-कोष का बनता स्वामी।
कोष-कुंचिका का अधिकारी
शासक बन जाता व्यापारी।

फिर तो शासन-सूत्रधार वह परदें के भीतर होकर;
नट नटियों को खोज निकाले तथा नचावे इङ्गित पर।
इसी न्याय से विभव हमारे आज परो से शासित हैं,
बाल वृद्ध नर नारी घरके दलित दीन है त्रासित हैं।

हम सेवक हैं, वे हैं स्वामी,
वे नेता है, हम अनुगामी।
व्यर्थ हमारी कीर्त्ति-कामना
कैसे प्रभु का करे सामना?
देखा मोहन ने स्वदेश को
इतर करो में निज निवेश को,
पर-भुक्ति-विवश अपने अशेषको,
बन्धु-जनों के अमित क्लेश को।
नीति-गदा की चोटे खाकर
टिके न हम भागे अकुलाकर।
टुकडो में है बॅटे बिखर कर,
जुटे स्वार्थ में कायर डरकर।
जात-पात के भाग अमित हैं,
ओर धर्म के मार्ग बहुत हैं।

एक योनि है भव की मानव
एकाधिक नर-धर्म असंभव।
किन्तु हमारी दास-बुद्धि ने नाना भेद रचाये हैं;
मानो लड़कर गिर मरने को अन्धे गर्त्त खुदाये हैं।
भ्रमण रेल में करते करते
प्राय: गान्धीजी ये सुनते—
धर्म-प्राण भारत की वाणी—
"हिन्दू पानी मुस्लिम पानी"।
अरे धर्म के अन्धे मानी!
डुला धर्म-मुक्ता का पानी।
शेष रही केवल नादानी
बुद्धि दिवानी की मनमानी।
तब हम तुमको हिन्दू जानें,
और तुम्हें तब मुस्लिम मानें,
जब तुम बाँटो वायु-गगन को,
हिन्दू मुस्लिम के नग-धन को,
हिन्दु सूर्य को मुस्लिम शशि को,
मुस्लिम दिन को हिन्दू निशि को।
शूर-वीर तुम यहीं रुको क्यों?
बढ़ो लड़ो नित थको छको क्यों?
बढ़ो रणाङ्गण में हे वीरो खर कृपाण के वार करो
दो टुकड़े कर जगत-पिता के हिन्दू मुस्लिम बाँट धरो।

लड़ो परस्पर नर-बलि देकर क्यों न धर्म फिर फैलेगा ?
प्रगतिशील मानव दानव के उच्चासन को लेलेगा।

वह देखो भारत की नारी
उधर खड़ी है दीना न्यारी।
हाथ बँधे है रूढ़ि-पाश से,
नयन रुँधे है पुरुष-त्रास से,
शुचिता-लता सुन्दरी तरुणी,
किन्तु आर्द्र है इसकी वरुणी।
निरक्षरा गुण-धामा रमणी
धर्ममई पति-सेवा तरणी।
भले तुषानल जले हृदय में,
सहती धीरा मौन विनय में।
विवश किशोरी वरे विधुर को,
किन्तु न विधवा लखे उधर को।
धन्य महीयसी पुरुष-दमन को
सहन करे नित बांध कफन को।
उलटे पति पर तन-मन वारे,
चिर मंगल भर अजिर सुधारे।

सावन-घन हैं घिरे हृदय में, गंगा जमुना नयनों में;
करमें पति-पद, मुख पर भय है, मौन विनय है बयनों में।
आभरणों मे दास्य भरा है लज्जारुण मुख मन हरता;
आर्य-वधू के अवगुण्ठन में धर्म दीप जग मग करता।

कहाँ गार्गी तारायें पर तेजोज्ज्वल मणि-ललनायें
सूर्य-प्रभासी अग्नि-शिखायें ज्योतित गौरव-गरिमायें।
माताओं में वधू-वर्ग में हैं प्रतिमायें पुण्यमई,
मानो बँटकर विविध रूप में भारत माँ है प्रकट हुई।
माँ ने अपनी मधुर आर्द्रता तथा हृदय की हरियाली,
क्षिति का सहज क्षमा गुण देकर भोली दुहितायें पालीं।

सड़ उधर वे दलित विचारे
आर्य-न्याय के चित्र हमारे।
पुण्य-पुंज निज आर्य-जाति ने,
कनक-कलश निज आर्य-ख्याति ने,
निठुर वाण के लक्ष्य बनाये,
निज कर वन्दे भूमि गिराये,
व्यथित दलित सत्कृत वे सारे
हा अछूत बन रोते हारे!
छू मत लेना, इनको द्विजवर!
तुम हो जेता उच्च-वंश-वर।
द्विज हे चार गर्व के सागर!
तेरा सत्कृति-रत्न सुधाकर—
लख अछूत है हुआ बिछुडकर,
किन्तु उसे ललत ही शङ्कर—
—दीन दलित के सहचर नटवर—
धरें मौलि पर विभु शशि-शेखर।

पर अम्बुधि सा अगम आर्य भी सदियों से है दास बना;
सिन्धु-लहर का शासक उसके तन पर ढोता माल घना।
न्यायी विधि ने निठुर जयी के गर्व-मान को बान्ध दिया;
अपने बोये क्रूर कर्म का फल समुचित ही प्राप्त किया।

आ सवर्ण! यह गर्व तुम्हारा
कलुष-पिटारे का अँधियारा।
तज इसको यदि जीना चाहे,
जीवन-मधु यदि पीना चाहे।
निर्दयता के बीज उगाकर,
पूरी फसल उसीकी पाकर,
दास्य-धान का खेत खिला है,
जो बोया वह तुझे मिला है।
दास बना रे अधिक सयाने!
हुये न तोभी होश ठिकाने।
तेरे कर्म कर्म की "कॉपी"
काल 'कॉर्बन' ने है छापी।
अब भी तजदे ऊँचपन को,
प्रेमालिङ्गन दे हरिजन को।
ले इस दीन-बन्धु के धन को,
चुन चुन मणियां भरले मनको।

अब तक तैंने वार किये हैं आहत हरि-जन पर जितने;
घाव लगे हैं तेरे तन पर लखले उससे कई गुने।

ओ सवर्ण उठ, आज दलित को जितना हृदय लगावेगा;
नियति-गणित से कई गुणाफल निश्चय ही तू पावेगा।

क्रूर कृत्य सदियों के सारे
अरे आर्य! कटु वृत्त तुम्हारे,
निर्बल-नर पर ओ गर्वीले!
तेरे फेंके शूल नुकीले
इधर उधर जब लगे बिखरने,
विश्व-शान्ति को लगे अखरने,
तब विधि-कर ने उनको चुनकर,
तेरा भाग्य-पिटारा भर कर,
तुझे सौंपदी तेरी थाती;
इसीलिये तो तेरी छाती
क्षणभर भी है चैन न पाती,
नित शूलों से छिदी जाती।
तैंने नर को दलित बनाया,
सरल बन्धु को पतित बताया,
बहुत सताया, बहुत जलाया,
घृणित कर्म उससे करवाया।

कपड़े छीने रोटी छीनी रक्त-मांस तन का छीना;
धर्म शील विद्या धन छीने दिया दुखी पशु का जीना।
नहीं रही है धर्मभावना छीन लिया संवेदन भी,
छीना हा प्रभु-मन्दिर जाकर करना व्यथा-निवेदन भी!

जिस नर तन में नारायण की ज्योति-किरण का वास रहे,
उसे स्वयं तू श्वपच बनाकर हा हतभाग्य ! अछूत कहे।
बता आज तक किस विजई ने इतना भीषण पाप किया ?
किस स्वामी ने किस गुलाम को है ऐसा सन्ताप दिया ?
अफ्रीका के हबशी को भी तजा न श्वेतों ने छूना ;
दास-प्रथा का घृणित नमूना पाप भरा यह तो दूना।

क्या कारण जो वह अछूत है
तू ही कैसे परम पूत है ?
है सोने की देह तुम्हारी
मुक्ता-मणि हीरों की क्यारी ?
उसकी हाड-मास की काया
तथा श्याम है तन की छाया ?
विद्या विनय शील गंभीरता,
शिष्टाचार सुरुचि वीरता,
मिले तुम्हें गुण गर्भाशय में,
क्यों न भरो तुम गर्व हृदय में ?
कुरुचि नीचता हृदय-हीनता,
दास्य अज्ञता घृणा दीनता,
अरु अछूत की कुत्सित सज्ञा,
विधि से उसको मिली अवज्ञा ?
इसीलिये अस्पृश्य हुआ वह
उच्च आर्य का वश्य हुआ वह ?

आर्य-भूमि से फैली जग में साम्य-भाव की परिपाटी,
कैसे माटी हुआ मेरु वह हेम-राशि जिसने चोटी?
है अछूत तो नहीं आज भी नर-तनु प्रभु की पर्ण कुटी,
जब दम्भी-जन उसे जलावें चढ़ती है विभु की भृकुटी।
ब्रह्मा के यज्ञोपवीत से जन्म हुआ द्विज का जग में
पर अछूत वह उगा कहीं पर पंकिल धूलि भरे मग में।
ओ द्विज! अब तो रहने दे तू अनाचार है अमित हुआ,
वेद-ब्रह्म-रस-द्रष्टा ऋषि क्यों तमस-चक्र में भ्रमित हुआ?

ओ द्विज! साम-गान के गायक,
साम्य-मन्त्र के आदि विधायक,
महा वेद-विद जग-उन्नायक,
तपस्साधना के परिचायक,
प्रथम सभ्यता का अरुणोदय
शील-कला का पहला अभिनय,
कहते भव को दिया तुम्हीं ने,
प्रेम-गान भी किया तुम्हीं ने।
प्रात प्रथम था आर्य-गगन में
खिला प्रेम-जलजात भवन में।
नागर भावों की फुलवारी
खिली प्रथम भारत में सारी।
सुन कर भी तव कीर्त्ति-कहानी
सत्य नहीं हमने तो मानी।

आहत यश-राकेश तुम्हारा
छूत-राहु से ग्रसित विचारा।

जब है प्लेग छूत का फैला संभव फिर उत्थान कहाँ?
यही बहुत जो बचे प्राण भी रहें मान सम्मान कहाँ?
दलितों के सब आङ्गण द्विज तू सूर्य-चन्द्र को बतलादे;
हैं अछूत, पर छूत न उनकी लग जावे घर दिखलादे।

ये ही क्यों कृष-काय कृषक भी
हुये मुमूर्षू श्रान्त श्रमिक भी।
जला रहा है शासक उनको
ले तन-मन के इन्धन-धन को।
अस्थि-चर्म निर्मित ये अगणित
है नर-नामक यन्त्र अपरिमित।
इनसे कूटो अथवा फोडो
चाहे जैसे जोडो तोडो
रत्नमई ज्यों आर्य-धरा है,
बहुत यहा धन-धान्य भरा है,
ज्यों पशु-धन वन-धन है पुष्कल,
त्यों नर-धन भी बहता अविरल।
क्यों न नृपति भोगें नर-धन को?
बिखरा हुआ मिले जब उनको।
सूनी खेती सब को भावे,
पशु-पक्षी स्वामी बन जावें।

श्रमिक कृषक के हाथ पाँव को जीवित अन चालू रक्खे,
उनके स्वेद-बिन्दु के मीठे स्वाद सदा स्वामी चक्खे।
क्षुधित कृषक तो मौन रुदन से प्रभु-प्रासादों को धोवे
श्रमिक मद्य अरु दुराचार से देह जला कर नम खोवे।

हरा भरा संसार सुनहला
कोटि जनों का उपवन उजला,
प्रभु बन कर तू नित्य उजाड़े
अगणित कुसुमित विटप उखाड़े।
हृदयों की हरियाली हँसता
प्रति नर के अन्तर में रमता
कोल्हू में पिलवाकर उसको
हाय निकाले चिकने रस को!
उससे तृष्णा-दीप जलाये
रे देखा! कितना इतराये,
पर-पीड़न के उगा तेल से
चुपड़े तन को तू फुलेल से।
क्यों तू रौरव-पथिक हुआ है,
क्यों नर निष्ठुर वधिक हुआ है?
हा भारत की भाग्य-विषमता!
शोषक शासक की निर्ममता!

कोटि जनों के अस्थि-सार से महल कहाँ अन्यत्र बनें?
हृदय-रक्त से रँगे कहाँ पर ऐसे भोग-वितान तनें?

कौन गिने नयनों के आँसू जहाँ दीनता शीष धुने ?
ऊँच-नीच के भेद हिन्द में घोर घटा से अधिक घने।

यहा रूढ़िया फैल रही है,
इधर गुलामी खेल रही है।
सोच रहा है नृपति विदेशी
दशा करूँ भारत की ऐसी—
जो भारत की भारतीयता,
स्वाभिमान की माननीयता,
यहा न अणु में भी रह जावे,
तथा गीत पश्चिम के आवें,
स्वर-विकार युत फैलें आकर,
दास धन्य हों उनको गाकर।
भूल जाय यह काली कोयल
सहज-विमल-लय अपनी कोमल।
और लवा भी बन न सकेगी,
किसी मोल में यह न विकेगी।
नव विहान मिष उलटी शिक्षा
दी जाती है ऐसी दीक्षा।

न तो पश्चिमी सभ्य बनें अरु रहें न भारत-वासी हम;
उभय दिशा के कुत्सित-फल से होवें दास्य-विलासी हम।
प्राची और प्रतीची का यदि होता हो सचमुच संगम;
तब तो पुण्य मिलन से जग में तीर्थराज प्रकटे जंगम।

किन्तु यहां तो हमे शिकारी श्वानधर्म सिखलाना है,
निज रस-हित प्रिय शशक-मृगो को हमसे ही मरवाना है।

नव शिक्षा का नया नमूना
प्रेम धर्म गौरव न सूना,
एक अनोखा नर उपजा है,
इस शासक ने उसे सजा है।
शिक्षित बाबू-वर्ग यही तो
है शासक का स्वर्ग यही तो।
देह-भोग ही इसको प्यारा
इसने धर्म स्वाद पर वारा।
यही नवल नर श्वान-वृत्ति-धर
राजा का विश्वास इसी पर।
अश्वारोही नृप का सहचर
यही श्वान निज प्रभु का अनुचर।
यह न पश्चिमी जैसा उजला
ऊँचे न भारत का भी पुतला।
भाषा-भूषा-भाव निराला
नृप ने बुद्धि-नपुसक पाला।

हृदय-बुद्धि से निपट नपुसक पात्र क्यो न हो विश्वासी ?
परिपाटी यह, राजमहल हो इसी वर्ग का अभिलाषी।

यही मीरजाफ़र के वशज
ह्न्यकार के असली अशज।

बीज यही हैं दास-भाव के,
नास्तिक हैं ये स्वार्थ-नाव के।
ये कुपूत कुल-घातक कामी,
इनसे फूले फले गुलामी।
बढ़ें देश के द्रोही ऐसे
खिलें पुण्य-उपवन फिर कैसे?
पड़े जहा परछाँई इनकी
सुषमा सूखे सौ योजन की।
हे गान्धी-कुल-कमल-दिवाकर!
देख रहे हो क्यों अकुलाकर?
लो स्वदेश की दशा विलोको,
कीर्त्ति-कला-घर अभी न चोंको।
हा अतीत के पुण्य-कगारे
देखो ये हैं तीर्थ हमारे।

जहाँ तपोधन तिभुवन-दर्शी तप-मधु थे वितरित करते;
सुधा-वाहिनी वेद-गिरा से सुर-सरि का थे श्रम हरते।
वे विलास के केन्द्र आज हैं राग-भोग-अङ्कुर फूटें,
साधु-वेष में वहाँ धूर्त्त ठग भोले भक्तों को लूटें।

ठौर ठौर ये हरि के मन्दिर
कला-भक्ति के सगम सुन्दर,
जहा हमारी भक्ति-भारती
अर्घ्य विनय नैवेद्य वारती।

तुलसी-बिरवा बनी सुहावे,
प्रति मन्दिर में प्रभु-पद-पावे।
चरण-चढ़ी निज भाग्य बढ़ावे,
अजिर-अजिर में मंगल गावे।
पर अब यों सुनने में आया
मायापति के बदले माया—
पैठ गई मन्दिर के भीतर
नाच रही है रुचिर रूप धर।
मुग्ध चकित हैं भक्त-पुजारी,
अमर शक्ति हरि-भक्ति हमारी
क्या सचमुच ही चली गई है?
क्या सुबुद्धि भी छली गई है?

किन्तु हमें विश्वास न होता धर्म-हीन है आर्य-धरा,
हराभरा यह देश हमारा क्या छायेगी कुमति-जरा?
तनिक कुसंगति के परदे में ज्ञान-गौरवित दीप दुरा,
आर्य गिरा-पिक जरा मौन है लख कर भ्रममय तिमिर घिरा।

आर्य देश यह वही सनातन
सब सुख-साधन वही पुरातन
वही धरा-धन गगन वही है
उपवन मृदु वन सघन वही हैं,
वेही विन्ध्य-हिमाचल गिरिवर,
वही रसा रस-श्यामल उर्वर,

है सुर-सरि सी सरिता वेही ;
वही आर्य-वंशज है गेही।
पर वे गौरव-चन्द्र कहा है ?
पुण्य-केन्द्र मनुजेन्द्र कहा हैं ?
वह अतीत नर-रत्नों वाला
नहीं रहा है वह उजियाला।
लगता है सब फीका फीका,
सूख गया रस नीका जीका।
निज निवेश है आज पराया,
तभी अँधेरा सा है छाया।

यों गान्धी ने घूम घूम कर मातृ-भूमि को देख लिया,
जब सुपूत यह गया निकट में जननी ने सब भेद दिया।
और चिकित्सक बेटे ने भी क्षण में उचित निदान किया ;
कुलधर चला जुटाने औषध सेवा का व्रत ठान लिया।

विश्व-वन्दिता आज वन्दिनी
म्वय दुखित है आज नन्दिनी।
रुचिर अजिर की यह हरियाली,
अरु सुवर्ण की मुक्ता-थाली,
आज पराये वश में जाकर.
जला रही हैं हमें चिढाकर।
राज-भोग पाकर भी भूखी
जननी हाय क्षुधा से सूखी !

गैरिक-वसना काँप रही है,
कन्था में तन ढाँप रही है।
कन्था में भी कितने चिथड़े
देख शिशिर को आता उखड़े!
राज-वसन मणि मण्डित सारे
पर-वश है सुख-साज हमारे।
भारत-लक्ष्मी है पर-चेरी,
हे विधि! कैसी गति यह तेरी?

धिक धिक हमसे कोटि जनों को जो जीवन से अनुरागे;
व्यर्थ स्यार हम जगमें जनमे यदि न नष्ट अबभी जागे।
ओ गान्धी! सेनापति निश्चल हमको मग दिखलाता चल,
उथल-पुथल कुछ करदे ऐसी अतल वितल तक हो हलचल।
कहीं राह के गिरि-संकट में प्राण भले ही हम देदें,
ऐसा मार्ग दिखा जो कोई कायर हमें न फिर कहदे।

यों गान्धी ने किया पर्यटन,
देश-दशा का किया अध्ययन॥
जान लिये कष्टों के कारण।
अब करने को रोग-निवारण—
चले परीक्षण करने गान्धी,
नव-जीवन-रस भरने गान्धी।
घूम घूम कर भारत भर में
टिके अहमदाबाद नगर में।
साबरमति-सरिता के तट पर
रमे महात्मा गान्धी यतिवर।
शुभ सत्याग्रह-आश्रम सुन्दर
हुआ प्रतिष्ठित इसी जगह पर।
रुचा अहमदाबाद नगर ही,
इस गुजराती को निज घर ही।
खेमे यहीं लगाये इसने,
गेह-मोह कब छोड़ा किसने।

इसे महात्मा माना हमने पर इसने भी पक्ष किया;
आखिर इस प्रान्तीय भाव ने मोहन को भी मोह लिया।
भारत का इतिहास यहीं से लिखना था विधि को आगे,
धन्य प्रान्त गुजरात हमारे सुप्रभात तुमसे जागे।

यहीं प्रकट होकर 'नव जीवन' अखिल देश में विस्तरित हो-
विहग करें नव-रव पय पीकर दशों दिशायें सुरभित हों।

सत्याग्रह की हुई स्थापना,
दलित हिन्द की मौन प्रार्थना
प्रभु ने आज सुनी कुछ मानो,
दशा आज से पलटी जानो,
जो प्रवीण मोहन रण-नायक
सुधी विज्ञ भट प्रभु का पायक
सचमुच आज हिन्द में आया,
उसे आज ही हमने पाया।
ऐसा सिद्ध यात्री यति घर में,
अब होवेंगे यज्ञ अजिर में।
भारतीय अफ्रीकावाला,
वही वही यह गांधी काला।
देख तनिक नेटाली गोरे!
देख इसे प्रभुता-मद बौरे!
वही जिसे तूने था मारा,
तथा रेल से खींच उतारा।

आज उसी ने स्थापित की है कैसी पावन मख शाला।
कहाँ मिलेगा होता हँस-हँस इतनी बलि देने वाला?
श्वेत दम्भ ओ अफ्रीका के क्यों न तुझे हम धन्य कहें?
धन्य क्रूर आघात तुम्हारे जिससे अमरित फूट बहें।

देव गगन मे मुनि-जन वन मे कैकेई के गुण गावे :
तभी पुण्य-मर्यादा विकसे तभी राम वन मे आवें।
जिससे सीधा सा 'वैरिष्टर' महामहिम नर-राज बने,
जिसके गौरव-चरित-सुमन-दल वाणी-मालिन मुदित चुने।
आज ऊर्वि है गर्वित जिससे मानवता को मान मिला,
खिला देख जिस यश-उपवन को नन्दन-वन का हृदय हिला।

आश्रम में थी शान्ति बरसती,
साथ साधना-वेलि विकसती।
जब गोधूली वेला आती,
मन्दिर मन्दिर दीप जलाती,
प्रभु-पद-ढिग सन्ध्या सखि गिनकर,
जब धरती कुछ तारे चुनकर।
प्रकृति-खगी गति-पक्ष समेटे,
अङ्गों में श्रम-शान्ति लपेटे,
महानीड में तरु-अम्बर के
जाती है आलस में भर के,
तिमिर-कुँअर को बिठा गोद में
लखती जब मुख चूम मोद में।
किंवा नृत्य-परिश्रम दिनभर
करके प्रकृति-नटी जब आखिर,
मोह-भ्रान्ति में भटक हारती,
तब प्रभु-पद में हृदय वारती।

अब उतारती स्वजनि आरती नभ-मन्दिर में दीप जुटा,
सान्ध्य-शान्ति लिए मानो सगिका घटा मन-मद बढी जटा।
आश्रम में भी सन्ध्या-वेला सुधा-प्रदीप जला जाती
स्वर में छिप कर गिरा-कुमारी मधुर आरती थी गाती।

यह सन्ध्या की प्रेम-माधुरी
सजती प्रति दिन विनय-बासुरी।
सत्याश्रम के शान्त अजिर में
राग-विरागभरे मृदु स्वर में
सारे आश्रमवासी मिलकर
सदा प्रार्थना करते मिलकर।
तथा मध्य में गान्धी रहते,
स्नेह-शान्ति के सोते बहते।
आश्रम-वासी मणियें पावन,
सभी सुघड सम सरल सुहावन,
गान्धी जैसा मेरु निराला
यों यह आश्रम वाली माला—
प्रतिदिन प्रभु-चरणों में चढता
प्रति सन्ध्या की शोभा बढती।
योंही निशि के बाल-समय में
जब अम्बर के नील हृदय में—

प्रेम-भाव प्रभु स्वर्गाधिप के तारावलि में छन्द कहे,
जब उषा की अगवानी में शीतल मन्दसमीर बहे।

तंत्रमर

आश्रम-वासी सन्ध्या की ज्यों माधव-गीता गाते थे;
मानो प्रतिदिन रिझा नाथ को नवविहान फल पाते थे।

पनप रही थी यों पावनता,
मानवता की मन-भावनता।
आया अद्भुत शिक्षक गान्धी,
अद्भुत ही मर्यादा बान्धी।
नर से नर की बन्धु-भावना
सिखा रहा था साम्य-साधना।
कहता प्रति नर प्रभु का मन्दिर।
प्रति उरमें प्रभु-प्रतिमा सुन्दर।
मनुज तुच्छतम निज को माने,
तनिक सत्य को तब पहिचाने।
शान्ति-नगर की डगर यही है,
यही अमर-पथ सदा सही है।
राम-धनी को गर्व न भावे,
उन्हें सरल का शील सुहावे।
चले फूल सा हलका होकर,
प्रभु-चरणों में चढे वही नर।
भारी तो प्रभु-गौरव-गरिमा,
केवल सत की प्रस्तर-प्रतिमा।

शेष वस्तु सब काल-तुला पर चढती जावे तुलने को;
प्रभु को तजकर गर्व शेष का बना धूलि मे मिलने को।

नये व्यास ये गान्धी आये,
भाव इन्हें ऐसे ही भाये।
'बनो तुच्छतम' मन्त्र सिखाया,
हमें नया आदर्श दिखाया।
वह मानी की महत्व-कामना,
नर-पुङ्गव की शौर्य-साधना,
स्वत्व-परिधि को बहुल विपुल कर,
बदली इनने मूल्य बदल कर।
पर सवर्ण की वर्ण-व्यवस्था,
द्विज की अगम दुर्ग सी सस्था,
वह मर्यादा उच्च हमारी,
ऊँच नीच की परिखा सारी,
तैने सीमा तोडी गान्धी!
कौन कहे मर्यादा बान्धी?
नरता को निस्सीम किया है,
मुक्ति-द्वार-पट खोल दिया है।

सभी विभाजक पूरा बाँटे शेप कहाँ? निजता खोते;
लघुतम सख्या का मिप लेकर सत्य महत्तम तुम होते।
तभी तुच्छतम तुम बनते हो अम्बुधि में खोजाने को,
अणु की अणुता तज देने को महा सिन्धु कहलाने को।

साम्य-भाव स्वीकार कराने,
शिक्षा को व्यवहार बनाने,

अभी लगा था आश्रम-उपवन,
सीख रहे थे अलि-गण गुंजन।
किन्तु नियति ने मधु उपजाया,
साम्य-सुरस को सुलभ बनाया।
आया अवसर मधुर अचानक,
हरिजन दूदा भाई नामक—
सपरिवार आश्रम में आया,
इस जीवन ने उसे लुभाया।
ठक्कर बापा हुये सहायक,
दलितों के द्विज-सेवक-नायक,
इनही ने दूदा को भेजा,
आश्रम के हित पुण्य सहेजा।
आया हरिजन-रत्न अछूता,
उचित मूल्य मोहन ने कूता।

इस अछूत से गान्धी-गौरव सँजा स्पष्ट अरु पुष्ट हुआ,
प्रथम हृदय में फिर आश्रम में दूदा बन्धु प्रविष्ट हुआ।

गुह सखा राघव को भाया,
उसे स्नेह से हृदय लगाया।
दूदा गान्धी-गृह में आया,
बन्धु-भाग आङ्गण में पाया।
दलित-बन्धु को हृदय बिठाना,
तनिक दूर से स्नेह दिखाना,

यह भारत में कठिन नहीं है,
इससे छूत न लगे कहीं है।
किन्तु स्पर्श में पाप भयंकर,
बड़े भाग्य जो लसे न अम्बर!
फिर अछूत को बन्धु बनाना,
साथ बैठ कर भोजन पाना,
एक भवन में साथ विचरना,
एक अजिर मे क्रीडा करना,
दुष्कर है यों घरमें लेना,
सहज दलित को दिल देदेना।

यदि कोई ठक्कर बापा सा कृती दलित को अपनावे,
आर्य-हर्म्य की पावनता मे उथल पुथल सी मच जावे।
सदा अछूती पावनता को क्यों सवर्ण छूवे पाकर?
भगे दासता द्विजता की सब यह अछूत निधि अपनाकर।
ज्यों कृशानु मे घृत-धारा से फैले कान्तिमई ज्वाला,
त्यों द्विजता में दलित-परश से बढ़े कोप मिप उजियाला।

गान्धी-कुल में दूदा आया,
साथ परीक्षा-संकट लाया।
हुये विरोधी धनी सहायक,
छुआछूत के प्रबल विधायक।
अब अर्थाश्रय रहा न कोई,
आश्रम ने द्रव्याशा खोई।

छिपे सभी उत्साही दानी,
दुर्लभ हुआ कूप का पानी।
आश्रम-वासी निज कूँए पर
जाते भी यदि साहस भर कर,
कूँए का रखवाला माली
लड़ता उनसे देकर गाली।
पर आश्रम था सत्याग्रह का
क्यों होता भय किसी तरह का?
सहते जाते सब कटुवानी,
स्वयं खींचते गान्धी पानी।

रुका न इनका पानी भरना रुकी हार कर कटुवानी,
जो माली था तीव्र विरोधी हुआ वही पानी-पानी।
महारथी दुश्शासन हारा थकी न पाञ्चाली नारी,
कभी न सहने वाला हारे मदद करे प्रभु गिरिधारी।
घट घट की हाटों मे बैठा सबको समुचित मोल कहे,
किन्तु दलित का हृदय बहे जब प्रभु की भी क्रय-बुद्धि बहे।
देख दीन की गीली कोडी प्रभु की करुणा छलक पडे;
अरु विनिमय में रक-हृदय में मञ्जु भक्ति-मणि छूट झडे।
कर से खींचा कूप-नीर अरु स्नेह भरे दृग-डोरों से-
हृदय-नीर माली का खींचा मृदु मुसक्यान झकोरों से।

विप्र वैश्य बहु मिलकर बोले—
"आज धर्म के आसन डोले।

मलिन छूत आश्रम में फैली,
गान्धी से है द्विजता मैली।
उसे जाति से करो बहिष्कृत,
यही दण्ड है उसका समुचित।
निज समाज तो उसे न भाया,
भंगी को है हृदय लगाया।
जो अछूत के साथ रहेगा,
उसे वैश्य फिर कौन कहेगा?
स्वयं हुआ वह हमसे न्यारा,
हम क्यों दें सहयोग हमारा।
देखें आश्रम कहाँ चलेगा?
पैसा एक न उसे मिलेगा।
धर्म-भ्रष्ट को सदा कष्ट हों
पुण्य नष्ट हो, देव रुष्ट हों।

खिस्तानो मे बस कर उसने रीति यावनी स्वीकारी,
सूक्ति 'स्वधर्मे निधन श्रेयो' लगे न पतितो को प्यारी।
आर्य-कोष की सस्कृति-निधि को ये अज्ञानी क्या परखें?
पूत वेद के दिव्य दृश्य को अन्धे नर कैसे निरखे"?

यों आश्रम पर विपदा आई,
बढी बहुत धन की कठिनाई।
असर हुआ सहसा कुछ ऐसा,
रहा कोष में एक न पैसा।

जब अछूत को दिया सहारा,
जोड़ा उससे भाईचारा,
गान्धी! द्विजता गई तुम्हारी,
तुमने तोड़ी रूढ़ि हमारी।
कौन कहे तुम पूत दूत हो?
अब तो केवल तुम अछूत हो।
पर अछूत शशि सबको भावे,
वृथा चन्द्र द्विज-राज कहावे।
घर घर विधु-यश-किरणें फैलें,
चमकें आङ्गण उजले मैले।
किसने छूआ पुण्य-भानु को
ज्वलित तपस्या-यश-कृशानु को?

हे अछूत! तू सूर्य अनल सम पुण्य-तेज से कलुष हरे,
जला जला कर कलि-कीटों को विश्व-छूत को पूत करे।

व्यर्थ अग्नि की अग्नि-परीक्षा,
काष्ट-भक्ष्य क्या देगा शिक्षा?
काठ कठिनता कुहरा पाकर,
खिलें अधिक बुध अनल प्रभाकर।
गान्धी को जब प्रभु के पथ पर
मिलते कष्ट-सहन के अवसर,
मानो मन को मिले सहारा,
मिल जाता है उन्हें किनारा।

जो दूदा था विपदा लाया
अब वह प्यारा हुआ सवाया।
जब आश्रम में चिन्ता फैली,
हुई न इनकी मुख-छवि मैली।
बोले मोहन धीरे हँसकर—
—खिले सोम ज्यों नीर बरसकर—
"प्रभु ने आज किया मन-चाहा,
स्वय मिला नव-जीवन आहा।

मन का द्विजता-दभ हमारा कहीं कदाचित रह जाता,
अगर हमारा दूदा भाई यहाँ न आश्रम में आता।
अब अछूत होकर के हम भी दलित-मुहल्लों में जावे,
छूत मिटावे जडें खोदकर शिष्ट-गीत मिलकर गावे।
भले करें द्विज हमें बहिष्कृत यदि हरि-जन अपना लेवें,
निज जन जान हमे फिर हरि भी भेजेंगे करुणा मेवे।"

गान्धी तुमने भली विचारी,
सारी ही कुल-रीति विसारी।
वैश्य-वंश-संभूत पूत तुम,
स्वयं बने हो क्यों अछूत तुम?
उन्नति का है आज जमाना,
क्यों पहनो नीचों का बाना?
कहो कहो मोहन क्या कहते
गिरि से गिर क्यों नीचे बहते?

क्यों प्रपात-यश झरते हो तुम ?
गिर कर व्यर्थ बिखरते हो तुम ?
अथवा तेरी रीति यही है,
अमर-नगर की नीति यही है।
इसीलिये क्या गंगा पावन
निम्न-गामिनी लगे सुहावन ?
प्रभु के चरणों में से चलके,
शंभु-मौलि पर खेल उछलके,
गगन-चुम्बि गिरिवर शृङ्गों से नाच धराधर अङ्गों पर;
नभ-प्रवाहिणी क्रीड़ा करती क्षिति की हृदय-उमंगों पर।
नीचे ही को बहती जाती,
मुदितमना चिरभैरव गाती।
यह निज पथ पर चलती जाती,
हरी रहे वसुधा की छाती।
विनय तुम्हारी गान्धी ऐसी,
निम्नगामिनी सुरसरि जैसी।
स्नेह-सलिल में शील-लहर है,
रस सरसाती आठ पहर है।
पुण्य-तटा है चिर कल्याणी.
जिसको छूकर पाकर प्राणी—
धीरे धीरे निज मन नीरे,
वास करे यदि गंगा-तीरे,

ऊसर उर भी उर्वर होवे,
हरे धान से हृदय सँजोवे।
प्रीति-कला-पटुतामग रुचिकर
भाषण-घाट रचे हैं सुन्दर।
इस हिम-गिरि के मानस से यह सुर-सरि नीचे गिरती,
धन्य जाह्नवी निम्न-गामिनी भव का कलि-मल हरती।
धनाभाव-वश आश्रम तजकर,
हुये गमन हित गान्धी तत्पर।
तथा शिष्य सहयोगी सगी
प्रस्तुत थे सारे इकरंगी।
दलित-मुहल्लों में बसना था,
स्वय हीन होकर हँसना था।
गान्धी बोले 'उठो सँभालो,
अपना सब सामान निकालो।
चलो स्वधर्मे निधन भला है,
सदा त्याग से धर्म पला है।
निज मग पर जो मनुज चला है,
उसे मिला सत्पथ उजला है।'
मौन हुये यों कहकर मोहन
मुदित मुग्ध थे सभी शिष्यजन।
विवश दैव ने किन्तु उसी क्षन
किया अचानक पट-परिवर्त्तन।

एक अपरिचित सेठ कहीं से सहसा आश्रम में आया ;
दान-हेतु यह विनई सज्जन द्रव्य-राशि पुष्कल लाया।
कहा सेठ ने नम्र-भाव से 'यदि तन्दुल स्वीकार करें ;
कृती आप इस सेवक का यों बहुत बड़ा उपकार करें।'
यों कह कर वह दानी सज्जन झट मोटर से चला गया ;
साधु-वाद क्या लेता उसको सुधा-वाद था मिला नया।
रहे पूछते नाम-धाम ही उत्सुक आश्रम-वासी तो ;
तनिक द्रव्य में लूट लेगया वह तो मधु-रस-राशी को।

रहे देखते वे द्विज दानी ,
झूठी माया के अभिमानी।
आश्रम था उन्नति के पथ पर ,
पुण्य-कोष का सम्बल पाकर।
छांह करें घनश्याम बांह की
घाम लगे फिर कहा राह की ?
हरिश्चन्द्र जब श्वपच बने थे ,
देवों ने भी शीष धुने थे।
नृप ने मरघट-मार्ग गहा था ,
मघवा भय से भाग रहा था।
विधि को याद पुरानी आई ,
तब थी कैसी विपदा छाई।
सत्य-सन्ध के अमित तेज से
उठे ईश थे शेष-सेन से।

बूढे विधि ने बुद्धि दिखाई,
अबकी बिगडी बात बनाई।

उचित समय पर धन्य श्रेष्ठि मिष हरिश्चन्द्र को मना लिया,
बूढे द्विज ने द्विजता-यश का कुछ बानक सा बना दिया।
रहा फूलता फलता दिन दिन सत्याग्रह आश्रम-उपवन;
साबरमति के तट का मधु-वन इन मोहन का हरा भवन।

४

बीता एक वर्ष यों रहते,
पुण्य कथा आश्रम में कहते।
आश्रम-तरु भी था कुछ विकसा,
एक दिवस गान्धी को सहसा—
स्मरण हुई सब बात पुरानी,
अफ्रीका की कष्ट-कहानी।
दंभ-कथा गोरे धनिकों की,
विविध व्यथा काले श्रमिकों की।
शुभ सत्याग्रह आन्दोलन वह,
विग्रह का मृदु संशोधन वह।
जिसमें निर्बल सफल हुआ था,
दंभी का बल विफल हुआ था।

फिर भी गिरमिटियों का जाना,
दीन श्रमिक का गला फँसाना।
अब भी बिल्कुल रुका नहीं था,
श्रमिक दैन्य-वश थका नहीं था।

दशा देख गान्धी ने सोचा क्षुधा हिन्द में व्याप रही,
राज-नियम बिन गिरमिटवाली श्रमिक प्रथा यह रुके नहीं!

बस विचार का आना ही था मानो कार्यारम्भ यहाँ;
वहाँ देर क्यों सेवा में हो पर-हित-व्रत है धर्म जहाँ।

गर्हित गिरमिट की श्रम शैली,
श्रमिकों में थी ज्वर सी फैली।
इसी प्रथा से एक अवधि तक.
श्रम करने को निशिदिन भरसक
श्रमजीवी इकरारी होते,
स्वेच्छा से आज़ादी खोते।
व्याध-जाल में मृग फँस जाते.
दीन बहुत पीछे पछताते।
थी यह आंशिक दास्य प्रणाली,
अफ्रीकन गौरों की पाली।
इसका मूलोच्छेदन करने,
जीवन में रस नूतन भरने,
चला अग्रणी सत्याश्रम से,
अपने पथ से अपने क्रम से।

प्रथम लक्ष्य का किया प्रकाशन,

अखिल देश ने दिया समर्थन।

महामना मुनि मालवीय से ब्रह्मर्षी बाहर आकर;
निज सात्त्विक सहयोग मिलाने चले कृती अवसर पाकर।
शाही परिषद में भी इनने सम्बन्धित बिल पेश किया,
किन्तु विदेशी शासन ने तब तनिक उपेक्षित ध्यान दिया।
प्रमुख यहाँ पर चेम्सफोर्ड थे शासन के अधिकारी तब;
उनसे मिलकर गान्धीजी ने अपने भाव बताये सब।

मिला न उनसे निश्चित उत्तर,

सहज न मिलती छिनी धरोहर।

तब यह सत्याग्रह-अभ्यापक

करने को आन्दोलन व्यापक,

नगर नगर में लगा घूमने,

करि-वर सर में लगा झूमने।

जब इस घनने नाद सुनाया,

जन जन का मन-मोर नचाया।

इधर मुम्बई और कराची,

नयी स्फूर्ति सी पाकर नाची।

उधर पूर्व में कलकत्ते तक,

नव उमग थी उमडी भरसक।

हुई सभायें जगह जगह पर,

लगी फैलने चर्चा घर घर।

वक्ताओं का स्वर था बदला,
रहा न था छिछलापन पिछला।

श्रोताओं के दिल भी मानो रहे न पहले के तलपर;
उकस-उकस कर उछल रहे थे चुम्बक गान्धी के बल पर।
लगीं उमड़ने ओज-वीचियाँ उर उर मे उल्लासमई,
कई देवियाँ भी गृह तज कर साथ हुईं लख ज्योति नई।

जब कुछ बढी जोश की धारा,
तब शासन ने पुनः विचारा।
यह गान्धी ग्रह-दशा-योग सा
है संक्रामक छूत-रोग सा।
अफ्रीका में जब जा फैला
गली-गली में मचा झमेला।
अब यदि यह भारत में वैसे
मुक्त करे जनता को भय से,
क्षण में सारी शान मिटेगी,
शासन-सत्ता स्वयं हटेगी।
त्रिस कोटि जन जब उठ जावें,
तथा भेद निज बल का पावें,
क्या न करें ये त्रिजई जुडकर?
प्रलय-घटा से मेघ घुमड़ कर।
भला न जो ये निज को जानें,
तभी राज-मर्यादा मानें।

राज-नियम के संभ्रम-भय की एक वार शङ्का निकले ;
कहॉ टिके प्रभुता की सत्ता प्रजा-हृदय जिस दिन वदले।
असहयोग का राज-रोग फिर शासन के तन मे छावे ,
तुच्छ प्रश्न की खातिर क्यो यह खतरा मोल लिया जावे ?

यही सोच कर राज्य-वर्ग ने श्रमिक-प्रथा को वन्द किया ,
प्रथम मोर्चे मे गान्धी ने दुर्ग धाक से जीत लिया।
यों गिरमिट की क्रूर कालिमा दास्य-प्रणाली अव न रही,
उत्तम जन प्रारब्ध कर्म को तजें अधूरा कभी नहीं।

धरा उर्वरा चम्पारन की
क्यारी भारत के मधु-वन की।
है रसाल से भरी रसीली ,
कुज-पुंज से सजी लजीली।
खिले मदभरी आम्र-मजरी ,
कूजें कोइल भूमें भ्रमरी।
ऋतुपति की प्यारी अभिरामा ,
सजी आज यह तरुणी श्यामा।
थी कुछ पहले यही सजीली
पुती नील में परवश नीली।
भय से साहस भगा हुआ था ,
दाग नील का लगा हुआ था।
कटु प्रहार से हार चुकी थी ,
सुख सारा सहार चुकी थी।

प्रिय विहार में पर-प्रहार था,
हार हरा निज हमें भार था।
विवश वहाँ के कृषक हुये थे निराहार के अभ्यासी;
लुटे नील की खेती से थे सीधे चम्पारन-वासी।
हरी भूमि के कोमल तन पर प्रहार क्रूर हुये इतने;
जगह जगह पर थे दीना के नीले दाग पडे कितने।

प्रथा तीन कथिया के मारे
बहुत दुखी थे कृषक बिचारे।
था न सहायक इनका कोई,
आशा श्रद्धा भी थी खोई।
किन्तु भूमि निर्बीज न होती,
छिपे सीप में रहते मोती।
कुछ किसान थे वीर हृदय से,
राजकुमार शुक्ल के जैसे।
कृषक शुक्ल यह सरल नेक था,
रखता अपनी एक टेक था।
कीर्ति सुनी गान्धी की इसने,
मोहा इसको शशि के यश ने।
उनके पीछे पडा कृषकवर,
तजे चकोर न जैसे विधु-कर।
जहां जहां गान्धी थे जाते,
वहीं शुक्ल को आगे पाते।

शुक्ल पक्ष में ले ही आया कुमुद-कान्त को वह आखिर;
चम्पारन के कैरव-वन में लाया बन्धु-जनों खातिर।

तथा सत्य के शुक्ल-पक्ष से धन्य कलाधर नित्य बढ़े,
क्रिया-कला के सोपानों से क्रमशः नर-विधु सदा चढ़े।

गान्धी चलकर पटना आये,
मिले शुक्ल को फल मनभाये।
कब बिहार को भूले मोहन?
सदा भ्रमर को भावे मधु-वन।
कार्यारम्भ किया जाते ही,
लगे शोध में पथ पाते ही।
सभी नील की कोठी वाले
स्वार्थ-दम्भ में थे मतवाले।
कृषकों को ये बहुत सताते,
अनाचार में ये इतराते।
ज्यों गिरमिटिये श्रमिक दुखित थे,
वैसे ही ये कृषक व्यथित थे।
करने लगे निरीक्षण गान्धी,
नियमित कार्य-प्रणाली बान्धी।
मिले विविध सहयोगी इनको,
कौन तजे उपयोगी धन को?

मौलाना मजहुलहक से निर्भय सरल उदार सखा;
सर्व प्रथम गान्धी ने जिनका मधु से मीठा प्यार चखा।

व्रजकिशोर से पटु वकील थे तन-मन-धन कर धरे मिले ;
जन-सेवा के शुचि तड़ाग में जो सरसिज से सदा खिले।
कृपलानी आचार्य विनोदी सुधी स्नेह के गिरि निर्झर,
गान्धी गौरव-गंगा में जो रमे भिन्न निजता तज कर।
राज-हंस राजेन्द्र बिहारी गान्धी-मानस में विहरे,
रहे न गुण-मुक्ता-धन विखरे चुने बहुत रहकर नियरे।
नीर-क्षीर के गहरे ज्ञानी। सारे मुक्ता मत गहरे;
निशिदिन तट पर ठहरे रहकर यों न अकेला दे पहरे।
एकाकी इतना मत सहरे, सौम्य सरलतम रुक रहरे;
अति मुखरा तव मौन विनय को देख अहिंसा भी शिहरे।

त्यागी योग्य मिले सब संगी,
किसी वस्तु की रही न तंगी।
बहुरि अहिंसक गान्धी पहले
कृषकों से मिलने के बदले,
मिले नील कोठी वालों से—
धनी सुयोधन शिशुपालों से।
मिले 'कमिश्नर' से भी जाकर
समझाया निज लक्ष्य बताकर।
प्रतिपक्षी का पक्ष समझना,
उससे व्यर्थ न कभी उलझना,
रीति अहिंसा-निधि-संग्रह की,
नीति यही है सत्याग्रह की।

किन्तु न मदमाते जन मानैं,
नहीं धर्म-पथ वे पहिचानैं,
व्यर्थ हुये यों सभी निहोरे,
झुके न वे प्रभुता-मद-बौरे।

सावन के अन्धे थे इनको गान्धी हरे हरे लगे,
पता न था यह रग और है जिस पर गौरव छटा जगे।
अरे 'कमिश्नर'। अब तक तैने सरल विहारी कृषक ठगे,
यह सावन की श्याम-घटा है सब निदाघ का दभ भगे।
अस्थि-मात्र-अवशिष्ट देह यह यदि तू इससे भिडे अडे,
कृषक-रुधिरके लुब्ध व्याघ्र रे। मुड़कर तव नख दन्त झडे।

सत्याग्रह—आचार्य हमारे
लगे कार्य में आर्य हमारे।
कृषक कष्ट की स्पष्ट कहानी
अष्ट-याम लिखते थे मानी।
लगे व्यथा की सत्य जॉच में,
यथा नील की नील आँच में
झुलस रहे थे कृषक इधर तो,
हुलस रहे थे धनिक उधर को।
व्यस्त हुये सहयोगी सारे
काम बॉट कर न्यारे न्यारे।
मोतीहारी और बेतिया
जहा नील की घनी खेतिया—

करते पर-वश दीन कृषक जन,
चले उधर ही पहले मोहन।
अभी चले ही थे हितकारी,
मिली इन्हें आज्ञा सरकारी—

"चम्पारन में वास तुम्हारा जन-हित का बाधक भारी,
उचित यही तुम बाहर जाओ तज अशान्त गति-विधि सारी।

विधि ने अवसर किया उपस्थित
थी यह गर्वित आज्ञा अनुचित।
हुये न गान्धी इसमें सहमत,
देख रहे थे विस्मित अनुगत
मानो कुछ नूतन धन पाया
नवालोक सा था कुछ छाया,
भग हुई आज्ञा सरकारी,
मानो सुनकर बात हमारी—
भाग्य देव न अबकी बारी
प्रथम बार थी कुछ स्वीकारी।
चला मुकदमा न्यायालय में,
पर थे प्रतिपक्षी ही भय में।
उधर सामने दोषी गान्धी
भद्र अवज्ञा के अपराधी—

अजब ढग से खड़े हुये थे घिरी घटा थी यश-रस की;
खिली नम्रता निर्भयता में जाने राष्ट्र छटा किसकी?

मोतीहारी के खेतो मे नया दृश्य था उधर खिला,
भय से मुरझे रण-खेतो में किस बादल का सुजल मिला?
सरल कृषक ने देखा सन्मुख अपनासा दुबला पतला,
गान्धी नामक नर है जिसका आशा टी सा वेष भला।
यद्यपि बिनटे फिरती निर्भय निरन्तर रहा है अन्तर मे,
एकाकी ही गरज रहा है अपने जैसे ही स्वर मे।
जैसे चमके चपला क्षण मे कृषक-हृदय का भय निकला,
देख भूमिका ही नवयुग की शासन का दृढ हृदय हिला।
राज-मार्ग अरु न्यायालय मे थे कृषको के दल बादल,
बदल रहा था समय आज तो उठी अनोखी सी हलचल।
कृषक भीरु ये वे ही तो है जो गन्ने से सदा पिले,
कौन मन्त्र वह जिससे इनमे ऐसे जौहर आज खिले?
दीन कमिश्नर ने तो इनको निर्बल भीरु था जाना,
किन्तु तेज इस नये कृषक का तनिक न उसने अनुमाना।
इसीलिये तो राजदण्ड की धमकी देकर स्वय फॅसा,
शासन की यह दुविधा लखकर खूब हमारा कृषक हॅसा।

लखी भीड मे भरी कचहरी
तथा दृष्टि जनता की गहरी।
उधर वीर अपराधी निर्भय
खडा हुआ था हॅसता सविनय
स्वय दोष का इकरारी था,
अत दण्ड का अधिकारी था।

बुद्धि विकल थी राज-पक्ष की,
नीति पंगु थी आज दक्ष की।
मजिष्ट्रेट था भौचक जैसा,
कभी न अवसर आया ऐसा।
आगे पीछे लखकर दलदल
हुई दीन की मति-गति चचल।
आखिर उसने अवसर टाला,
निर्णय को आगे पर डाला।
अधिकारी ने भली विचारी,
एक बार तो टली बिमारी।

न्याय-भवन से बाहर आकर गान्धी ने नव दृश्य लखा;
कृषक सखा थे खड़े सहस्रों सबने नव मधु-स्वाद चखा।

मिला निबल को सबल सहायक,
नर ने पाया था नर-नायक।
ज्योति-केन्द्र मे किरणें निकलीं,
जब वे उर उर में जा फैलीं—
कुभय-दुरित का मिटा अँधेरा,
घट-घट-वासी प्रभु ने प्रेरा,
पात्र-भिन्नता भाग गई थी,
बिखरी किरणें एक हुई थीं।
देह-धर्म से कृषक दूर थे,
सत्य-तेज से हुये शूर थे।

जिस शुभ पल में देह-ज्ञान से
विलग रहे नर अहमान से,
उस पल में भय उसे कहे क्या?
मृत्युंजय को विषय गहे क्या?
पूर रही थी प्रेम-पूर्णिमा,
कृषकों में था उगा चन्द्रमा।

मोतीहारी के खेतो ने लखा न ऐसा दृश्य कभी;
राज-दण्ड की भीति भगी थी अभय खड़े थे कृषक सभी।

स्वत्व गँवाये पुलिस खड़ी थी,
राज-मार्ग मे भीड़ अड़ी थी।
कृषक जिन्हें लख काँपा करते,
जिनकी मुख-रुख भाँपा करते।
वे सब अफसर एक ओर से
खड़े हुये थे आज चोर से।
आज नया अफ़सर था आया,
जनता ने निज भर्त्ता पाया।
अनुशासन था यहा स्नेह का,
मोह मिटा था देह-गेह का।
पल में पाशा पलट चला था,
तख्त नील का उलट चला था।
दशा देखकर तज कर शेखी
त्रुटि अपनी शासन ने देखी।

क्रान्ति-लहर को देख फैलते,
देख कृषक को आग खेलते,
अरु गान्धी के दिव्य दुर्ग की देखी जब दुर्जय दृढ़ता,
कौन शूर उन विद्युत्गर्भित प्राचीरों पर जा चढ़ता?
चतुर गवर्नर ने आगे हो वापिस सब अभियोग लिया,
तथा नील की उचित जाँच का गान्धी को अधिकार दिया।

शुरु हुई निष्पक्ष जाँच अब,
कहाँ साँच को लगी आँच कब?
कृषक सैकड़ों प्रति दिन आते,
गान्धी को निज दुःख बताते।
कड़ी जिरह उनसे की जाती,
त्रुटि न कहीं कुछ रहने पाती,
तब बयान लिख लेते लेखक,
हुये विविध सज्जन जन-सेवक।
चर-विभाग के कुछ अधिकारी
रहते जो अफसर सरकारी,
वे भी मुग्ध हुये मधु चखते,
क्या सोने का रंग परखते?
गान्धी रहने देते उनको,
सत्य अहिंसा के शुभ धन को—
उन्हें देखने देते सुख से,
धन्य कहाते उनके मुख से।

उचित कड़ाई करे अहिंसक अपने पर या अपनों पर,
स्नेह-मान की छाया रक्खे प्रतिपक्षी के सपनों पर।
जो अपने बन चुके, प्रेम का मुखर भाग है व्यर्थ उन्हें,
मुखर मधुरता स्वत्व उन्हीं का जग कहता हो अन्य जिन्हें।
मिले निठुर कर्त्तव्य निजों को मौन आर्द्रता से गीला,
सत्य-अहिंसा-पथिक-हृदय मे दाग पडे प्रतिदिन नीला।

इधर जाँच थे गान्धी करते,
ग्रामों में भी रहे विचरते।
हाय ग्राम की हालत बिगडी,
सबके सुख की बाडी उजडी।
कृषक गोप गोधूली वेला
है मिथ्या सपने की खेला।
नयन-नीर मे पीर वही जो,
नन्द-हीर की चीर यही तो।
ये देसा गोपाल हमारे,
य है अग्रज हलधर प्यारे,
है विदेह मे दोनों देही,
गेह-हीन से दोनों गेही।
जोग रमाये भोग-विरागी
असन-बसन तरु के है त्यागी।
इन्हें न अन्न दधि-माखन भावे,
क्षुधा-योग की सिद्धि सुहावे।

नदी-तीर पर चीर रेशमी अब न धरे गोपी गौरी;
चुहलभरी वे चपल छोहरी रास न रचती रस-बौरी।
मोहन ने भी गोरस तजकर सीखी दृग-रस की चोरी;
नीरभरी दृग-पिचकारी से गौरी खेले अब होरी।
आज समय पलटा, है मोहन उपवासों के अभ्यासी।
अब न चुरा खावें दधि-माखन सभ्य हुये भारत-वासी।
तरुण व्यर्थ खेतों मे बैठे गूथा करते मालायें;
सरिता-तट पर या पनघट पर समय गॅवाती बालायें।
महिलाओं के कार्य घरेलू सब में था संगीत-भरा,
आॅगण खेत हृदय तीनों मे हरा खेल रहता बिखरा।
मधुर मलारें वे सावन की फाग बावली फागुन की,
हरे भरे त्योंहार हजारों धूलि नाचती आॅगन की।
आज समय का मूल्य जानकर हुये श्रमिक हम उपयोगी,
पर-सेवा-रत उपकारी है रहे न अब रागी भोगी।
ग्वाल-बाल रह मलिन धूल मे जाने पलते थे कैसे?
कृषक-बाल अब पुते नील मे नित्य कमावें दो पैसे।
तरुणी पावें छः छः पैसे तरुण कमावें दो आने।
बता सभ्य भारत। ये सुख के स्वाद कहाॅ पहले जाने?

ग्राम-दशा का दृश्य देखकर
हुये बहुत गान्धीजी आतुर।
अत कार्य करने को स्थाई
सौम्य योजना नई बनाई।

कई पाठ-शालायें खोली,
देते थे शिक्षा अनमोली।
उच्च कुलों के हीरे मणिया
आये त्यागी तरुण तरुणिया।
शिक्षक सेवक बनकर वेही
जुट गये लगे कार्य में स्नेही।
कस्तूरी क्यों पीछे रहतीं
क्यों न यहा गगा सी बहतीं?
बहन अवन्तिका बाई आई,
शाला मे गुण-माला लाई।
कई जुगल जोडी थीं आई,
प्रिया-सहित आये देसाई।

महादेवभाई थे तब तक रोग-भोग सब वहा चुके,
धन्य कृती गान्धी-मानस मे भक्ति-सहित थे नहा चुके।

ये अध्यापक देते शिक्षा
अरु करते थे रोग-चिकित्सा।
किन्तु स्वच्छता-लाभ बताते
आँखो में आँसू आ जाते।
तन पर चिथडा एक लपेटे
रहें मैल से लाज समेटे,
उसे सुखावें पहनें धोवें—
या आँसू से उसे भिगोवें?

कुल-वधुएँ मातायें! ऐसे
करें सफाई तन की कैसे?
अरे सफाई के उपदेशक!
आँख मूँदले रे अन्वेषक!
बता सफाई किसे न भावे?
किसे न शोभा-साज सुहावे?
उदर-विविर पर भरे न पूरा
एक वस्त्र भी रहे अधूरा।

कृष्ण। तुम्हारी कृष्णा दीना घर घर वस्त्र-विहीना है;
दुश्शासन से ग्राम दलित हैं वहाँ भार सा जीना है।
कीलित हुई भुजाये क्या जो हिंसा ऐसी देख रहे?
भले शस्त्र मत गहो सारथी! किन्तु न बैठो मौन गहे।

असन-वसन-रस-विभव-साज में
नगर-निवासी! डूब लाज में।
तुझे शील शोभा अति प्यारी,
धिक धिक संस्कृति सुरुचि तुम्हारी।
ग्राम ग्राम में नहर लगा कर,
सारा जीवन-सुरस मँगा कर,
ग्रामों का सब रक्त चूस कर,
नगर-उदर में उसे ठूँस कर,
किया ग्राम को निर्बल विगलित,
स्वयं अपच से होकर दूषित।

गर्व करे किस गुण का नागर
कपट-घत में उन्हें हराकर ?
किन्तु ग्राम में मोहन आये,
इनने नागर कई बुलाये।
ये ही तरुण गुणागर चाकर
नगर-नाम को करें उजागर।

धोने आये नगर-कलुष कुछ गान्धी-कुल के कृती तरुण;
इनके सरल चरण-चिह्नों पर उगें पुण्य के कमल अरुण।
श्याम वर्ण भी गुणाभरण से करें देश के क्लेश-हरण;
ग्राम-शरण में विचरण करके कीर्त्ति-वधू का करें वरण।

लगा फैलने गान्धी-कुल जब,
शासक होने लगे विकल तब।
दिन दिन मोहन अजिर-अजिर में
बढ़ते जाते थे उर-उर में।
तनिक समझ शासन को आई,
नील कमेटी एक बनाई।
परिणाम हुआ अभिमत नीका
जो था कृषक-वर्ग के जी का।
मिटी क्रूर तिनकथिया शैली,
रही नील से धरा न मैली।
धनी नील की कोठी वाले
शक्तिवान प्रभुता मतवाले

धन प्रभाव बल लेकर भरसक,
प्रबल विरोधी रहे अन्त तक।
किये कुटिल अरु घृणित कर्म भी,
लोभ-मोह-वश तजी शर्म भी।

किन्तु चिकित्सक ने थी खोजी नवयुग की नूतन शैली;
मिटे देह के नीले दागे सुख की हरियाली फैली।
चम्पारन की पुण्य भूमि पर अब न नील का राज कहीं;
एक सदी का जीर्ण रोग था धन्य धरा, वह रहा नहीं।

५

जब गान्धी थे व्यस्त इधर में,
उधर अहमदाबाद नगर मे—
श्रमिक-वर्ग मे फैली हलचल,
असंतोष बढता था पलपल।
धनिक-स्वार्थ से खींची जाकर
नीची थी मजदूरी की दर।
वृद्धि-हेतु अब श्रमिक अडे थे,
मिल-मालिक भी कडे पडे थे।
मन-मुटाव जब बढा परस्पर,
पहुँचे गान्धी अवसर लखकर।

उभय वर्ग को था समझाया,
किन्तु न बोध किसी ने पाया।
न्यायोचित थी माग श्रमिक की,
किन्तु अड़ी हठ-बुद्धि धनिक की।
न्याय-पक्ष गान्धी ने पकड़ा,
यद्यपि हृदय भ न-वश उमड़ा।

क्योंकि यहाँ के मिल-मालिक थे निकट सखा स्नेही इनके;
शूलभरा पर सत्य-पथिक-पथ विन्धते वन्धन तन-मन के।

सुजला साबरमति के तट पर
देख एक सुन्दर सा तरुवर,
श्रमिक-सभा गाती उद्बोधन,
मिले उसे थे नेता मोहन।
"रहो अहिंसक सदा आन पर,
भले प्राण भी जाय मान पर।
सदा सत्य की राह नेक है,
विश्व विजयिनी एक टेक है।"
श्रमिकों को यह शिक्षा भाई,
गान्धी ने हड़ताल कराई।
अम्बालाल उधर के नायक
धनिक-वर्ग के नीति-विधायक
मिथ्या हठ पर अड़े हुये थे,
धन की छत पर खड़े हुये थे।

इधर बहन अनुसूया इनकी
सच्ची शिष्या थीं मोहन की।
प्रतिपक्षी थे बहन सहोदर,
सत के जौहर गहन मनोहर।

वे गुजराती बल्लभ भाई मिले यहीं गान्धी-कुल में;
ढीठ मनसुखा सखा कार्यपटु धीर वीर मोहन-दल में।

सब हड़ताली एक पक्ष तक
रहे प्रतिज्ञा-पालक भरसक।
अब थी आने लगी शिथिलता,
बढ़ी दैन्य-वश अधिक विकलता।
थी हड़ताल उन्हें अब दुखकर,
प्रकट थकावट थी मुख-रुख पर।
पर मिल मालिक झुक न रहे थे,
धनी स्वार्थ की टेक गहे थे।
आशाहत हो श्रमिक विजय में
हुये कई अति उग्र हृदय में।
गान्धी यह सब जान रहे थे,
दोषी निज को मान रहे थे।
श्रमिक-हृदय का भय अरु संशय
मौन कष्ट था इनका अतिशय।
एक सभा में विधि-वश सहसा
निकल पड़ा प्रण मुख से ऐसा—

"उभय पक्ष के समझौते तक भोजन नहीं करूंगा मैं,
श्रमिक बन्धु निज टेक न छोड़े दोषी दण्ड भरूँगा मैं।"
रहे देखते श्रमिक स्तब्ध से मानो टूट पड़ी बिजली;
कड़ी छड़ी सी पड़ी हृदय पर शिथिल दशा सहसा बदली।

"निराहार रह यहां मरें हम,
किन्तु न प्रिय! उपवास करो तुम।
तजें न प्रण हम रहें आन पर,
क्षमा करो तुम अज्ञ जान कर"।
यों श्रमिकों ने नयन भिगोये,
कब गान्धी ने अवसर खोये?
"तुम्हें नहीं उपवास उचित है,
रहा आन पर यही बहुत है।
लगो खोज कर किसी काम में
कार्य बहुत हैं धरा-धाम में।
श्रमिक निबाहें टेक न क्यों हम?
अन्न कमावें करें परिश्रम।
चले सफल हड़ताल हमारी,
उचित आन प्रभु को अति प्यारी।
उपवासी मैं शान्त रहो तुम,
भ्रान्त भाव में अब न बहो तुम।"
रही न पर अनुसूया सहकर,
गिरे बहन के आंसू बहकर।

दण्ड भरे फौरन यह गान्धी स्वय न कुछ भी करे सहन;
सन्त-कुलों के पन्थ गहन हैं अश्रु-वहन क्यों करो बहन ?

शुरु हुआ उपवास यथा-क्रम,
सत्य-धनी का सनियम संयम।
शिष्य सखा अरु विविध श्रमिक-जन
उपवासी थे रहे प्रथम दिन।
पर जब गान्धी ने समझाया,
सत्य-धर्म का तत्व बताया,
मान गये क्या करते प्रिय-जन
बहुविधि अड़े तपोधन मोहन।
अम्बालाल सेठ पर अब तक
जमे हुये थे हठ पर निधड़क।
प्रेममई पत्नी पर इनकी
सगी बहन सी थी मोहन की।
अब घर में भी छिड़ी लड़ाई,
थी पहले तो बहन पराई।
यह गान्धी नीतिज्ञ लड़ाकू
बहुत बड़ा हृदयों का डाकू।

कभी न जीतो इसे युद्ध में, सेठ। वृथा क्यों हठ गहते ?
उचित यही पञ्चों के द्वारा सन्धि करो तुम दिन रहते।

शीघ्र सुमति धनिकों ने पाई,
योग्य पंच ने सन्धि कराई।

खुली गाठ जब खुली दिलों की ,
खुली इधर हड़ताल मिलों की ।
गान्धी ने अपना व्रत खोला ,
मगल-मोद बढ़ा अनमोला ।
धनिकों ने निज प्रेम दिखाया ,
श्रमिकों में मिष्टान्न बँटाया ।
एक टेक का सुसकर तरुवर—
सभा-भवन श्रमिकों का सुन्दर ,
उसके नीचे बँटी मिठाई ,
स्नेह-हास्य की हुई लुटाई ।
यहीं प्रथम शुभ टेक गही थी ,
यहीं प्रेम की व्यथा सही थी ,
अतः यहीं उमड़ा सुख-मगल ,
बढी वृक्ष की सौरभ निर्मल ।

किन्तु यहाँ भी हाय हिन्द की विपुल भूख की कटु छाया ,
लगी नाचने बेढक गति मे अधभूखो की कृश काया ।
हा नगे भिखमगे बालक देख मिठाई टूट पडे ।
मोहन आओ लूटो तुम भी देख रहे क्यों खडे,खडे ?
चाहे जितना नर-रस पीओ, यहाँ घडे है भरे पडे ,
यहाँ न कोई चुनने वाला लाख लाख दिल-फूल झडे ।
बड़े बडे महलो मे होगे माणिक-मोती कड़े-कड़े ,
किन्तु क्षुधा की निर्ममता के भाव-हीर तो यहीं जड़े ।

श्रमिक-प्रश्न में इधर रुके थे,
अभी श्वास भी ले न सके थे,
प्रश्न नया गान्धी ने पाया,
था अकाल खेडे में छाया।
वृष्टि बिना फसलें थी असफल,
कृषक-दृष्टि थी धुँधली निर्बल।
गये शीघ्र गान्धीजी खेडे,
लेकर प्रेम-पोत के बेडे।
निज नयनों से देखा आकर,
कृषक कष्ट में था अकुलाकर।
चतुर्थांश भी फसल नहीं थी,
भाग छूट की अतः सही थी।
पूरी छूट भूमि के कर से
कृषक-स्वत्व था राज-नियम से।
पर अधिकारी चिढे हुये थे,
प्रभुता-मद वश कुढे हुये थे।

चतुर्थांश से फसल जिले की बहुत अधिक है वे कहते;
ये प्रमाण सब मूक कृषक के परवश विफल हुये रहते।
गान्धी ने भी विविध रीति से शासन से अनुरोध किया,
किन्तु नम्र अनुनय पर किस दिन किस स्वामीने ध्यान दिया?

नम्र निवेदन उचिताराधन
विफल हुये वैधानिक साधन।

रहा न जब कोई भी चारा,
सत्याग्रह का लिया सहारा।
अनुसूया अरु वल्लभ भाई
आये महादेव देसाई।
शंकर इन्दूलाल सरीखे
व्रती कार्यकर्त्ता थे तीखे।
तरुण स्वय सेवक बहु आये,
खेडे में रण-बेडे छाये।
करी प्रतिज्ञा सबने मिलकर—
चाहे दमन-चक्र-तल पिलकर,
पूर्ण नष्ट तन-धन हो जावें,
पर हम तब तक कर न चुकावें;
जब तक समुचित स्वत्व हमारा
जाय न शासन से स्वीकारा।

किन्तु छूट की करे घोषणा स्वत्व मान कर शासन जब;
देने लायक धनी स्वय तब देंगे किश्त बकाया सब।

ग्राम-ग्राम में गान्धी जाते,
करबन्दी का लक्ष्य बताते।
कहते—"ये सरकारी अफसर
हैं सब कर-दाता के अनुचर।"
यों निर्भयता-पाठ सिखाते,
शिष्ट-विनय का मर्म बताते।

किन्तु कठिन यह भद्र अवज्ञा
चकित रहे विज्ञों की प्रज्ञा।
प्रिय कैसे हों शोषक तस्कर ?
है यह अर्थ विनय का दुष्कर।
वधिक बने प्राणाधिक कैसे ?
प्रेम-नेम कब पावें ऐसे ?
पर कुछ कुछ निर्भयता आई,
बहुत जनों को यह विधि भाई।
कृषकों ने रोका कर देना,
शुरू किया शासन ने लेना।

कृषि-धन पशु-धन असन-वसन घर खड़े खेत नीलाम हुये,
शासन की निष्ठुरता फैली नष्ट भ्रष्ट से ग्राम हुये।
दिन दिन बढ़ते अनाचार को दीन कृषक सहते कितना ?
कुछ लोगों ने धीरज छोड़ा नहीं सह सके जब इतना।

क्षेत्र छोडने लगा कृषक जब,
रही न रण में वह रौनक जब,
गान्धी ने उत्साह बढाया,
छोटा सा नव अस्त्र चलाया।
बोले गान्धी—"युवको! जाओ,
जहा खेत पर कुर्की पाओ,
फसल वहां की काट चुराओ.
मृदु चोरी का सुयश कमाओ।

खड़ी फसल को कुर्क कराना
है यह निष्ठुर लूट मचाना।
भंग करो कुर्की की आज्ञा,
अनौचित्य की करो अवज्ञा।
काम मिला पाण्ड्या को मनका,
उर उमग मे खिला तरुन का।

सात वीर युवकों के दल से उसने हमला बोल दिया,
कुर्क खेत की फसल काट कर 'प्याज-चोर' का पदक लिया।
ओ मोहन के शिष्य। लाल से रुचिर विरुद तैने पाया,
क्यों खेडे के हृदय-खेत की सुयश-फसल को चुरवाया।
चोरी करके गये जेल मे भला गुरु से सवक मिला,
चेले ने गुरु नाम चुराकर लिया कुशिक्षा का बदला।

इस घटना ने जोश बढाया,
जनता में कुछ जीवन आया।
युवक चोर ये खेल—खेल में
जब थे भेजे गये जेल में,
व्यक्ति सहस्रों साथ गये थे,
बाल-वृद्ध भय-मुक्त हुये थे।
जय-निनाद से गूँजा अम्बर,
आभा झलकी तरुण-वदन पर।
कुछ दिन बीते यों उमग में,
किन्तु भंग सा पुनः रग में—

कुछ कुछ होने लगा इधर जब ,
कृषक-कार्य कुछ गया सुधर तब।
शासन ने निज नीति सुधारी ,
मांग किसानों की स्वीकारी।
दीन कृषक को छूट मिली थी ,
हुई घोषणा तनिक भली थी।

किन्तु घोषणा भलीभांति से कार्य-रूप में ली न गई ;
शासन ने पकड़ी थी फलत. कूट रीति की नीति नई।
पर गान्धी ने जान बूझ कर सत्याग्रह को रोक लिया ;
थके हुये कृषकों को मानो शिक्षण हित अवकास दिया।
यद्यपि आंशिक आश फली थी जनता ने नव बल पाया ;
कृषक-हृदय में अरुणोदय था निष्ठा की किरणें लाया।

बढ़ा रहे थे प्रतिदिन मोहन ,
इन्दु-कला सा यश यों नूतन।
ये जनता के जनता इनकी ,
प्रतिदिन मिश्री इनके मन की—
जनता के उर-पय में मिलती ,
जन-गंगा में गलकर खिलती।
कभी स्नेह के दीप सँजोते ,
कभी संगठन-हार पिरोते।
कभी जागरण-बिगुल बजाते ,
कभी भक्ति का भवन सजाते।

आश्रम-उपवन सींच सिलाते,
बहुविधि संस्था सभा चलाते।
कभी वीर बागी बन जाते,
केतु लिये रण-चक्र चलाते।
कुछ भी करते तोभी मोहन रहते जन-जन के उर-वन,
साधा जाने किस साधन से ऐसा मोहन-वशीकरण।
भव की भीषणता का पूरक
महायुद्ध चालू था अब तक।
संकट अब कुछ आया ऐसा,
हुई परिस्थिति भीषण सहसा।
जब यह वृत्त हिन्द में आया,
शासन ने सहयोग बढ़ाया।
शीघ्र मन्त्रणा-सभा बुलाई,
एक युद्ध-परिषद बैठाई।
प्रमुख शिष्ट जन दिल्ली आये,
गान्धी भी थे गये बुलाये।
वहु विचार का विनिमय करके,
अपना अभिमत निश्चय करके।
पूर्ण तोष जब मन ने पाया,
गान्धी ने सिद्धान्त बनाया—
''विपद्ग्रस्त अब 'ब्रिटिश' राज्य है,
अतः नहीं सहयोग त्याज्य है।

पाथ

ब्रिटिश राज्य के योग्य नागरिक दें सहायता धर्म यही,
प्राण बिछावे तरुण हमारे, कही भ्रान्ति कुछ रहे नही।
भारतीय हम जो ब्रिटेन का भाग बँटावे संकट मे,
क्यों न मिलेंगे उभय हृदय फिर प्रभु बसते है घट घट मे?
ब्रिटिश-राज्य के विपद्-सुहृद् हम क्यों न बनेंगे समभागी?
जयी ब्रिटिश-जन क्या न हमारे स्वत्वों के भी हो त्यागी?"

शुद्ध हृदय में शुभ विचार भर
चले अहिंसक झोली लेकर।
खेडे जाकर डगर डगर में
लगे माँगने जा घर घर में।
माताओं के कुलधर मागे,
बहनों के भ्राता अनुरागे;
वीर-वधू के प्राणेश्वर को,
बोला सब से चलो समर को।
करते मोहन कठिन परिश्रम,
तन-मन का यह दुर्दम सयम—
इन्हें छोड कर कौन करेगा?
कौन रात-दिन यों विचरेगा?
जब न राह में वाहन मिलते,
मील पचासों पैदल चलते।
तथा कार्य भी अबकी इनका
रहा न सुहृद जनों के मनका।

जिस शासन ने रक्त देश का शोषा, उसका इष्ट करें;
अथवा अवसर देख विघ्न-जन वार करें निज कष्ट हरें?
पर गान्धी के नीति-शास्त्र में ऐसा मन्त्र न विहित कहीं,
स्वार्थ-रहित नर त्याग सहित हो यही नीति-विधि उचित सही।

दुख हो सुख हो यश अपयश हो,
धर्म न तजते बुध रस-वश हो।
अपयश का खतरा भी लेकर,
भार बहुत सा धरकर तन पर,
लगे रहे एकाकी मोहन,
ब्रिटिश-कार्य में अथक मान-धन।
मिला सुहृद-सहयोग न पूरा,
कार्य न छोड़ा किन्तु अधूरा।
यद्यपि इनको मोह नहीं था,
किन्तु देह थी लौह नहीं था।
श्रान्ति-कीट ने तन को खाया,
हुई रोग से जर्जर काया।
स्वास्थ्य-हीन हो शक्ति शिथिल थी,
सब अंगों की दशा विकल थी;
किन्तु नियति ने गति को बदला,
महायुद्ध का निर्णय निकला—

पूर्ण परास्त हुये थे जर्मन ब्रिटिश सिंह था समर-जयी;
सैनिक-भर्ती नई स्वयं ही दैवेच्छा से व्यर्थ हुई।

गान्धी! तेरे रगरूट ये लूटेंगे रण-यश जैसा;
वैसा यश-धन दुर्लभ नर को, भाग्य-चक्र ही है ऐसा।
महायुद्ध क्या दिव्य समर में बढ-बढ वीर प्रहार करें;
अमर विरुद-धर सैनिक तेरे पुण्याङ्गण में जूझ गिरे।
गिरे हार वहु पारिजात के सुर-ललना-कर-भार हरें;
यश-बालायें वर-माला ले उन तरुणों को रीझ वरें।

६

रक्त-हीन सा था अशक्त तन,
कठिन रोग से जन-मन-मोहन
अभी स्वस्थ भी हो न सके थे,
शय्या ही पर कृती रुके थे;
किन्तु कार्य का अवसर आया,
अभिनव गीत समय ने गाया।
सब 'रिपोर्ट' रौलट कमिटी की—
कूट नीति-जाली कपटी की,
पत्रों में थी हुई प्रकाशित,
थी रिपोर्ट कटु अप्रत्याशित।
गान्धी ने भी देखा उसको—
नीति-लता-रस-मिश्रित विषको।

फूलों में छल-शूल विलोका,
क्षमाशील यह यति भी चौंका।
था ब्रिटेन अब विजय-गोद में,
ब्रिटिश वीर थे मग्न मोद में।

ब्रिटिश-हृदय में आज विजय ने गर्व-मोद-मद ढुरकाया,
बेसुध उर-दृग मुदे झूम मे नशा अपरिमित था आया।

हमने प्यारे स्वत्व हमारे
सारे कपट-द्युत में हारे।
किन्तु आज रण-विजई शासक—
शौर्य-प्रकाशक विरुद-विकासक,
विजय-बधाई बहुत लुटावे,
भिक्षुक-गण इच्छित धन पावें।
हम दीनों का स्वत्व-भाग वह—
स्वाधिकार की रँगी पाग वह,
त्याग बँटे तब हमें मिलेंगे,
भाग्य खिलेंगे हम उछलेंगे।
सुना सिंह निर्भीक अहेरी,
वन-निधियाँ हैं उसकी चेरी।
किन्तु स्यार यदि जूठन पावे,
क्यों न दीन निज भूख मिटावे?
सदा दीन की आशा सुखकर
निर्भर रहे पराई रुख पर।

किन्तु हमारी आशा-लता पर सहसा नीति-तुषार पड़ा,
बड़ा विनोदी शासक हँसकर दशा हमारी लखे खड़ा।
अन्न-वस्त्र-भाण्डार हमारे रत्न-कोष पशु-धन प्यारे;
देख विपद में गौरे नृप पर हमने थे वैभव वारे।
लाखों सैनिक युवक देश के रण मे मोती से बिखरे,
लाखों गोदी सूनी करके इस शासक हित जूझ मरे।

हमें पारितोषिक अति सुन्दर
मिला नया 'रौलट बिल' रुचिकर।
स्वाधिकार का पुरस्कार यह,
अति भारी उपहार-भार-यह,
जिससे गर्दन दबकर बैठे,
कमर दोहरी होकर ऐंठे।
इतना धन हम कैसे ढोवें?
निर्बल क्यों न बैठकर रोवें?
किन्तु महात्मा दिव्य हमारा,
आश-बेलि का सजल सहारा,
अबभी तन तो अति निर्बल था,
तथा शत्रु भी बहुत प्रबल था,
तो भी निकल चला दल-नायक,
हृदय-तूण में भर कर सायक।
इसको निष्ठा प्रभु के बल की
महाशक्ति वह उथल-पुथल की।

मंगलास्त्र ले केवल सत का यदि न सुभट पथ में खोवे ;
सत्य-धनी की विजय सुनिश्चित आज नहीं तो कल होवे।

शीघ्र बम्बई पहुँचे नायक,
भारत के कृश-काय विनायक।
मोदक-साधन के अनुमोदक
पीते हैं खारी नयनोदक।
मिलें कष्ट के भोजन रूखे
क्षुधा-व्यथा-वश गणपति सूखे।
सुना नगर में आये मोहन,
एकत्रित तब हुये मित्र-जन।
रौलट-बिल से सभी खिन्न थे,
यद्यपि कुछ सिद्धान्त भिन्न थे।
पर गान्धी ने मेल मिलाया,
अपना सब मन्तव्य बताया।
करके पूरा मनन विवेचन
नये शिरे से किया सगठन।
नव सत्याग्रह-सभा बनाई,
स्वय प्रधान हुये सुखदाई।

तमाच्छन्न था क्षितिज किन्तु कुछ अरुणोदय का भान हुआ,
इस प्रधान मिष भव-सागर में शुरू सुधा-सन्धान हुआ।
अरुण-चारणी सखि सरोजिनी निज वेला लखकर महकी,
जब वसन्त जग-मोहन उमका हिन्द-कोकिला भी चहकी।

रौलट विल से भारत भर में
असंतोष था सबके उर में।
उग्र-नम्र नेतागण सारे
शासन से कह कह कर हारे।
तीखे भाषण हुये बहुत से,
देश विरोधी था बहुमत से।
गान्धी ने भी मधुर रीति से
प्रीतिमई निज शुद्ध नीति से,
शासन को बहुविधि समझाया,
पर उत्तर में 'ठोसा' पाया।
जो जन निद्रा-श्राद्ध सजावे,
उस जगते को कौन जगावे।
कपट-कला पटु जयी सुयोधन
सन्धि-वचन कब माने मोहन!
विना परीक्षा हुये पात्र की
युद्ध-विना सूच्यग्र-मात्र भी—

स्वत्व नहीं मिलता है जग में मग में मुक्ता कहाँ पड़े;
भिड़े प्रभञ्जन जब उद्यम का तभी टूट फल-फूल झड़ें।
और आज तो मोहन। तेरा जान हौसला बढ़ा हुआ,
कभी न माने विजई गौरा दम्भ-अश्व पर चढा हुआ।
अब तो इसने जर्मन का भी शौर्य-गर्व है खर्व किया;
अब यह सबको मौन करेगा इसने निश्चित सोच लिया।

ये भारत के कीट-पतंगे उछल रहे हैं जो इतना,
'पल में चुटकी से मल दूँगा इन तुच्छों में दम कितना'।
सोच रहा यह—"युद्ध-विवश हो हमने जब कुछ थपक दिया,
इस भारत की मुर्गी ने तो चीख चीख घर उठा लिया।"
"यह गान्धी भी तनिक सफल हो शक्ति-मान में फूल गया,
ज्ञात न इसको हम जग-शासक नहीं दिखाते सदा दया।"

गान्धी भी कुछ कार्य-प्रणाली
सोच रहे थे कुछ उजियाली।
किया समय ने मार्ग-निरूपण,
मिला इन्हें अब एक निमन्त्रण।
कार्य-हेतु मद्रास नगर में
चले उधर ये बल-निर्झर में।
दैहिक दुर्बलता तो अबतक
व्याप रही थी यद्यपि भरसक
स्फूर्त्ति-धार उमडी पर दिल में,
प्रबल हुआ तन रौलट बिल से।
शीघ्र गये मद्रास पुरी में
प्रिय गिरमिटियों की नगरी में।
मिले विज्ञ-वर प्रचुर बुद्धिधर
कस्तूरीरङ्गा आयगर।
मिले राजगोपालाचारी
विनयाचारी प्रेम-भिखारी।

राज-नीति के पटु व्यवहारी ग्वाल सरिस सरलाचारी;
साधु सुधी बहु विद्याधारी अभय विवेकी हितकारी;
इन सुहृदों के संग बैठकर मोहन विविध विवेचन से;
खोजा करते नव विधि कोई आपस के विश्लेषण से।
शीघ्र एक दिन शासन ने अब रौलट बिल को मान लिया;
राज-नियम मे बदला बिल को कानूनी सम्मान दिया।

उसी दिवस मोहन तन्द्रिल मे
थे निज शय्या पर स्वप्निल मे।
तनिक देर थी मधु-विहान में
अरुणोदय के उषा-गान में।
सुघर चन्द्रिका प्रीति-परी सी
थकी नाच कर थी बिखरी सी।
चतुर सुधाकर प्यारे नागर
निज कान्ता को गले लगाकर,
विदा माँगते किरणमई मे
ढीठ रसिक थे अब विनई से।
इधर चन्द्र को जाता लखकर,
दर्शन-स्वाद-सुधा का चखकर,
स्वजनि कुमुदिनी प्रेम-योगिनी,
निशा-मोदिनी नव वियोगिनी,
बोली आली सुरभित स्वर मे—
'बसो न कोई प्रेम-नगर में

प्रीति-नगर की डगर-डगर मे नयन-नीर का पंक भरा,
स्निग्ध फिसलना कीच वहाँ का उठा न जो उर-रुक गिरा।
और अभी मोहन मन-वन मे सुखकर सौरभ हास खिला;
अपने भावी कार्यक्षेत्र का सहसा नव आभास मिला।

देखा उनने भारत भर में—
—जगह-जगह पुर ग्राम नगर में—
पुष्कल हलचल फैल गई है,
तथा पूर्ण हड़ताल हुई है।
नूतन जीवन उमड़ रहा है,
सहृदयता का श्रोत वहा है।
लहर ऐक्य की लहराती है,
प्रेम-पताका फहराती है।
स्नेह-सुमन को लिये हाथ मे,
सुहृज्जनों के सरस साथ में,
देखा निजको बद्ध जेल में,
मग्न प्रीति के शुद्ध खेल में।
लखा तमस है जाने वाला,
सुप्रभात है आने वाला।
रत्न-प्रात से प्रीति-प्रलोभन
पाकर झटपट जागे मोहन।

अरु सुहृदो से मिले उसी क्षन सबने समुचित ध्यान दिया;
मान लिया, नायक ने उनको जो आदेश प्रदान किया।

सन उन्निससौ उन्निस 'एप्रिल' महिने के छट्ठे दिन की—
निखिल देश हड़ताल करेगा हुई घोषणा मोहन की।

अरु सब जन उपवास करेंगे,
उर में प्रभु-विश्वास भरेंगे।
प्रथम भक्ति-सह देवाराधन
पुनः करें व्रत का उद्यापन।
सत्याग्रह है पथ प्रेम का,
मन्त्र सभी के क्षेम-नेम का।
यों अपील गान्धी की निकली,
मानो नभ में चमकी बिजली।
थी न किसी का ऐसी आशा,
सहसा विधि ने किया तमाशा।
उचित सगठन तिथि-विज्ञापन
तथा लक्ष्य का पूर्ण प्रकाशन,
हो न सका कुछ भली भाँति से,
तो भी एक अपूर्व क्रान्ति से—
मिली सफलता उस दिन जैसी,
देखी सुनी न पहले ऐसी।

जाने किन अदृश्य करो ने भारत मे हड़ताल करी;
सफल हुये थे अखिल देश के नगर ग्राम पुर अरु नगरी।
मित्र जनों से बोले गान्धी—"मुझे न थी आशा इतनी,
विना सगठन तनिक समय मे मिली सफलता है कितनी!

उस नेपथ्य-विहारी प्रभु की राहों को किसने जाना ?
किस कठपुतली ने नटवर के नियति-सूत्र को पहिचाना ?"
भले न कोई चीन्हे मोहन। पर तुमने पहिचान लिया;
भक्ति-सहित निज प्रियतम-प्रभु के सत्य-सूत्र को जान लिया।
प्रेममई है प्रभु की डोरी किया सुधा-सन्धान किया,
न्याय-नियति का भेद त्याग में, जान गया तू जान गया।

हिन्दू मुस्लिम प्रेम-टेक म
मिलकर मानो हुये एक से।
था 'एप्रिल' का मनहर महना,
बारहमासी सखि का गहना।
समय-हृदय मे थी बहार सी,
उमडी थी शृङ्गार-धार सी।
प्रिय वसन्त-आवास हुआ था,
कुदरत का मधु-मास हुआ था।
शीत और आतप भी मिलकर
मधु-ऋतु में बदले थे सिलकर।
खेल 'बिखर वन-शोभा-रानी,
झूम निखर यौवन-मस्तानी,
हरियाली के मिलन-राग में—
कूज रही थी विश्व बाग में।
भ्रमर सुमन पशु मनुज विहग क्या?
मिलनोत्सुक था कण-कण जग का।

अवसर लखकर ही मोहन की बजी बाँसुरी प्रीति-भरी ;
हिन्दू-मुस्लिम की अति ऊसर धर्म-धरा भी हुई हरी।
मधुर दृश्य था अनुपम आहा रस बिखरा था मन-चाहा ;
हरियाली से ढका एक था, वह भारत का चौराहा।
भेद-रेख पर हरे लेख थे जिस मुशी ने लिख डाले ;
वह बहार का प्रेम-फरिश्ता फिर लावेगा उजियाले।
अरे मुहब्बत-फुलवारी के हृदय हँसाने वाले आ ;
प्रीति बसाने वाले पावन, मधु विकसाने वाले आ।
खेल खिलाने वाले मजहब भेद भुलाने वाले आ ;
हृदय मिलाने वाले रस की रस्म चलाने वाले आ।

आज प्रेम ने रंग भरे थे,
अब तक जाने कहा दुरे थे ?
भारत के वन-उपवन-वाले
आज सभी सुमनों के प्याले—
एक भाव से भरे खिले थे,
सबको मधु-रितु-स्वाद मिले थे।
कुसुम-रंग ये भिन्न भले हों,
भिन्न-लता पर भले पले हो,
प्रेम-नेम-मधु किन्तु एक है,
नृप वसन्त की मधुर टेक है।
नगर नगर के अजिर-अजिर में
प्रेम-उत्स उछलें घर-घर में।

देखो भाव मनोहर बिखरे,
आज भाग्य दिल्ली के निखरे।
देखो तो डाले गल बाहीं
शाही नगरी के उत्साही—

मन्दिर-मस्जिद वाले राही भरकर हृदय-सुराही को,
मस्त रहे मधु पी यदि योंही पावें विधि मन चाही को।
यतिवर श्रद्धानन्द लखो तो जुम्मा-मस्जिद जाते हैं,
छूनी नबी की श्रद्धा में निज आर्यानन्द मिलाते हैं।
वे हकीम अजमल खाँ हैं पाक साहसिक गो-रक्षक,
सिर्फ फूट क्या रोग-मात्र के सफल चिकित्सक शुभ-शिक्षक।
जाने क्या रस-दवा मिलाकर खिला पिलाकर चला गया?
ओ हकीम! दिल्ली के दिल को रुला-गला कर जला गया।

हुई प्रेम-पडताल प्रबल थी,
अत फूट-हडताल सफल थी।
तरुण नागरिक दिल्ली-वाले
सभी हुये उस दिन मतवाले।
मिल जुलूस में चले झूमते,
सब हडताली वीर घूमते।
मधुर पेय से दुग्ध-सलिल के—
हिन्दू-मुस्लिम थे हिल-मिल के।
शिव-शङ्कर अल्लाहो अकबर—
स्वरैक्य पाकर विभु विश्वभर—

हृदयों में थे क्रीड़ा करते,
वाणी में थे मधु-रस भरते।
हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई
दोनों ने मधु-निधियाँ पाई।
जय दोनो की सदा विजय हो,
अभय हृदय मिल क्यों न अजय हों?

जय नारों का मिलित नाद यह उठ अम्बर तक चला गया,
ब्रिटिश-हृदय की मजबूती को इस नव रव ने हिला दिया।
सुन्दर भेद-वस्त्र का बुनकर श्वेत जुलाहा चौंक पड़ा,
महा युद्ध का दंभी जेता दमन-तोप ले हुआ खड़ा।

थे जुलूस के नागर मानी
स्नेह-जोश के सहृदय दानी।
बाल वृद्ध नवयुवक निहत्थे,
देश-प्रेम के भावुक जत्थे,
मातृभूमि की महिमा गाते,
थे निज पथ पर बढ़ते जाते।
दर्प-धृष्ट शासन था चौंका,
इस जुलूस को चलते रोका।
शस्त्र-हीन भी देश अभागा
मृत्यु-यज्ञ में था अनुरागा।
निर्मल ऐक्यानल में जलकर,
उस निरीह नर-नारी-दल पर

क्रुद्ध दम्भ की चली गोलियां,
मौन हुई भट कई वोलिया।
मातृ-धरा पर गिरे लाडले,
सींच रहे थे रक्त वावले।

मोहन यों रॅगरूट तुम्हारे महायुद्ध में गिरे कहाॅ?
इसी धूलि के नोनिहाल ये तन न्योछावर करे यहाॅ।
वीर-रक्त की वून्द धरा पर वीर-वधूटी वन निकलें,
हीनों मे पुरुत्व भरें ये क्रान्ति करें जीवन वदलें।
सत्याग्रह सावन-घन लावे सजल क्रान्ति का अवसर जव,
रक्त-विन्दु की वीर-वधूटी उग कर आवें वाहर तव।

अमृतसर लाहौर नगर में—
इसी भाति सव भारत-भर में—
दमन-चक्र था चला भयंकर,
हुई अघट घटनायें पुर-पुर।
गुॅथी भीड पर अश्व चलाके,
अश्वारोही शौर्य दिखाके,
घुसते जाते भाला ताने,
कुचले जाते दीन दीवाने।
तन विन्ध जाते तीव्र नोंक मे,
गिरते आहत व्यक्ति झोंक से।
चली गोलिया नगर-नगर मे,
लाशें विखरी डगर-डगर में।

मातृ-धरा की मधुर गोद में
वाल-वृद्ध वहु गिरे मोद में।
शासक ने तो करी ठठोली,
गोली से खेली-थी होली।

रग भरी वन्दूक न थीं वे थीं विलायती पिचकारी;
युद्ध-विजय के प्रेमोत्सव मे गौरों ने हँस हँस मारी।
तथा निहत्थी भीड़ कहाँ थी सवके दो दो हाथ जुडे?
जय-नारों में हाथ हजारों ऊपर नीचे उठे अड़े।

महायुद्ध को जीत लिया था,
संकट तो अब बीत गया था।
अतः चतुर अँग्रेज वहादुर
अब न रहे थे अधिक भयातुर।
शत्रु-रहित निष्कंटक होकर,
प्रलय-काल तक सुख से सोकर,
उन्हें भोगने राज-भोग थे,
जुडे आज सव मधुर योग थे।
वेग सहित जय-नदी वही थी,
प्रवल शत्रु ने घास गही थी।
वस भारत मे कहीं कही थी
कुछ वक-झक सी शेष रही थी।
एकवारगी ही गडवड को—
इन सब पत्तों की झड़-झड को—

प्रलयावधि तक चुप करने को,
शासन में सुख-रस भरने को—
'चला दमन की आन्धी झाड़ू भारत के गौरव-वन को;'
शासक कहता—'पतझड़ बन कर हरूँ मान-पल्लव-धन को'।
पर दमी को पता नहीं था पतझड में ऋतुराज बसे;
शुष्क पत्र जब झडे दमन से नव-गौरव-मधु-साज हँसे।
प्रतिपक्षी को निबल मानकर,
निज को पशु सा प्रबल जानकर,
शस्त्र-हीन पर हिंस्र शूरता—
—दमन-दर्प की क्रूर धूर्त्तता—
दिन दिन चली गई बढती ही,
रही मद्य-मात्रा चढती ही।
जर्मन-विजई योद्धा मानव
हुआ निठुर दुर्दम ज्यों दानव।
रण-प्रभाव वश उर कुण्ठित था,
नर उसका गिर भू-लुण्ठित था।
सत्याग्रह के प्रेम-योग को—
—गान्धीजी के प्रिय प्रयोग को—
अन्ध बधिर नर समझ न पाया,
उसे विजय ने हीन बनाया।
शस्त्र-युद्ध में लडकर दुर्जय
हुआ रक्त से गौरा निर्भय।

प्रभु ईसू का भक्त समर में जय से विषयासक्त हुआ;
क्रूर युद्ध से उसके मन को सस्ता मानव-रक्त हुआ।
हिंस्र समर में नर मरते, फिर नरता मरती विजई की;
दमन-क्रास पर टँके देह तब ईसू जैसे विनई की।

वक्र नाद वह दर्प-नक्र का,
क्रूर वेग उस दमन-चक्र का,
तोप-श्वास कटु मद-बौरे का,
अट्टहास सैनिक गोरे का,
चुभा बहुत, कुछ युवक-हृदय में,
अल्हड़ यौवन-वेगोदय में,
कहीं कहीं पर कुछ भोले जन
प्रतिहिंसक भी हुये तरुण-मन।
श्रमिक अहमदाबाद शहर के
कृषक युवक बहु खेड़े भर के,
गये अनेकों व्यक्ति जेल में,
व्यर्थ न्याय के श्राद्ध-खेल में।
लगा भड़कने जोश मनों में,
रक्त फड़कने लगा तनों में,
दमन-चक्र था ज्यों ज्यों चलता,
इधर देश का रक्त उबलता।

अमृत-सर लाहौर देहली नगर ग्राम सब गान्धी को-
बुला रहे थे शीघ्र प्रेम से देख दमन की आन्धी को।

दमन-वृत्त मोहन ने जाना,
फौरन दिल्ली हुये रवाना।
शासन ने तब रोका इनको,
रुके नहीं जब इन पावन को—
लिया पुलिस ने निज बन्धन में,
हसे नम्र मोहन तब मन में।
पुनः मुम्बई वापिस लाकर,
मुक्त किया सौजन्य दिखाकर।
इधर वृत्त बन्धन का पुर में
पहुँचा पहले ही घर घर में।
उमड पडी थी नगरी सारी,
उर में चोट लगी थी भारी।
पुर-वासी उद्भ्रान्त हुये थे,
उर अशान्त आक्रान्त हुये थे।
है जनता के उर-धन मोहन,
गहन विषय है इनका बन्धन।

गान्धी का बन्धन है मानो बन्धन-मोचन जनता का;
भाव-बाढ से धैर्य-बान्ध सब टूटे जन-मति-सरिता का।
जुटी भीड़ को अश्वारोही अधिकारी थे कुचल रहे;
मोहन ने आंखो से निष्ठुर दृश्य लखा सब, मौन गहे।
पर निरीह जनता के तन-पर जब जब चुभते थे भाले,
करुणाघन मोहन के दिल मे पड़ते थे व्रण के छाले।

शीघ्र भीड में मोहन पहुँचे,
देख सामने इन्हें समूचे—
हुई मोद में पागल जनता,
धन्य हृदय की भाव-प्रवणता!
यही विमलता यही सफलता,
विह्वलता की मृदु उज्ज्वलता,
कविता की सी मूर्त्त रुचिरता,
मानवता की मधुर अमरता।
शुभ कर्त्ता मधु-भर्त्ता मोहन,
जनता के दुख-हर्त्ता मोहन,
जनता इनको ज्यों ज्यों जैसे—
अपनाती थी अधिक हृदय से;
बढता इनका स्नेह सवाया,
यद्यपि भार बहुत था छाया।
प्रतिदिन दूना प्रेम दृढाते,
कई गुना उर-भार बढाते।
इधर उग्रता देख दमन की
व्यथा चौगुनी बढती इनकी।

फिर अधीर भावुकता देखी इनने जनता के मन की;
शासक शासित उभय पक्ष में लखी प्रगति चञ्चलपन की।
पुष्कल संयम की त्रुटि लखकर सत्याग्रह को स्थगित किया;
उभय पक्ष के उपालम्भ को महाधीर ने स्वयं लिया।

दंभ-दण्ड-धर शासक दुर्दम
हो कितना भी निष्ठुर निर्मम,
पर शासित यदि शान्त रहेगा,
संयम से सब क्लेश सहेगा,
मौन वीरवर सहनशील नर—
समर-जयी होवेगा आखिर।
कृती त्याग संयम का ज्ञाता,
देश-नियम का सच्चा त्राता,
सामाजिकता का परिपालक,
हृदय-यन्त्र का नियमित चालक,
अनुशासन का अति अभ्यासी,
सतनारायण का विश्वासी,
विज्ञ शिष्ट अति भद्राचारी,
उपकारी सच्चा गुण-कारी,
ऐसा नर ही है अधिकारी,
भद्र अवज्ञा का व्यवहारी।

'राज-नियम की भद्र-अवज्ञा विना भूमि तय्यार हुये;
उचित नही है' वोले गान्धी, विना उचित सस्कार किये।
प्रथम शान्त रचनात्मक विधि से मिले सैन्य को शुभ शिक्षण,
करें हेम-सम शोधे सेवक सत्याग्रह प्रण का रक्षण।

पात्र विना पीयूष न मावे,
उसे सुधा-कर सा उर भावे।

नियत शान्त अरु मुदित रहे जो,
मौन भाव से व्यथा सहे जो,
राहु-केतु से कुटिल, कृती को,
बहुत सतावें सदा व्रती को।
व्यथा-भार से चन्द्र-हृदय पर
नील चिह्न है बना सदय पर।
किन्तु धन्य राकेश गगन मे
भरे स्नेह की किरण भुवन में।
मिले तमस को प्रीति-चान्दनी,
मधुर ज्योति से खिले यामिनी।
शशि सिखलाता पर-विष लेना,
किरण-सुधा रिपु को भी देना।
सहज-धीर विधु क्रम से बढता,
सोपानों से ऊंचा चढता।

"सत्याग्रह के उद्यापन में हुई शीघ्रता जो ऐसी;
करूँ घोषणा थी यह मेरी भूल हिमालय गिरि जैसी।"
शासक शासित उभय पक्ष का गिरि सा भार हृदय धरकर;
बता रहे हो मानो नर को यों उठता नख पर गिरिवर
निज मानस में कोटि उरों के पिघले पानी को भरकर;
दिखा रहे हो विभु विराट की झलक, रूप व्यापक धरकर।

युद्ध रोक कर सत्याग्रह का
पाठ सिखाने को निग्रह का,

एक स्वयसेवक-दल नूतन
स्थापित करके रस-घन मोहन,
सबका हितकर तत्व बरस कर,
लगे लोक-शिक्षण में सत्वर।
सत्याग्रह का मर्म सिखाते,
मानवता का धर्म बताते।
उधर निरकुश शासन निष्ठुर
घोर दमन में रत था जमकर।
ग्राम नगर पजाब प्रान्त के
क्रीडालय से थे कृतान्त के।
धानभरी रुचिरा मनोहरा
हरी धरा थी सजी उर्वरा।
बरसे वहा दमन के ओले,
अनाचार के जलते शोले।
दभ-दैत्य पुर-ग्राम-नगर में
अरु विशेषत अमरित-सर में—

ले मशाल प्रभुता की जलती आग लगा कर घर घर मे,
करी रोशनी डगर डगर मे शासक ने अमरितसर मे।
जलियाँवाला बाग निराला चली गोलियों की लड़ियाँ,
महायुद्ध के विजयोत्सव मे जली ऊजली फुलझड़ियाँ।
उपवन की कोमल शिशु-कलियाँ तथा वहाँ की सब गलियाँ;
जली भभक के सुमनावलियाँ, स्वय हुई दीपावलियाँ।

जग मशान सा जलियां वाले !
जला दासता-चिता जलाले।
जल जल कर निज जलन पकाले,
आग जलाकर हमे जगाले।
अमरित-सर के उर पर खिलकर—
जलियां वाले नील कमलवर !
अमर हुआ तू अमरित पीकर।
अब तू अग्नि-सुमन सा जीकर
क्रान्तिमई सौरभ विकसादे,
नई माधुरी सी सरसादे।
शासन के मिष क्रूर काल से—
हमें क्रान्ति-मणि मिली व्याल से—
अमरित-सर ने अमरित-जल से—
—नव-जीवन के नव सम्बल से—
देश-प्रेम का तरु विकसाया,
अंकुर को पूरा उकसाया।

सहस्र चिता-धर जलियाँ वाले। ज्वाल-जाल सा भला जला;
हमको अपने असल रंग का तव प्रकाश में पता चला।
अखिल हिन्द के उर-नीरधि में वड़वानल सा वाग जले;
खिले ज्योति तव गरल, वारुणी, मधु, विधु, मुक्ता दीख चलें।
उद्‌बोधन का राग सुनाया हुई सफल सुन्दर महफिल,
हुआ फफोला हिन्द-हृदय में अब न देश सोवे गाफिल।

ज्योति खिली जब सहसा तेरी नयनों को नव दृष्टि मिली,
मायावी शासन के मुख की कटुता बाहर तब निकली।
कायर भी शासन के डायर। हम तो तव महिमा गाते,
तू न यवनिका अगर उठाता हम धोके मे रह जाते;

तरुण वृद्ध बालक अरु महिला
पाकर अमरित का सर उजला,
गिरे, सुधा-बूडे वे सारे
तिरे, हुये अमरों को प्यारे।
पूर्ण-काम वे स्वर्ग-धाम में
रहे न उलझे भोग-काम में।
मातृ-भूमि में जलद-नगर से
वे नव जीवन भर भर बरसे।
गोरे सैनिक इधर बराबर
डाल रहे थे बीज धरा पर।
दमन-बीज के अंकुर उगकर
बनते थे उद्बोधन-तरुवर।
दिखा रहे थे नाटक आला,
प्रथम दृश्य था जलियाँवाला।
नृत्य-गान के दृश्य मनोरम
सभी एक से एक निरूपम।

अस्त्र-शस्त्र से सजे पात्र थे कर मे हण्टर बेंत लिये;
उन गोरे अभिनेताओ ने श्याम-देह पर नृत्य किये।

प्रभुता-मद पर मद्य-पान कर श्वेत प्रेत से मदमाते,
क्रूर कृत्य को नृत्य मान कर उधम मचाते इतराते।
अज्ञ सिपाही नगे पशु से बनते नही लजाते थे;
हा! पशुता मे गर्व दिखाते गाते थे मुसकाते थे।
अनाचार में मोद मनाते, शौर्य दिखाते बल खाते;
शस्त्रहीन पर शस्त्र चलाते, कभी न थकते हरपाते।

हुआ मार्शियल्ला था जारी।
सजे हुये सैनिक अधिकारी
घूम रहे थे सज्जित प्रहरी,
श्वेत सर्प से गहरे जहरी।
पटु कोविद वे दुराचार मे
कुशल क्रूर थे अनाचार मे।
कार्य-विवश पुर-जन मग जाते,
या नर-नारी घर में आते,
निरपराध जब पथ पर मिलते,
निठुर मोद में प्रहरी खिलते।
डंडे ठोकर मार मार कर,
निर्बल तन पर बहु प्रहार कर,
कलि के अनुचर विषधर-सहचर—
जौहर प्रचुर दिखाते जमकर।
जब आहत क्रन्दन कर गिरते,
बहुत खुशी में सैनिक भरते।

ठोंक पीट कर भद्रजनों को कहते-"समुचित दण्ड भरो,
गिरो पेट के वलसे रेंगो, सारा रस्ता पार करो।"
सभ्य पुरुष क्या भारतीय रे। मातायें वहनें तेरी;
विवश पेट के वल रेंगी थीं पराधीनता की प्रेरी।
रेंग रेंग कर चलीं गर्भिणी पतित गुलामों की जननी,
दास बन्धु की वहन अभागिन कायर की गृहणी तरुणी।
दुहिताओं के उदर परश कर कॉपी भारत की धरनी,
कोटि जनों की जननी रोई देख वक्ष पर यह करनी।
धरा-हृदय पर दीना दुहिता रेंगीं थीं वे जहाँ जहाँ,
रगड़-पीड़ की रेख खिची थी मातृ-हृदय पर वहाँ वहाँ।
त्रिस कोटि हृदयो मे भी यह रेख पडे अरु अमर रहे,
गोरी लिपि के अमिट लेख ये शौर्य-श्रोत से विखर वहें।
विरुद कहें ये ब्रिटिश शौर्य के ज्योति-चक्र की शक्ति गहें;
क्रान्ति अंक ये भारतीय की कायरता का कलुप दहें।

काल व्याल से अति कराल ये
ब्रिटिश भूमि के नौनिहाल ये—
जौहर इनने खूब दिखाये,
शौर्य-सुयश हैं वहुत कमाये।
क्या कलाम, है वीर प्रसविनी
इस गोरे शासन की जननी।
कृत्य श्वेत के उज्ज्वल होते,
श्याम रक्त से कालिख धोते।

रेंग पेट के बल से भारत !
रेंग खुशी से मत हो आरत।
नाग-नृत्य से नाग-राज को
रिझा रेंग कर छोड लाज को।
बाल वृद्ध अरु वनिता गिरकर
नाचें आज पेट के बल पर।
जो महिला-मिष रेंग रही है,
ब्रिटिश शक्ति की कीर्त्ति यही है।

गौरव-लक्ष्मी है शासक की त्रासक की शौर्य-कहानी;
तथा दम्भ की मलिना ललना नाच रही छलना रानी।
इन्हें हिन्द के तन मन-धन से महायुद्ध मे शक्ति मिली;
गली गली पञ्जाब प्रान्त की ब्रिटिश भक्ति से भर उभली।
राज-भक्त पञ्जाब भूमि ने किया सभी कुछ न्योछावर;
रत्न देश के तरुण डहडहे गिरे समर में प्रचुर विखर।
चिर कृतज्ञ अँग्रेज जयी ने सारे ऋण का शोध किया;
व्यर्थ पराये रण-चढने का समुचित फल दे बोध दिया।
साहूकार उधार न रखते गौरे वनिये व्यापारी;
हाथों हाथ चुकाई ऋण की रकमें पाई तक सारी।
धन्य प्रजा-पालक शासक ने जलियाँवाला वाग दिया;
हमे निहत्था निर्वल लख कर दीनों पर अनुराग किया।
घर बैठे ही महायुद्ध का 'ट्रेलर' हमे दिखाया था;
जलियाँवाला के मिष नृप ने रण-मधु तनिक चखाया था।

शुभ चिन्तक शासक हितकारी,
लालक पालक प्रिय उपकारी,
नये न्याय के अभिनय करके,
नव नव श्वाङ्ग दिखावे धरके।
वहु पंजावी पुर-जन प्यारे
नेता सेवक सभी हमारे,
कारागृह का भाग वढाने,
गये जेल में देश दिवाने।
सकल देश सतप्त हुआ था
त्यक्त-धैर्य-रव व्यक्त हुआ था।
गान्धी यह सब देख रहे थे,
किन्तु अहिंसा टेक गहे थे।
अम्बुधि जैसा उर गभीर था,
भरा हुआ पर मधुर नीर था।
धीर जलधि जब विचलित होता,
श्रान्ति ज्वार-भाटे से धोता।

धन्य ज्वार-भाटा भी उसका रुके पोत आवें जावें,
स्नेह-ज्वार को देख तरगित यश-विधु हँस-हँस गुण गावें।

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य-हेतु ये
बाध रहे थे प्रेम-सेतु ये।
है यह टेढा प्रश्न करारा
पर गान्धी को है अति प्यारा।

इसकी खातिर सब कुछ तजकर
प्रस्तुत रहते प्रतिपल सजकर।
प्रश्न खिलाफत का अब आया,
मानो इनने अवसर पाया।
जुटे कार्य में ये मधु-केता,
देख रहे थे मुस्लिम नेता।
हुये उल्लसित विस्मित लखकर,
प्रेम-हेम की प्रभा परख कर।
यति श्रद्धानन्द बान्ध लँगोटे
सजे प्रीति के से परकोटे।
रस-भेषज की लिये पिटारी
अजमलखां की छवि थी न्यारी।

ऐक्य-लता-मधु-लोभी अलि वे अली-सहोदर युगल भले,
गिरा 'बिगुल'सी गुञ्जन करती, सुमन-सभा मे खेल खिले।
प्रीति-दोष मे कमल-कोष मे अली बन्धु थे बन्धन मे;
किन्तु प्रेम-हित बन्दी भी ये निशिभर मुदित रहे मनमे।
इन्ही दिनों कुछ रस-घन विलसा मोहन का भी मन हुलसा;
हिन्दू-मुस्लिममय दिल्ली में हुआ एक शामिल जलसा।

हुये सम्मिलित उसमें मोहन,
मूर्त्त प्रेम से सरल यशोधन।
मिलन-माधुरी उस दिन सरसी,
कितनी प्रीति-सिता थी बरसी ?

अजमलखां हसरत मोहानी
वोल रहे थे मधुसी वानी।
अब्दुलवारी जैसे वक्ता
मनहर युक्ति-सूक्ति के मुक्ता—
करते थे हँस हँस कर वितरण,
मुग्ध हंस से थे श्रोता-गण।
बोले मुस्लिम वक्ता सारे—
बड़े विरादर हिन्दु हमारे,
गो-रक्षण है इनको प्यारा,
अतः चौगुणा फ़र्ज़ हमारा।
'नहीं नहीं' तव मोहन सहसा
बोले, सुधा-कोष सा विकसा;
'आज हमारा प्रश्न खिलाफत हैं भविष्य के शेष विषय;
हम भाई हैं, रहे सदाशय, जावें क्रय-विक्रय सशय।
उठे प्रश्न ही क्यो विनिमय का श्रेय सभी का मिले विजय,
प्रेम-नगर के विनिमय मे तो पलटा जाता सिर्फ हृदय।
इन मोहन की मधुर नीति से
मुग्ध हुई थी सभा प्रीति से।
फिर जैसे जो इनने चाहा,
सकल सभा ने उसे सराहा।
वस्त्र विदेशी 'वॉयकाट' का
पास हुआ प्रस्ताव ठाठ का।

तथा खिलाफत विषयक सारी
सरल यथोचित मांग हमारी—
यदि न यथाविधि शासन माने,
यद्यपि हम न इसे अनुमानें,
विवश हुये हम शासन द्वारा
असहयोग का गहें सहारा।
यों गान्धी ने मार्ग दिखाया,
नवल प्रबल प्रतिरोध बताया।
इन्हें रही पर शुभ अभिलाषा
सहज मार्ग से पूरे आशा।

प्रेम-पन्थ के दिव्य बटोही सबका ही विश्वास करें,
धोका खावें, बहुत ठगावें, पुनरपि प्रीति-प्रकाश भरें।
ठगा-ठगा कर सफल बनें पर विजय अन्त में प्राप्त करें;
अजिर-अजिर में शत्रु-शिविर मे प्रीति-किरण निज व्याप्त करे।
इधर कुटिल-मति शासन ने भी दमन-चक्र अवरोध किया;
अपने भीषण अनाचार का कुछ कृत्रिम प्रतिशोध किया।

अली बन्धु अरु बान्धव प्यारे
मुक्त हुये अब बन्दी सारे।
गही राज्य ने नीति दूसरी
कुछ सुधार भी हुये ऊपरी।
थे सुधार शासन के अद्भुत
भीतर था पोलापन गर्भित।

पर न सदा कृत्रिमता टिकती,
छाछ दुग्ध बन सदा न बिकती।
प्रश्न खिलाफत का भी उलझा
था न अभी तक कुछ भी सुलझा।
अतः खिलाफत परिषद ने अब—
रहा न कोई मार्ग अन्य जब,
मधुर मन्त्र मोहन का माना,
शुद्ध अहिंसा-पथ सन्माना।
असहयोग-प्रस्ताव विपद में
साशा पास हुआ परिषद में।

असहयोग था, पर गान्धी ने कब न कहो क्या सहन किया?
योग-भार मन-मति पर जाने अब तक कितना वहन किया?
जब योगी ने इसी योग के साधन मे मन तान दिया;
तब गुजराती परिषद ने भी असहयोग को मान लिया।

नहीं यहीं पर रुका हठीला,
बढता जाता था ठसकीला।
नेताओं को भुला-चला कर,
अपने पथ पर बुलाबुला कर,
सामन्तों को समझाता था,
असहयोग-विधि बतलाता था।
जहा जिसे जैसे पाता था,
सबको ही खींचे लाता था।

स्नेह-धनी शासक रोबीले
विज्ञ रसिक सामन्त छुटीले
मोतीलाल सुभट से मानी
किस मोती में वैसा पानी ?
बलि बलि राजभिखारी प्यारे,
तू अनमोल जवाहर वारे।
वीर लाज-पत-राय निराला
उत्तर भारत का उजियाला।

वीर लाज-पत का रखवाला प्राण-दान देने वाला;
धन्य शेर पञ्जावी आला निर्भय वक्ता मतवाला।
शुचि चित-रञ्जन दास जननि के देश-बन्धुजन-मन-रञ्जन,
अति उदार मेधावी स्नेही सुधी नीति के नयनाञ्जन,
महाराष्ट्र के विज्ञ रथी भट विजय राघवाचारी वे;
गिरा-धनी पटु कोविद जिन्ना बुद्धि नीति-बल-धारी वे।
मालवीय धरा सा सुखकर उर्वर हरा हृदय जिसका;
सरल शान्त शुचि सौम्य वदन पर मधु सरसे सात्त्विक रसका।
कृती मदन-मोहन ऋषिवर ये अमर-नगर के रस-निर्झर;
सोमलता-'शुचिता के मधुकर सहज साधु-रुचि विद्याधर।

रहे और भी जो जन-नायक
नेता सेवक सुहृद सहायक,
जब महत्व गान्धी का जाना,
सबने इनको नेता माना।

अखिल देश की राष्ट्र-सभा ने—
—स्वतन्त्रता की पुण्य-प्रभा ने—
सच्चा दिशा-निदर्शक पाया,
कृपक-हृदय-आकर्पक आया।
महासभा का जीवन वदला,
क्रान्ति-श्रोत नव आया उजला।
नूतन रुचिर विधान बनाया,
नव क्रम से नव साज सजाया।
नियम कार्य-विधि क्षेत्र-सगठन
किये विविध प्रवन्ध सशोधन।
नी शाखायें कार्य-समिति की,
रची कार्य-गति अति उन्नति की।

जिस विधि से प्रति ग्राम-कुटी तक पहुँच सकें सन्देश सकल,
श्रमिक-कृपक के घर-घर फैले महा-सभा की सुरभि विमल।
प्रश्न आर्थिक नैतिक सुलझे व्याप्त क्षुधा को शान्ति मिले,
जिससे हो उत्कर्प चतुर्दिक आजादी का वाग खिले।
रुचिर कार्य-क्रम ग्रामोदय का अर्थ धर्म आत्मोदय का,
दिया विमल तन-मन का पोपक स्वस्थ गीत अरुणोदय का।

प्रान्त प्रान्त में विचरण करके
गान्धी अनुभव लाये भरके।
वह अनुभव-तरु भला खिला अव,
उसे क्रियात्मक रूप मिला अव।

मधुर भाव चरितार्थ हुये थे,
अति व्यापक फलितार्थ हुये थे।
आर्य-कलुष अस्पृश्य भाव का,
श्रमिक-कृषक के अश्रु-स्राव का,
हिन्दू-मुस्लिम भेद-भ्रान्ति का,
मातृ जाति की हृदय-क्रान्ति का,
था समूल उन्मूलन करना,
क्लेश देश का था सब हरना।
प्रिय स्वराज्य का लक्ष्य मधुरतम
माग रहा था उत्तम उद्यम।
आत्म-शुद्धि अनिवार्य कर्म है,
निज गृह-शोधन प्रथम धर्म है।

इन्हीं दिनों था राष्ट्र-सभा का हुआ नागपुर-अधिवेशन;
मानो नूतन जीवन पाकर चमक उठा था सम्मेलन।
राष्ट्रोन्नति सम्बन्धित अबकी पास हुये प्रस्ताव सभी,
सब व्यापक कार्यक्षेत्र का समारंभ था हुआ अभी।
लक्ष्य उच्चतम ले स्वराज्य का मन्त्र अहिंसा ग्रहण किया;
असहयोग के साधन को भी महा-सभा ने मान लिया।
तथा स्वदेशी के प्रसार को सम्मेलन ने स्वीकारा;
राष्ट्र-मञ्च के गिरि-मानस से विकसे खादी की धारा।
सभामञ्च का सूत्र-धार अब गुण-पय-दोहन मोहन था;
कार्य-कला के नव सूत्रों का अतः हुआ नव शोधन था।

इन्हीं दिनों में था गान्धी ने प्रथम बार देखा चरखा ;
मिला सफल गति-चक्र अनोखा मोहन ने बहुविधि परखा।

गंगादेवी बहन धन्य है,
तुमसी विमला कौन अन्य है?
देश-भक्ति तव पुण्य-जन्य है,
तू महिला-कुल-मान्य-गण्य है।
हृदय-चक्र वह भारत वाला—
तैंने चरखा खोज निकाला।
पुण्य चक्र को सहसा पाकर
सौंप दिया गान्धी को लाकर।
ले मोहन! मधु-चक्र मनोहर
वृद्धा माँ की स्नेह-धरोहर।
स्नेहचक्र मृदु सरल निराला
कुटिया-कुटिया का उजियाला।
गगन भूमि नक्षत्र गोल हैं,
विभु-स्रष्टा भी गोल-मोल हैं।
सब अमोल निधि रत्न गोल हैं,
अति सुडौल प्रभु-चक्र गोल है।

तथा गोल है लोल नीति इस गोरे शासक अधिपति की ;
मोहन। तेरा चक्र भले ही मति-गति मोडे नर-पति की।
विपुवत रेखा सी गुण-माला रसा-हृदय सा सरस मधुर ;
चारु चक्र यह गान्धी वाला स्नेह शान्ति रस भरे प्रचुर।

सभी शून्य सा चकित जग में ओर-छोर का भान नहीं,
अण्ड, विन्दु, अणु, रवि, शशि सबने नियति-चक्रकी छाप गही
भारत माँ के हृदय-अजिर का
शान्ति-चक्र यह मधुरे स्वर का।
मृदु गुंजन मन-रंजन करता,
जन-जन का दुख-भजन करता।
अर्थ धर्म पुण्यार्जन करता,
स्नेह-सृजन से मगल भरता।
पर्ण-कुटी का सरल सहारा,
यन्त्र हमारा चरखा प्यारा।
त्रिविध ताप अरु पाप-निवारक,
भय-संहारक सौम्य सुधारक,
सुख-सचारक शान्ति-प्रचारक,
गुण-धारक बल-कारक तारक,
त्रिविध क्षुधा-टारक रुज-हारक,
तृष्णा-सरि-धारा का पारक
दुश्शासन का दर्प-विदारक,
द्रौपदियों का प्रिय उद्धारक.
अमर चक्र यह मोहन तेरा वस्त्र कात कर ढेर करे,
वहन रहें क्यो क्षुधित विवसना दुश्शासन का दर्प हरे।
चरखे का चल मनुआ तकुआ
गुण-माला से बँधकर बँधुआ,

त्याग-चक्र की गति से चलता,
चपल मचल कर नहीं उछलता।
विमल मोद में पलता खिलता,
स्नेह-सूत्र को रहे उगलता।
मणि-दीपक सा रश्मि प्रकाशे,
दीन-कुटी के तम को नाशे।
ज्यों निर्बल की नय्या खेता,
अरु दरिद्र को रोटी देता,
त्यों धनिकों में संयम भरता,
मद हरता तृष्णा कम करता।
तरुणी विधवा का चिर-सहचर,
शान्ति-माल-धर धृतिकर भय-हर,
रोग-सोग रस-राग घटाता,
काम-क्रोध-अवरोध हटाता।

घर-घर मे मधु गुञ्जन भर-भर रुचिर चक्र यह जब घूमे;
उर उर स्नेह-सूत्र से जुड़कर अमर-सुरा पीकर झूमे।
बहन-बधू मातायें कातें बातें गाकर हिलमिल कर;
यह दुपहर का मोद मनोहर है तन-मन का उज्ज्वल-कर।

भव-सागर के दर्प-नक्र को,
काम-क्रोध के वेग-वक्र को,
यही झुकावे भाग्य चक्र को,
धन्य सत्य के ज्योति-चक्र को।

क्रान्ति-चक्र यह गान्धी ! तेरा
चक्रित तेज-किरण का घेरा।
गति इसकी यों बहुत सरल है,
किन्तु कलुष-हित बहुत प्रबल है।
कुटिल खलों की धृष्ट-चेतना
पाती है नित दृष्टि-वेदना।
भूले इसके गुंजन स्वर में
राज-नीति तब फँसे भँवर में।
निज मति के विष-मद-वश झूमे,
इसकी चक्रित गति पर घूमे।
चक्र-भ्रान्ति में दीना उलझे,
थक कर बैठे मुख-छवि मुरझे।

द्रुत गति सरल चक्र यह घूमे खल-मतिको कब दीख सके ?
ओर-छोर तो है न चक्र का कूट-नीति जब थके, रुके।
इस गान्धी के प्रेम-चक्र के भिन्न रंग दिखते जग को;
विविध रंग मति-खुर्दबीन के रँगते नर के दृग-मग को।

अधभूखे अधनंगे नर का
धैर्य-यन्त्र यह अपने घर का
जागरूक को ज्योति-मन्त्र सा
देश-भक्त को प्रजा-तन्त्र सा
सुधी साधु को शान्ति-चक्र सा
कुटिल क्रूर को शक्र-वज्र सा

व्रती भक्त को सुधा-सरोवर
विधवाओं का सरल सहोदर।
महिलाओं का प्रिय विनोद है,
सफल कार्य है गीत-मोद है।
अर्थ शास्त्र के योग्य विज्ञ को
अर्थ-सूत्रवर लगे प्राज्ञ को।
लोभी लपट जलें घूर के,
अग्नि-चक्र सा लखें दूर से।
वृद्ध जनों को समय-सहारा,
शिशु कुल का है कौतुक प्यारा।

भोग कीट से नृपति धनिक जन जूलें घृणा भय में फँसकर,
कालानल सा लखें हृदय में, नाट्य करें सूखे हँसकर।
तरुण हृदय को साम्यवाद का मूल मन्त्र सा रुचता यह,
शुद्ध इसाई को मसीह का 'क्रास'-चक्र नव जँचता यह।
कुटिल भेद-पटु राजनीति-विद कूट-चक्र सम लखें इसे,
चक्र-व्यूह सा समझ, चक्र में गोरे शासक स्वय फँसें।

किन्तु प्रेम का सरल चक्र है
नहीं कहीं से तनिक वक्र है
सवेदन से गति पाता है
पीडा-मधु पी लहराता है
विनय अहिसा की गलमाला
विश्व-प्रेम का चक्र निराला

वर विवेक का तीखा तकुआ
निरभिमान संयम का बँधुआ।
सात्विक रूई शुद्ध सत्वसी
स्निग्ध पूनियां शान्ति-तत्वसी।
मिला सत्य का शक्ति-मर्म है,
सेवा इसका सहज कर्म है।
भक्ति-गीत मृदु गुंजन भरता
सेवा को मधु-मेवा करता।
विबुध-हृदय-धन भाव-धरोहर
है मोहन का चक्र मनोहर।

है गान्धी के सौम्य हृदय का मूर्त्त रूप चरखा मानो,
सत्य-स्नेह के कर्म-चक्र सा सुधा भरा इसको जानो।
अति उपयोगी तथा मधुरतम स्नेह-सिन्धु का मन्थन-फल;
जिसकी गतिमय मधुर क्रिया ही मंगल मोदक फल निर्मल।

मोहन! चरखा चला चला रे!
गुंजन-झरि में अजिर खिला रे!
हृदय-पूनियां मिला मिला रे!
जोड़ उजला लगा भला रे!
कला भरी लघु ग्रन्थि मिला रे!
पिघले उर का नीर पिला रे!
तार मिलाकर हमें जिला रे!
जोड़े जा अगला पिछला रे!

एक तार तेरा निकला रे!
भेद-भीति भागे विकला रे!
चले चक्र मधु-तार न टूटे,
चिर अभेद के अंकुर फूटें।
उगा ऐक्य-तरु प्रेम-पगा रे
तमस भगा कर ज्योति जगा रे।
नन्दन वन के नव गुंजन सा,
उषा-मिलन के खग-कूजन सा,
अरुण-चक्र तव मिलन गान से भरे हमारे मन-मधु-वन;
हमें जगावे, पर दुलार से दे किरणों की मृदु थपकन।
सूर्य चन्द्र हैं तब तक तेरा चक्र चले, स्वर-तार खिले;
तार उजले रस के निकलें हृदय हिलें फिर गले मिलें।
कात रात दिन गान्धी प्यारे,
सुप्रभात की बात बतारे।
तात भ्रात प्रिय मात पितारे
सभी चलें मधु-चक्र-सितारे।
कात पेय अवदात पिलारे,
हृदय-गात-जलजात खिलारे।
श्रान्त भ्रान्त हैं मानव सारे
उन्हें तनिक उदात्त बनारे!
कात शक्ति निष्ठा नव आशा
घटे दम्भ की लोभ-पिपासा।

कात अन्न धन वसन सलौना
ऐक्य संगठन का शुभ सोना।
कात स्वर्ग की चन्द्र-माधुरी
खिले नागरी भव-विभावरी।
कात सुरों के सौम्य शील को
घटे नरों का स्वार्थ-नील जो।

चला प्रेम के चारु चक्र को मानवता का मन्थन कर;
विश्व-बन्धुता त्याग कलादिक रत्न राशि का ग्रन्थन कर।
शक्ति-चक्र-रव-गुञ्जन सुनकर तन-मन-बलि ले तरुण चलें;
आजादी के अरुण चरण में रण-वीरों को शरण मिले।
अगर मरण हो चारण गावें, स्वर्गारोहण, यश-वितरण;
तरण तारणी है रण-धारा विजय-वधू उठ करे वरण।

कात कात मधु-पालक चालक!
कात रसेन्दु-कला के लालक!
कात कात कर ढेर लगादे,
ईति भीति भव-भ्रान्ति भगादे।
काते जा रस-सूत्र प्रेम का -
नेह-नेम का विश्व-क्षेम का।
स्नेह-सूत्र अति लम्बा तेरा
शुचि, अनन्त मृदुता का प्रेरा।
यह घर घर में अजिर अजिर में
फैले जाकर नर-उर-उर में।

सबको सरस व्यास में लावे,
प्रेम-पाश यह बढ़ता जावे।
मधुर हास सा, नव प्रकाश सा,
शील कला के लोल लास सा,
जन-जन-मन में मधु सा चिपटे,
स्नेह-सूत्र यह विकसे लिपटे।

तेरे चरखे के धागे ने मोहन! जन-मन बान्ध लिये;
भरत-भूमि मे कोटि जनो के भाव जोड़ कर साव दिये।
तेरा कच्चा सूत हिन्द मे जादू के बल फैल रहा;
किन्तु 'कूकड़ी ना सूतर' ने फौलादें का खेल गहा।
अभिमन्त्रित धागे की महिमा कौन बखाने या जाने?
तेरे इस चरखे की गरिमा लघु-मति जन कैसे माने?
यह निष्ठा से गुॅथी पहेली हीन-बुद्धि कैसे समझे?
तभी न अन्धी श्रद्धा कह कर बुद्धिवाद मुरझे उलझे।

जब गान्धी ने चक्र चलाया
राष्ट्र-सभा ने भी अपनाया।
महासभा अरु गान्धी मिलकर
एक हुये थे मानो घुलकर।
यह जन-गंगा तरण-तारिणी
प्रभु-पदाब्ज—मकरन्द-धारिणी,
गान्धी के मस्तक पर विलसी,
शंभु-मौलि पर सुरसरि हुलसी।

दोनों ने दोनों को जाना,
परम श्रेय था इन्हें वहाना।
वह महीयसी चिर कल्याणी -
तरें स्पर्श से जिसके प्राणी,
शिव-शकर की मौलि-सहेली -
भरे हिन्द में मृदु रँगरेली।
शंकर-गगा बडा कौन है?
साक्षि हिमालय खडा मौन है।

आर्त्त-धरा को हृदय हरा हो सुर-सरि माँ स्वर भरे जहाँ;
कोटि नरों के उर-मन्दिर मे गान्धी-शकर नहीं कहाँ?
न्याय करेगी हिन्द-भारती कैलाशी की शुचिकाशी,
हैं महान अपने तो दोनों भले भक्त हम विश्वासी।
नमन करें हम महासभा को खोजा जिसने शिव-मस्तक;
वह तो नगा-भूखा भिक्षुक हँसे शभु को लख दर्शक।
मादक मधु का महा प्रवर्त्तक यह मतवाला कैवर्त्तक,
विकृत पशु गणों का पोषक पागलपन का संवर्द्धक।
राष्ट्र-सभा को इस गान्धी ने अपने ही मे लीन किया;
जयति भगीरथ महारथी-वर गगा को निज नाम दिया।
मलय गन्ध जब मिल समीर को खिलकर सुरभित कर देता;
प्राची से मिल बालारुण भी ज्योति भुवन मे भर देता।
जब वसन्त मधु-वन में आता नव उमग रस भर लाता,
राष्ट्र-सभा के यश को गान्धी क्यों न विश्व में विकसाता?

निखिल राष्ट्र के भट-समूह के
अग्र भारत के नीति-व्यूह के -
गान्धी बापू द्वार-पाल थे,
धरे दिव्य तलवार-ढाल थे,
शक्ति-शस्त्र थे ज्वाल-माल से,
विद्युत गर्भित ज्योति-जाल से।
सेनापति यह अति द्रुत गति का
विपत्काल में उर्वर मति का-
शक्ति-स्तम्भ सा बढता आवे,
शत्रु-सैन्य पर चढता जावे।
आज राष्ट्र के उजले रथ पर
चढा सारथी अद्भुत गुण-धर।
अर्द्ध विजय तो हमने पाली
जब इसने हय-रास सँभाली।
तरुण अश्व हँस हींस रहे हैं,
चक्रों मे नव घोष बहे हैं।

भारत का रथ-चक्र दिव्य यह चले शौर्य-चरखा प्यारा,
ओ अरुण-ध्वज अरुण-सारथी। वहा ओज की नव धारा।

अरुण-चूड से तरुण-हृदय सब
पूर्ण जागरण-ध्वनि गावें,
दिन-मणि के रथ-चक्र घोष से
विश्व-कमल-दृग खुल जावें।

चतुर्थ सोपान

चक्र-गीत

(चरखा-सतसई)

दास्य रोग पर असहयोग का हुआ हिन्द मे नया प्रयोग,
निद्रालस के निशा-भोग मे हुआ जागरण का सयोग।
प्रेम-योग-उद्योग-मार्ग यह बहुत कठिन इसका उपयोग,
असहयोग मे निहित सत्य का उर्वर श्रेयष्कर सहयोग।
त्याग भरे इस अमर-राग से सहसा जाग पड़ा था देश,
था विशेष सन्देश हिन्द को स्वाभिमान गौरव का वेष।
आन-मान की नई तान से चौंक पड़ा था हिन्दुस्तान;
नव-विहान का प्राण-गान था लाया आशा का आह्वान।
ज्ञानवान हो यदि चालक अरु आरोही भी हो न अजान,
तो उड़कर उत्थान करे झट सत्याग्रह का यान महान।

असहयोग का रण-विधान है मानव को प्रभु का वरदान;
त्राण-दान से अधिक उचित है मुक्ति-मार्ग का अनुसन्धान।
दिव्य धनुष को देख हर्ष से नाच उठा था भारतवर्ष;
उसे लगा उत्कर्ष खेल सा पाकर ऐसा मन्त्रादर्श।
जब गान्धी ने चाप चढाकर पाकर सेना का सहयोग;
असहयोग का बाण चलाया हुये जोश में पागल लोग।
किन्तु जोश मे हटे होश तो बचे शेष मे झूठा घोष,
आखिर शक्ति-तोष के पद पर आ बैठे निर्बल का रोष।
दिव्य शस्त्र सञ्चालन-विधि मे प्रमुख प्रेममय मन्त्रोच्चार;
जब इस जयाधार को सैनिक भूल जॉय रण मे सविकार।
रुकें प्रगति उद्धार तभी से रुके स्फूर्ति का रस-सञ्चार;
तजते सैनिक स्वाधिकार की सीमा के आचार-विचार।
अतः आदि में वहिष्कार का दीखा जमता गहरा रग,
भग हुआ वह किन्तु अन्त मे जब उमग की घटी तरग।
एक बार तो बहिष्कार से रुका विदेशी का व्यापार;
तजे वकीलों ने स्वेच्छा से शासक-न्यायालय के द्वार।
तजे खिताव, हुये थे सचमुच खानबहादुर राय नवाब,
छात्रों ने विद्यालय तजके तजे मोह 'डिग्री' के ख्वाब।
ब्रिटिश राज की बुरी नौकरी छोड़ रहा था तरुण-समाज;
उन्हें न भाया दास्य-लाज से भरा हुआ कुत्सित सुख-साज।
थे सहास मुख कौंसिल तजते देश-दास जननी के लाल;
हुआ वहिष्कृत नगर-पुरा मे वस्त्रादिक वैदेशिक माल।

हुईं होलियाँ ब्रिटिश वस्त्र की उमडा घर घर मे उत्साह ;
राह राह पर लाल ज्वाल से बहा हरा रस-भरा प्रवाह !
ब्रिटिश वस्त्र की चिता देखकर मुदित भारती बोली 'वाह'–
है इसके प्रति तार तार मे बुनी हुईं भारत की आह।
वस्त्र नहीं यह क्रूर पाप है यही हिन्द का है अभिशाप,
कोटि कोटि के उदरानल का ताप भरा भीषण सन्ताप।
जलीं होलियाँ घर घर उसकी रसकी बिखरी फाग बहार ;
धन्य त्याग-शृङ्गार सजाकर सीखा कुछ कुछ अग्नि-विहार।
या उन दीनो की आहो का हुआ अग्नि से द्विज-सस्कार,
जली होलियाँ होम-वह्निसी मिला पुण्य-जीवन-अधिकार।
जला होलियों मे भारत के आरत का कायरपन-रोग,
तथा जला लका-शायर के स्थाई डायर का रस-भोग।
जला मोह से भरा बहुत सा मुस्लिम-हिन्दू द्रोह-विरोध,
नवल बोध के शोधानल मे जला कलुष का मैला क्रोध।
जले विदेशी कपड़ा, इसने दिया देश को महा-विषाद ;
यह विवाद की बात न इसने किया हमे सचमुच बरबाद।
याद नहीं क्या सुख का दरिया बहता था घर घर आजाद,
नाद मधुर चरखे-करघे का गली गली मे था आबाद।
जब सुख-चक्र घरो मे चलता खिलता प्यार भरा रस-सार,
मिलता गीताधार, उरो से उठती मृदु गुञ्जन झनकार।
किन्तु विदेशी वस्त्र-दैत्य ने छीना मुख से सुख का ग्रास,
थे निराश सब चतुर जुलाहे लखते थे आकाश उदास।

इस विलायती दानव का मुख महागुहा जैसा विकराल,
काल-व्याल सा लगा फैलने ग्राम नगर घर घर मे जाल।
कोटि जनो के भोजन को इस एकाकी ने लिया समेट;
करके भी आखेट कोटि का भरा न अबतक इसका पेट।
रहे प्रवीण जुलाहे लाखो वे सब इसके हुये शिकार,
जिनके पटु कर तार-तार मे बुनते जादू का शृङ्गार।
जिनके कर की शिल्प-कला मे मिला हुआ था स्वर्गिक राग,
कला-बाग अनुराग भरा वह जला, भूख की फैली आग।
जिनकी हवा गूथने वाली उँगली-गति थी अति सुकुमार,
बुनती थी जो दूर पार तक निराकार से पतले तार।
शिल्पाधार गँवाकर वे सब नष्ट हुये होकर बेकार,
हाथ कटाकर रोजगार बिन रोई बुनकर कला अपार।
कर विहीन हो दीन जुलाहे थे लाखों बेकस बेहाल,
हुये काल के ग्रास अन्त मे शक्तिहीन वे नर-ककाल।
चरखे ने भी उस दानव से एक बार तब मानी हार,
कर विहीन करघे के दुख से हुई हृदय में व्यथा अपार।
सखा-विरह से चक्र-हृदय की सञ्जीवन गुञ्जन-झनकार;
बन्द हुई, झटके से बिखरे प्राण-सूत्र के अन्तर-तार।
पुण्यमई जो अगणित बहने पहने शील हीर के हार;
काता करती कोटि गृहों मे पावन रक्षा-बन्धन तार।
स्नेह-कला की प्रतिमायें जो काता करती थी अविकार,
पतला कोमल सूक्ष्म स्नेह का मानो बिना तार का तार।

कलामई' जो खींचा करतीं नीरस रुई से रस-तार;
अजिर अजिरमे निर्मल रुचका, करती सुजला कला प्रसार।
दाँयें कर मे चारु चक्र अरु बायें मे प्यारा मधु-तार,
काता करतीं बहन भावती हरि-वीणा की स्वर झनकार।
कला पुतलियाँ विमल उँगलियाँ सदा सिरजतीं प्रभा-प्रकाश,
उमा भारती यमुना सीता घर घर भरतीं पुण्य-विकास।
किन्तु हिन्द-मानस मे जब से पैठा दैत्य विदेशी नक्र;
पाकर क्रूराघात अनेकों लगभग टूटा अन्तर-चक्र।
उसी असुर के धन की होली भारत मे जब हुई अनेक,
लखकर नाच उठा था पुलकित वृद्ध जुलाहा गान्धी एक।
जाने कैसे बचा रहा यह दलित जुलाहों का अधिराज?
विधि ने लाज बचाई, पाया फिर कबीर कुल ने सरताज।
दलित-राज युवराज। तुझे भी किस पन्ना ने लिया बचाय?
धन्य उठाया राम-नाम का छत्र-मुकुट बलि रभा धाय।
दलित-नृपति। क्या इसीलिये तुम करमें चक्र उठाकर आज-
असुर-राज को समराङ्गण मे दिखा रहे रण-ज्वाला-साज?
किन्तु अहिंसक। उचित न तुमको यह विरोध ऐसा प्रतिशोध,
या होली के मिष देते हो वस्त्रासुर को नया प्रबोध?
यों भारत मे असहयोग का बढा आदि मे काफी वेग,
इधर चौगुना बढा मोहवश शासन के मन का उद्वेग।
जिस साधन से शोषित जन को मिले शक्ति का जीवन तोष;
निश्चय उससे भडक उठेगा शोषक-मन मे निष्ठुर रोष।

चला भयंकर दमन-चक्र तव उबल पड़ा शासन का क्रोध ;
अमित धधकते शोले बरसे गरजा मद में दंभ अबोध।
किन्तु हमारे सैनिक प्यारे सीख रहे थे रण-व्यवहार ;
असहयोग के योग्य अभी सब हुये न थे पूरे तय्यार।
अभी मिला था उन्हें नया ही बहिष्कार नामक हथियार,
अभी तरुण-गण सीख रहे थे सञ्चालन का विधि-व्यापार।
उन्हें लगा, है शस्त्र अहिंसा निर्बल का निष्क्रिय प्रतिरोध;
पता नहीं था महाशक्ति यह शौर्य वीर्य की अन्तिम शोध ;
यह मानव के बल-विकास के महाकाव्य का अन्तिम पृष्ठ;
सुभट बलिष्ट अहिंसक को फिर रहे न कुछ करना अवशिष्ट।
पर यह नर की अमर नसेनी है अति कष्ट भरी रण-धार ;
कंटक शूल कृपाण बिछी हैं पद-पद पर विष-विपद हजार।
यह न सरल सामान्य समर सम है अभंग इसका रण-रंग;
प्रति तरंग-गति है भुजंग सी निशि-दिन रहे 'त्रास' का संग।
एक बार पर, नर इस रण में कूद पड़े श्रद्धा के साथ ;
फिर नरता में भरे अमरता पार्थ-सारथी पकड़ें हाथ।
समर-विज्ञ गान्धी ने जिस दिन देखी निज सेना की भूल ;
उनके फूल सरीखे दिलमें चुभी व्यथा की तीखी शूल।
सोचा उनने—'अपने सैनिक धार रहे प्रतिहिंसक भाव ;
यहाँ अहिंसक रण में यों तो हो न सकेगा कभी बचाव।'
आन्दोलन में विविध लोग जो कभी न कुछ देते सहयोग ;
उनके प्रति था सैनिक-दल में बढा असहिष्णुता का रोग।

इसीलिये सैनिक-शिक्षण की अभी जरूरत काफी और ;
शुद्धि-क्रिया के विना देह मे घुसते हिंस्र रोग के चोर।
साधारण रण-सैनिक ही जव सहता इतना शिक्षण-ताप ;
विना पूर्ण अनुशासन, रण-विधि कभी न आती अपने आप
धर्म-युद्ध का शूर सिपाही है प्रभु-पथ का राही दिव्य,
उस उत्साही की होती है रण-शिक्षा वैसी ही भव्य।
शम दम सयम विविध नियमसे भरे चरित मे रस का त्याग,
वही अहिंसक योग्य सुभट है करे शत्रु से जो अनुराग।
यो सैनिक-शिक्षण मे यद्यपि वाकी था करना उद्योग ;
फिर भी काफी सफल हुआ था असहयोग का महा प्रयोग।
साधारण जनता ने जगकर सुनकर स्वाभिमान का राग,
जान लिया सत्याग्रह ही से फले देश का आशा-वाग।
जागी उनकी छिपी शक्ति थी पाया कष्ट-सहन-प्रतिकार,
लोक-जागरण वलाधार है खोले वही विजय का द्वार।
किन्तु फैलने लगी फूट भी जव जनता कुछ हुई प्रवुद्ध,
देख समय-गति गान्धी ने तव रोका असहयोग का युद्ध।
कपट ईर्ष्या स्वार्थ मोह सव लगे दिखाने निज निज खेल,
तथा देश की वृहद झील का जमा हुआ पेन्दी का मैल—
जो हृत्तल मे डेढ सदी से जमा रहा था अपने पॉव,
कलुष-भाव से जिसने अव तक विफल किये थे सवके दॉव।
सहसा आया असहयोग की हलचल का नैतिक तूफान ;
झकझोरे से अन्तस्तल का प्रकटा वाहर कलुष-उफान।

भावुकता मे बिना विचारे जो वकील नौकर या छात्र;
निकले थे उत्तेजित होकर वे सब हुये हँसी के पात्र।
भावावेश घटा तब उनको अखरा बहुत स्थान का त्याग;
कब विराग के बिना, देश से उदित हुआ व्यापक अनुराग?
वे जन वापिस लगे लौटने सहकर स्वात्म-पतन अपमान;
आत्म-तेज के विनिमय में हा! रुचा उन्हें दैहिक सुख-दान!
हिन्दू मुस्लिम रक्त बहाकर हुये धर्म-रक्षा मे मस्त;
त्रस्त देश के धर्म-वीर ये नर-बलि देने मे थे व्यस्त।
लाठी और छुरी से ये भट करके छोड़ें पूरा न्याय;
ये मन्दिर मस्जिद के त्राता, कौन कहे इनको निरुपाय?
पेट धर्म का पाट रहे ये काट रहे देखो नर-मुण्ड;
शिशु महिलाओं की हत्या से पूर रहे मजहब का कुण्ड!
ऐसा बाजा, यह गोहत्या, अबभी क्यों न बचेगा धर्म?
शर्म कौनसी धर्म-कर्म मे? लड़ना ही मजहब का मर्म?
आमेठी सभर गुलबर्गा और नागपुर मे दिन-रात;
कई दिनों तक धर्म-नाम पर हुये बहुत दंगे उत्पात।
सुधी डाक्टर असारी अरु, अजमलखां थे बड़े-हकीम;
किन्तु देश के धर्म-रोग से हारे सभी चिकित्सक भीम।
यह गान्धी ही प्रेम-नीर से भले घटावे कुछ उर-पीर;
प्यारा अन्तर-वैद्य हमारा यही बतावे कुछ तदबीर।
बिना अपरिमित परिस्कार के कभी न होवे आत्मोद्धार;
हो प्रसार पर जब विकार का कौन करे निश्चित उपचार?

गान्धी कहता—चरखा ही है एक महौषध प्राणाधार;
बिखरे हृदयों को बांधेगा यही 'प्रेम-सूतर ना तार'।
भारत-हित नवनीत यही है शेष सभी साधन हैं तक्र,
यही शक्र का सुधा चक्र है, इसे बहुत है इसका फक्र।
ओढा जिसने दलित-राज्य मे सेवा के काटों का ताज;
शूद्रराज गीताविद गान्धी चक्र-गीत गाता है आज।
गगन-राज्य मे विपद-अन्धेरा जब विकार का करे प्रसार,
रजनी रानी चन्द्र-चक्र से काते, बुने चन्द्रिका तार।
तथा राज्य के अजिर अजिर से उठे मधुर चरखे की तान,
निज निज तारक-चक्र सजाकर कातें महिला आशा गान।
निशिरानी के सूत्र-यज्ञ मे यों आहुतिया पड़ें अनेक,
तब खिलती है पुण्य-पूर्णिमा फलती प्रेम-चक्र की टेक।
पूनम के दिन छुट्टी रखके चक्रोत्सव करता नभ-देश,
तारक-चक्र न चलते, केवल राज-चक्र देता सन्देश।
प्रभु-पद-चेरी उषा-किशोरी अरुणासन रख देती नित्य;
वहीं बैठ हरि कातें नियमित उनका चरखा है आदित्य।
ज्योति-चक्र-रवि किरण-तार का तने मनोहर वस्त्रालोक;
ढके शोकहर दिव्य जुलाहे। तूही तीन लोक का चौक।
ले प्रकाश के शुभ्र सूत्र अरु अन्धकार के काले तार;
बुनते शकर दिवस नाम का अपना धूप-छॉह शृङ्गार।
देखो भव के वर्ष-वस्त्र की इन्द्र-धनुष सी चित्रबहार;
षट रितु के छै रग सहित हैं सजे शुभ्र दिवसों के तार।

नरेन्द्र

भाई बहनो ! खादी पहनो तजो भोग मे बहना आज।
तुम्हें असल सुख-साज मिलेगा अगर बचे भारत की लाज।
सब विधि परखा चरखा कातो यही एक असहाय-सहाय,
कातो दरिद्र नारायण के प्रेम-काव्य का श्रेयाध्याय।
दायें करसे चक्र चलाओ बाये से खींचो रस तार,
करुण-धार सा तार हृदय का काते प्यार भरा ससार।
इस कर काते तार-तार से करे रमा प्रभु का शृङ्गार,
दीन-कुटीर-विहारी हरि को भावे ऐसे ही उपहार।
कातो कुछ तो गीत प्रीति के हृदय-प्रान्त को करो पुनीत,
कृषक ग्वाल-बालो की खातिर कातो वसन तथा नवनीत।
प्रीति-पीर-सरि-तट के वासी व्रज की क्यों न हरे हरि भीर,
माखन-चीर चुराने 'आवे' प्रेम-नीरमय यमुना-तीर।
तार नहीं यह मूर्त्त-प्यार है जीवन-सूत्र यही साकार-
गूंथो इसमें हार दिलो का दीन-बन्धु को दो उपहार।
चले घूमता आगाद चरखा चले रात-दिन चक्राकार,
स्नेह-सूत्र के गोले लाखों गोल गोल होवे तय्यार।
घूम घूम कर वस्त्र वेचते फेरी वाले फिरें हजार,
कर्म-चक्र का प्रेम-वृत्त यह बढे रात-दिन वृत्ताकार।

सदा मधुर गति-चक्र नाथ का
प्रेम-पाथ का रुचिर तड़ाग
त्याग-सूत्र का सुन्दर शिल्पी
पोपे प्रीति कला का बाग। १०४

पुण्य मई भारत की वधुओ ! कातो री यह सत का तार :
प्राणाधार प्यार के स्वर से एक तार मे हों भरतार।
देह-गेह मे मेह नेह का झरे चक्र-रव से अवदात,
सदा प्रात जलजात सरीखा खिला रहे मगल-अहिवात।
वधू! मेहदी कर पर ही क्या रची रहे उर पर दिन-रात,
सूत्र-गीत की करामात से भगें अजिर से सब उत्पात।
चरखे के स्वर सुधा-गान से मिलकर चुडियों की झनकार,
क्यों न अमरता प्राप्त करेगी पीकर नित जीवन-रस-सार?
वधू! प्रेम-धागे से बँधकर प्राणाधिक प्रिय जीवन-नाथ,
दो हाथों के लग्नबन्ध को पूजेंगे आदर के साथ।
शूर-स्वामिनी पुण्य-कामिनी वीर-भामिनी कातो तेज,
शक्ति-दायिनी आज बिछाओ आत्म-ज्योति की पावन सेज।
भरो हृदय-तकुए पर मुग्धे! आत्म-कला के पावन तार,
प्रति पल बढती जावे नव नव प्रीति-कूकडी कलशाकार।
री गृह-शोभे! वधू मनोज्ञे! सहज शान्त तव अन्तर-प्रान्त,
किन्तु चक्र-रव-कान्ति भरे जब कीर्ति-गीत सीखें तव कान्त।
अरुण कान्त की प्रिया अरुणिमा कातो निर्भयता का राग,
देख तुम्हारे प्रभा-बाग को जगें तरुण-कमलों के भाग।
सत्याग्रह के अमर समर मे वधू! तुम्हारे ही हृदयेश,
प्राणों को तज कर भी पालें स्नेह-सूत्र का शुभ सन्देश।

. वैसठ

चले शौर्य का सूत्र चक्र पर, वीर-वधू ! कातो बलिदान,
आन-मान पर प्राण-दान के रण-गुञ्जन का हो उत्थान।
जीत प्रीति परतीति भरेगा चरखे का जीवन-संगीत;
चक्र गीत की दिव्य रीति से हारे ईति भीति विपरीत।
प्रिया-पाणि से कते सूत की बुन रे त्याग-जुलाहे ! पाग,
रँगदे रे रँगरेज हृदय के रंग मनोहर है अनुराग।
हिमसे धवल विमल कुर्त्ते पर रँगी स्वदेशी व्रत की पाग,
रसके भाजन साजन पहने खेलें प्रीति-आग मे फाग।
यह खद्दर की प्यारी सारी पुण्य उमग वसन्ती रंग,
निखर उठेंगे इसे पहन कर वधू तुम्हारे पावन अग।
फुलवाड़ी सी खिल जाओगी पहनो सेवा-साडी-साज,
इसे दूर से देख मुदितमन पावन हो जावे ऋतुराज।
इस सारी के तार-तार मे गूथा भारत माँ का प्यार,
इस पीहर की स्नेह-धार से सीचो बाग-सुहाग अपार।
हे सुहागिनी वधू भागिनी ! प्रेम-पुष्ट खद्दर का चीर;
यह मोटा पट प्रीति-पगा है शोषे अमित दृगों का नीर।
प्रेम मार्दव ह्री विनम्रता तथा धड़कते उर का भार;
खद्दर के हिम-धवल हृदय के धागों में है भरा दुलार।
तरुणी ! सूखे हाथों ने है बुना सरल खद्दर का चीर;
सूखे तनके निर्मल धन को क्या समझेंगे भोग-अधीर ?
शुष्क करो ने पर कुछ ऐसी की है कला भरी तदबीर;
जिससे सूखों का यह खद्दर शोष सके निशि-दिन दृग-नीर।

वधू! क्षुधा का निराहार का यह कृशता का महाप्रतीक;
श्रमिक कृषक के कोटि घरों में होना इसको सदा शरीक।
कैसे हो बारीक बहू! यह श्रमिक कृषक का अपना चीर?
इसे शोषना है शरीर का अमित पसीना अरु दृग-नीर।
कैसे हो यह झीना पतला? इसे बहुत करना है काम,
ग्राम ग्राम में धाम धाम में इसे कर्म करना अविराम।
तथा विदेशी वस्त्रासुर से करना है इसको संग्राम,
राम-नाम का कर्म-वीर यह इसे न रुचते रति विश्राम।
सघर्षण "खैचातानी" से फटे न यह रण-गाढा चीर,
महाधीर ने बुनी समर हित मोटे धागों की प्राचीर।
अभी नहीं करनी है इसको कला-दौड की झीनी होड़,
ढँकने है कृश तन-ढाँचे के हड्डी फँसली के सब जोड।
कला-गीत रस-भीना झीना कम रुचता है इसको आज,
लकडी से सूखे ढाचे पर लाज मरे नागर-रस-साज।
रहने दो रस-रीति-नीति को ठिठुरे तन को लगती शीत;
इस कृशता के उदर-विविर मे पडने तो दो कुछ नवनीत।
विषम-कोणमय ऊँची-नीची जर्जर झुकी कृपक की देह;
खद्दर को ढकने है ऐसे गड्ढो वाले अगणित गेह।
विषम देह पर विषम चीर ही बैठ जायगा कुछ तो ठीक;
अभी न सोहे सखि! खद्दर मे सूतो की समता बारीक।
देख वधू! वह खद्दर वाला वह सूखा सा दुबला वृद्ध,
वही शुद्ध इस विषम वस्त्र का आविष्कारक है रस-सिद्ध।

इस पुरुषोत्तम शुद्ध बुद्ध का महाशुद्ध है आविष्कार ;
धन्य कार्य अरु कारण दोनों हैं अपार रस-पुण्यागार।
दोनों ही हैं भरत-भूमि की विधिके प्रतिनिधि पुण्य स्वरूप,
बाह्य रूप दोनों का सीधा अन्तर मधु का कूप अनूप।
ये गान्धी हैं यह खादी है दोनों सत्य-स्नेह के नाम ;
बलि बलि गान्धी पुरुषोत्तम का वस्त्रोत्तम खद्दर सुख-धाम।
गान्धी ही के हृदय-चक्र का मूर्त्त-दूत है चरखा पूत ;
तथा हृदय के प्रेम-तार सा सञ्जीवन चरखे का सूत।
स्नेह-सूत्र हो मोटा पतला पात्र कार्य अवसर अनुसार ;
रूप विषमता ही में उसका, वैसे ही चरखे का तार।
जीवित हरे वृक्ष के पल्लव कभी न होवेंगे इकसार ;
वधू! एक सी कैसे होवे हृदय तार की स्वर-झनकार ?
भरा हुआ रहता है उसमें नर-उर का जीवित व्यापार,
द्वन्द्व मई नरता का बहुविधि प्रति दिन का सुख दुख-संसार।
जिस दिन सुन्दर पुत्र-प्राप्ति से घर में भरे बहू की गोद ;
उस दिन कातें हाथ सास के विनय प्रार्थना-मगल-मोद।
हाय! वधू, पर जिस दिन घरमें तरुण पुत्र का हो अवसान;
सोचो, उस दिन क्या कातेगा वृद्धा माँ का हृदय-मशान।
हा! उफान तूफान नयन का विधि-विधान का विषमय त्राण।
कते सूत में मिल जाता है दग्ध प्राण का क्रन्दन-दान।
उस दिन भी उस वृद्धा माँ को पड़े कातनी दृग की धार।
है वृद्धा के कन्धों ही पर सब शिशुओं का पालन-भार।

वह सद्य. विधवा है, जिसका उजड़ा सोने का संसार,
पडे कातना उस दीना को खोकर पति सा प्राणाधार।
वधू नागरी तुम गुणागरी कर सकती हो स्वय विचार,
कैसे होवें सदा एक से खद्दर के जीवन-मय तार ?
शकित उरकी कपित कर की धड़कन कपन के उद्रेक,
कते हुये है इन तारों में नयनो के अभिषेक अनेक।
रुदन-मोद-मय द्वन्द्व हृदय के, वहुविधि झटको के उद्वेग,
जाने इनमे कते हुये हैं कितने हृदयो के आवेग ?
हृद-वीणा के स्वर न अधिक पर वजते विपुल भाव के राग;
स्वरारोह अवरोह भेद से कभी भैरवी कभी विहाग।
किन्तु गीत-मर्मज्ञ कलाविद, देख लिया जिसने स्वर-सार;
उस द्रष्टा को जॅचे एकसा रागों मे फैला स्वर-तार।
वधू। वही स्वरकार धन्य जो छेडे प्राणमई झनकार,
रसाधार प्रभु-चक्र-वाद्य पर काते व्यापक स्वर का तार।
वाग लगा अनुराग-राग का चूक न जावे दिल की हूक;
शुभ सुहाग के सुमन, जागके, चुनो वहू। नित रहकर मूक।
रचे रुचिर शृङ्गार तरुण से मय-दानव के दूत हजार,
द्वार द्वार पर गाते डोलें साधु-वेष मे मदिर मलार।
वेष गेरुआं केश सुरभिमय पीताम्बर पाटल के हार
अर्द्धोन्मीलित दृग मदमाते कर वीणा की मादक धार।
मुनि-कुमार से सजे सुभग वे प्रेम-नाम पर रागें मोह,
छोह दिखा कर अजिर २ मे करें वधू। मन-धन की टोह।

कन्हैयालाल

होंशियार नित रहो नवोढे ! रक्खो चरखे का प्रतिहार ;
चौकीदार तुम्हारा रक्खे शील अहिंसा की तलवार।
सयम का शुभ हार पहन लो खद्दर का सात्विक शृङ्गार ,
फिर अपार पति-प्रेम-धार मे बहे दस्यु के दूत हजार।
सत की प्रतिमा वधू नागरी परमेश्वर हैं पति प्राणेश ;
प्रेम-चक्र सन्देश पिया का हरा भरा उपदेश अशेष।
रसावेश अवशेष न रखना गाओ, हरषे हृदय-निवेश ,
हृदय-देश के सूत्र-राग से सदा मुदित रहते हृदयेश।
पर माया के मन्त्र-जाल पर कते बुने ये मिल के वस्त्र ;
बाह्य रूप की चमक-दमक के ये सब है दानव के शस्त्र।
दानव के निर्जीव हाथ नित कातें बुनें एकसे तार ;
सदा मृत्यु की जड़ समताका है श्मशान सा यह शृङ्गार।
अग्नि-चिता का अस्थि-भस्म का कते एकसा क्रन्दन-सूत ,
इन्हीं नाश के सम सूतो का बुनते वस्त्र तमस के दूत।
यह शैतानी वसन पतन का बाहर से भड़कीला रूप ;
पर जीवनमय खद्दर का है हृदय बहुत ही मधुर अनूप।
तमसाधिप के निशा-वस्त्र में गरल हेम वैभव के तार ,
दृग-रोचक मदिरा-मद मॉडी कपट शिल्प विरचित इकसार।
या श्रमिकों के रक्त-मास से कते बुने कपडे के थान ;
भरे हुये हैं जिन धागों मे जीवन-शोषक विष-कण म्लान।
अनाचार के ढेर उगलता हृदय चूस कर यन्त्र हरेक ;
मद्य ईर्ष्या घृणा भोग के जात जात के थान अनेक।

इन वस्त्रों में बुना हुआ है अनाचार मदिरा का पाप ;
दश शिशुओं की गलित कृशाङ्गी जलती माताओं का शाप।
जीवन-मृत मद्यप की भूखी रुग्णा पत्नी का उर-ताप,
बुना हुआ है जिसमें वृद्धा जननी का भीषण सन्ताप।
रोगी गलित विकृत जर्जर से लाखों शिशुओं का उर-दाह,
जिन्हें देख कर आह कराहे जिन्हें न जगमें राह पनाह।
बुना हुआ है कोटि गृहों के सुख-दीपक का चिर निर्वाण,
लाखों ही के प्रेम-प्राण का हा! मशान जैसा अवसान।
इन वस्त्रों के मेरु-ढेर ने पिया रुधिर का पारावार,
चमके तभी चेहरा इनका करके मदिरा माँ साहार।
गोल सचिकण सुन्दर कोमल विभव-पुष्ट मृदु माँसल देह ;
लोभ काम को भावें ऐसे धनी रईसो के रस-गेह।
नाजुक पतले वस्त्र विदेशी चमकदार मोहक अभिराम,
क्या झेलें वे झीने भोगी सत्पथ-कटक वर्षा-घाम ?
तनिक परीक्षा के झटको से फटें काम के चिकने चीर,
गलित अंग बाहर से चुपडे कैसे सहें प्रेम की पीर ?
धीर कृषक का जीवित खद्दर सात्विक दुर्दम सौम्य कठोर,
द्वन्द्व जयी विनई अति पावन प्राण पूर्ण योद्धा पुरजोर।
जड़ विलायती भोग-व्यसन का शुचि खद्दर से कैसा जोड ?
करे पोखरी कौन पंकिला विमला सुर सरि-निधि से होड ?
पुण्यपया माँ कामधेनु का कहाँ श्वान से करे मिलान ?
सभ्य गोद के धुले मोद मे यद्यपि लगा बैठने श्वान।

ज्यों खद्दर का अन्तर ऊंचा भोग-वस्त्र उतनाही नीच ;
अम्बर और रसातल सा है मृत्यु तथा जीवन का बीच।
जिस रईस ने सुहलाये हैं। वेश्या के कोमल कर-पाद ;
वह क्या जाने ऋषि ब्राह्मण के फटे चरण का पूजा स्वाद ?
पीर पराई से शम-दम के फटी बवाई वाले पैर,
व्रती कृती भागी जन पावे ऋषि पद युग की पूजा-सैर।
प्रेम-पीड़ की कन्था के हे वधू! पुण्य से पावन तार,
आत्म-शक्ति-गति विरति-पादुका पूज उन्हें पति-चरण पखार।
वधू। रुचिर चिर सहचर वरने देख गहे हैं तेरे हाथ ;
निज कर-काता बुना वस्त्र तू देदे हृदय-चक्र के साथ।
हृदय-चक्र का विनिमय करलो पहनो प्राण-सूत के हार ;
सदा वधू-वर रचो परस्पर पावन प्रेम-वसन-उपहार।
बहू। हमारी प्यारी निधि है यही बाजरी गेहूँ ज्वार ;
इनकी स्नेहभरी रोटी ही करे हमारा सर्वोद्धार।
बहू। रूस की राई अथवा स्काटलैंड की 'बिसकुट ओट',
पाक-भवन को करे अपावन भरे हमारे घर मे खोट।
बहू। छाँटकर कूट पीस कर अपना आटा कर तय्यार ;
घाटा नही हमारे घर में क्यों हम मॉगे भीख उधार ?
बहू! बना तूँ अपने करसे प्रति दिन मीठी रोटी-दाल,
डाल स्नेह-घृत अरी बहुरिया। खाकर हम सब रहे निहाल।
घर की रूखी रोटी में है षट्रस-व्यञ्जन-स्वाद पुनीत ;
भरा हुआ है उसके भीतर प्रेमामृत जैसा नवनीत।

इसी तरह है वह। समझले चरखे की भी सब रस-रीति,
स्वय धुनक कर स्वय कातले तार-तार मे भरदे प्रीति।
पाक-कला की वस्त्र-शास्त्र की हो दोनो की विदुषी धन्य,
कला-चतुरता वधू-वश की असन-वसन मे भरदे पुण्य।
चक्र-दड-धर सन्यासी से मिली हमे नव-जीवन-मूरि,
खादी नामक सदा हरि जो भरी शक्तियाँ जिसमे भूरि।
यह खादी की प्रेम-लता है कविता-मृदुता से भरपूर,
कलिता ललिता पुण्य-लता है फले शील-बल-फल अगूर।
अजिर अजिर मे इसे उगालो भारतवालो तुम सब वीर,
रहा सींचते, उर-पन घट के चक्रोद्यम से सींचो नीर।
इसी लता के सोम-पान से भले प्राण का होवे त्राण,
चक्र-गान उत्थान भरेगा कात कात कर चिर कल्याण।
यह पवित्रतम ब्रह्म-सूत्र है, प्रेम-सूत्र यह जीवन-मन्त्र,
तेज-चक्र यह ज्योति भरेगा अत्र तत्र घर-घर सर्वत्र।
जपो जपो यह महा मन्त्र है सत्य-सूत्र का उद्यम-चित्र;
कर्म-चक्र का मुक्ति, सूत्र यह यही उज्वल पुण्य-चरित्र।
बुद्धि-वेलि के प्रीति-लता के दिव्य कुसुम करके एकत्र,
पुण्य-क्रिया-साधन से धीरे जला अहिसा आँच पवित्र।
देखो गान्धी खींचे निशि-दिन सूत्र नाम का स्वर्गिक इत्र;
इसकी मृदु सञ्जीवन- सौरभ फैली त्रिभुवन मे सर्वत्र।
भारत वालो! मधुकर बन कर सफल करो सहृदयता आज,
तुम निज नागर रसिक शील से खूब सहेजो सौरभ-साज।

भरत-भूमि के भ्रमरो । निशिदिन खूब समेटो सौरभ-सूत्र;
लुटा रहा है देखो गान्धी कैसा मनहर इत्र पवित्र ।
चक्राकारी पात्र इत्र के जिनमे सौरभ भरी अटूट,
गन्ध-चक्र तुम अपने घरमे चार पॉच ले आओ लूट ।
भाई । तेरे वच्चो वाले घर से कलुप रोग दुर्गन्ध,
भाग जॉय जब पुण्य-चक्र की मृदुल गन्ध से हो सम्बन्ध ।
भव-रुज-नाशक प्रीति-चक्र यह महामूरि का विकसित वृन्त,
सद् गृहस्थ निज अजिर उगावें रोग व्याधि का होवे अन्त ।
देव-लोक की तुलसी का यह पावन पौधा चक्राकार,
स्वास्थ्य-सार सी दुर्लभ सौरभ स्वास्थ्य शील का करे प्रसार ।
तन-मन दोनों स्वस्थ रहेंगे बढे अजिर का भाग-सुहाग,
खिले त्याग शिशुओं मे जागे धर्म-भाव सयम-अनुराग ।
सुर-पुर का मधु-चक्र मनोहर सद् गृहस्थ । निज घर मे पाल,
बाल-वृद्ध मिल मधु कातेंगे सदा रहेगा मधुर सुकाल ।

असुर-चाल तत्काल बन्द हो
कटे जाल अरु दिल के शाल,
सब निहाल हो निज मधु खाकर
बढे माधुरी-कोष विशाल । १०६

कर्म-वसूला शुभ मति-छैनी करले रे बढई ! तय्यार,
शिल्पकार ! ले क्रिया-करौती तजदे सब आलस्य-विकार।
ओ निर्माता ! प्रीति-चक्र के कला-रमण क्यो बैठा मौन ?
उठ तेरा यश गूजे घर-घर जगमे तुझसा शिल्पी कौन ?
अरे जुलाहे ! प्रीति-तार से बुनलेरे मनचाहे थान,
मान बढावे दिन-दिन तेरा इन बढते चरखो की तान।
प्रीतिघाट पर भागी धोबी धोये जा खद्दर के थान,
नव विहान क स्वास्थ्य गान से जागें तुझमे मानव प्राण।
बढभागी रँगरेज ! तेजका देदे पक्का जीवन-रग
जो न जग की जल तरग से छोडे उर-खद्दर का सग।
लौह-टेक लोहार ! तुम्हारी हृदय-चक्र की प्राणाधार,
देश-प्रेम गौरव के तकुवे कलाभरे करदे तय्यार।
शुद्ध बुद्धि-कैंची से दर्जी खुदगर्जी की कत्तर काट,
चला कला-सूई से सुन्दर खद्दर-पट सीने की हाट।
दर्जी ! अपनी मर्जी ही से भोग-वसन का सीना छोड,
खुले क्रोड़ मे धर कर हरि के प्रेम-वसन से सूई जोड़।
हरिजन-तन के पोषक मोटे पट से यदि तू होवे व्यस्त,
स्वस्थ रहेगी सूई, श्रम से कभी न होवेगा रुज-ग्रस्त।
दर्जी ! प्रेम-जुलाहे द्वारा सिरजी खादी का शुभ साज,
आज इसी के कपडे सीदे पहनेंगे वे त्रिभुवन राज।

प्रीति-काज मे लाज न हरि को तजकर मोर-मुकुट का साज,
पहनें गान्धी-भक्तराज के अर्पे कुत्ता टोपी आज।
सीले दर्जी। उर-खद्दर से हरि की प्रेमभरी पोशाक,
नाक-नटी यश गावें, माने निपुण विश्व-कर्मा भी धाक।
छाप छपेरे! तू खद्दर पर प्रीति-फूल-चित्रों की वेलि,
मोहित हों इस कला-केलि से अमर-नगर की नारि नवेलि।
छाप किनारी ऐसी प्यारी जिससे अमरी नारी आज,
तजें चन्द्रिका-चीर पहन ले खादी की सारी का साज।
चतुर वैश्य गुणवान मानधर उठ खद्दर की खोल दुकान,
लगा प्राण की पूजी सारी चला प्रेम-व्यापार महान।
हरि के दैन्य-देश की मुद्रा मिले लाभ में शुभ आशीष,
दिल लाखों पर कलम चलेगी सदा रहेगा उन्नत शीष।
मिले कीर्ति-सम्मान-दलाली हे भारत के भामा शाह।
प्रीति-राह के रस-व्यवसायी जयति विश्व-व्यापारी-नाह।
प्रेम-नगर के धन-कुबेर रे! तव नव द्रव्यार्जन उत्साह,
देख रही है रमा स्तब्ध सी दो दीना को तनिक पनाह।
लाभ कमाले कई गुणा तू चतुर महाजन धनी बजाज।
खद्दर-राज जमा कर धीरे साध हृदय के सारे साज।
स्वार्थ-वाह रे प्रेम-वणिज मे लगा हुआ तव हृदय-जहाज,
'ईस्ट इण्डिया' वालों की ज्यों करे हिन्द मे खद्दर-राज।
प्रस्तर-निर्मित जड़ हारो के बदले धन्य जौहरी। धीर,
लूटे तू तो अमित मूल्य के प्रेम-नगर-दृग-मुक्ता-हीर।

श्वेत वैश्य के वस्त्रासुर ने शोपा सारा वैभव-साज,
वलि वजाज तू उसके वदले करदे घर घर खद्दर-राज।
हों पुनीत यज्ञोपवीत मे पुण्य-चक्र से काते तार;
प्रथम ऐक्य का फिर खद्दर का तार तीसरा दलितोद्धार।
यही विष्णु के चरण चक्र की भक्ति-त्रिवेणी परम पुनीत,
विप्र। पहन अवगाहन करके सूत्र-यज्ञ का यह उपवीत।
जैसे कौस्तुभ अरु वन-माला धारण करते हैं जगदीश,
वैसे उर पर पूत सूत्र को धारण कर विद्या-वागीश।
यही त्रिवेणी क्षत्रिय। तेरे कर मे होवे तीव्र त्रिशूल,
हूल इसे प्रतिकूल हृदय पर रिपुता तेरी नशे समूल।
वासुदेव के क्षत्रिय कुल-धर। पुन चक्र धारण कर वीर;
वध करके शिशुपाल कंस का गर्ज अहिंसक भट रण धीर।
त्रिस कोटि के मन-मन्दिर मे वसने वाले पुण्य-शरीर;
सभी देवता भूख-प्यास से आज हुये हैं वहुत अधीर।
चक्र-यज्ञ के स्वार्थ-मेध से उनको तृप्त करे जो वीर,
याज्ञिक-मणि के हृदय-राज्य मे प्रेम-मेघ वरसें मधु-नीर।
ओ वैज्ञानिक। महा चक्र के यन्त्रों में कर नव नव शोध,
तभी सफल हो पंडित तेरी प्रज्ञा विद्या तथा प्रबोध।
लोभ-काम के लट्टू-फिरकी राजा। अब इनसे मत खेल;
लख गान्धी के क्रान्ति-चक्र को उगल रहा विजली की वेल।
विभव-विविर के भोगी राजा। अव तो भरत-भूमि से भाग;
नर-रवि का रथ-चक्र-घोष है लगा गूंजने नृप। अब जाग।

भरत-भूमि के पावन पथ से हटा दुरित-रथ नृप । बदहोश;
गूंजा है नर-मणि गान्धी के महा चक्र-का जीवन-घोष ।
सींचो राजा । प्रेम-सुधा से हरा रहे जनता का बाग;
बिना चले अनुराग-चक्र के नहीं खिलेगा तेरा भाग ।
राजा । तेरे राज्य-चक्र मे गूंजे न्याय-चक्र का नाद,
सदा सुयश आवाद रहेगा भागे व्यथा प्रमाद विषाद ।
सैनिक । व्यूहन भेदन आदिक अमर समर के सब व्यवहार,
सिखा रहे हैं गुरुवर सीखो व्यूह बना कर चक्राकार ।
छोड़ अजिर के 'अहं' विविर को समर-शिविर में आजा वीर ।
तुझे रुचिर चक्रास्त्र चलाना अचिर काल में आवे धीर ।
सविधि सीख ले मन्त्र सहित तू यह अमोघ साधन है दिव्य
तेजस्वी ब्रह्मास्त्र भव्य यह प्रति साधक का है प्राप्तव्य ।
अरे तरुण रण राते सैनिक चक्र लिये रहना तय्यार,
धर्म युद्ध में दल-पति द्वारा शीघ्र पड़ेगी तुम्हें पुकार ।
काव्य-कला विज्ञान-वेद के किसी शास्त्र का हो तू छात्र,
किन्तु तभी तव हृदय गात्र हो देश-प्रेम का सच्चा पात्र—
जिस दिन तेरा हृदय-चक्र यह चले स्वार्थ का तजकर मोह,
द्रोह हीन हो जीवन तेरा होवे सयम-बल-सन्दोह ।
सभी छात्र निज कला-पात्र से देते रहना निज निज भाग;
भारत के मधु-चक्र-वृत्त में वीर । नीरना निज अनुराग ।
यह न समझना क्या करलेगा मेरा यह छोटासा बिन्दु,
यही बिन्दु बहुतों से मिल कर शारत-निशि मे बने रसेन्दु ।

तथा सिन्धु भी बून्दो ही के एकत्रित संग्रह का नाम ;
विश्व-धाम मे बन्धु ! भरा है अणु का ही सग्राम-विराम ।
गिरि वन निर्भर सरि मरु नीरधि अगणित स्थावर जगम देह;
कण-कण ही से लोक बने है जीव-मात्र के सारे गेह ।
मधुर मेह वह बून्दो वाला सरस त्राण का देता दान ,
सुमन धान्य फल जीवन मधुवन खिलें धरा पर वह उद्यान ।
पिण्डों का ब्रह्माण्ड बना है देख व्यष्टि की महिमा वीर ।
अणु ही मे वट वृक्ष छिपा है तू तो देता जा निज नीर ।
एक बून्द मे शक्ति नहीं पर असित शक्तियुत है सनह ,
ऐक्य-चक्र मे विन्दु-योग निज देना ही है सत्याग्रह ।
प्रेम-चक्र के महा कोप मे तू तो अपना चन्दा डाल ,
तेरे स्वार्थ त्याग की कणिका हो जावेगी बहुत विशाल ।
अरे रक ! तव उर-वराटिका पाकर प्रेम-वाटिका-वाट ,
उग कर फैले प्राप्त करे फिर वट के जैसा रूप विराट ।
ओ गॅवार ! यह तेरी कोडी पाकर प्रेम-चक्र का प्यार ,
प्रभु-पद की पारस-रज छूकर महामूल्य का बने दिनार ।
हम दीनों के कन कन ही से पूरा प्रभु का रत्नागार ,
रक-हृदय का द्रव्य-योग ही है अलका का धन-भाण्डार ।
वैद्य-प्रवर ! गिरि-विपिन-चक्र से सूत्र-जड़ी लेले रस-मूरि,
इसी प्रीति-भेपज से भागें अन्तर बाहर के रुज भूरि ।
बन्धु अन्ध ! यह दृष्टि-हीनता कर्म-भोग का दैहिक रोग ;
इसकी चिन्ता छोड़ सीख ले प्रेम-योग-मय चक्रोद्योग ।

वनिमासी

खुलें हृदय के लोचन तेरे सुन कर मधुर चक्र-झनकार ;
चर्म-चक्षु क्या प्रभु अक्षर के चरण-चक्र से हो उद्धार।
चक्र-गीत की विनय-गूंज से हृदय-विहारी प्राणाधार ;
द्वार खोल कर आवे तेरे दृग-सम्मुख हे विगत-विकार।
तब तो तेरी दिव्य दृष्टि का भाग्य देख कर अन्धे शाह।
दो नयनों के प्राणी तो क्या करे सहस दृग मघवा डाह।
कुसुम-चक्र यह धन्य स्वर्ग का सबको देता सौरभदान,
चलने दो इस कल्प-चक्र को खिलें कोटि-जन एक समान।
प्रीति-वृत्त यह कामद पोषक चरखा है प्रभुका वरदान ;
विना वुद्धि के-शक्ति-सिद्धि के घर घर विकसे पुष्टि-विधान।
श्रम-शिक्षा या वुद्धि-निपुणता नहीं चक्र को इनसे राग,
इसे चाहिये सदय हृदय का केवल कर्मशील अनुराग।
सिर्फ लगन की पूंजी वाला वाल-वृद्ध सब का व्यवसाय,
भिक्षा-वृत्ति छुड़ाने वाला पावन जीवन का सदुपाय।
साम्य-सूत्र का शुभ उत्पादक धन का शुद्ध विभाजक यन्त्र,
लोक-तन्त्र का सच्चा पोषक अजिर अजिर का मंगल-मन्त्र।
स्पर्धा शोषण रहित मेघ सा प्यारभरा पोषक व्यवसाय,
यह असहाय-सहाय गगन के राज्य-चक्र का निर्मल न्याय।
क्या कहते हो यह चरखा है मध्य काल का विफल प्रयत्न?
किसी काल का होवे भाई। कोहनूर है फिर भी रत्न।
क्या कहते इस उन्नति-युग में है असार चरखे का प्यार ?
क्या आधार किसे दे कच्चा निबल रेंगनेवाला तार ?

भय्या! यह है तार प्यार का वल इसका प्रभु-चरणाधार,
सीख लिया है इसने करना हरि से निर्वलता-स्वीकार।
इसीलिये कच्चापन इसका खेले फौलादो का खेल;
झेल सके हरि-वल पर अगणित यन्त्रों द्वारा फेंके शैल।
कणिका और तनिकसा तिनका धन्य सदा इनका वल-सार,
पर्वत-भार करे क्या कण का हार जॉय तूफान अपार।
धन्य धीर प्रहलाद निवल शिशु रेंग-रेंग कर पहुँचा पार,
प्रगतिवलाधिप दानवेशके सव यन्त्रो ने मानी हार।
क्या कहते? इस वायु-यान के युग में चरखा छकडा-राग,
है पीछे लौटाने वाला अत भला वोझे का त्याग।
सचमुच शोपण-कपट-मार्ग से हलधर-उर का छकडा-राग,
है पीछे को लाने वाला यान-यन्त्र भोगो का त्याग।
आस पास का पोपक चरखा अत शिष्टता का उद्योग,
राज-रोग सा सवका शोपक है अशिष्ट यन्त्रों का भोग।
साम्य-वाद के तरुण पुजारी! प्रथम हमारी दशा विलोक।
तीन लोक मे नहीं किसी को हम जैसा रोटी का शोक।
पर भय्या! निज नगर-तुला पर तुला न हम दीनो का भार,
सुरा-धार से भुला न हमको मानेंगे तेरा आभार।
यन्त्र-भोग-उद्योग-वाद यह कर देगा हमको वरवाद,
यह विपाद-सवाद पाप का क्रूर कुटिल मद्यप का नाद।
तेरे नागर-मान-दड से लगे न ग्राम-घटों का जोड,
देखो इस जड़ लोह-दण्ड से कहीं हृदय-घट डालो फोड़।

हैं भारत के महावृक्ष की सात लाख गाँवों की शाख ;
बैठे कोटि कबूतर पछी जिन्हें अन्न के कन ही दाख।
तमागार के यन्त्र-भार को क्या झेलें हम दीन गँवार ?
प्यार भरा दातार चक्र ही देगा हमको अन्नाहार।
दृष्टि नागरी से भारत में मत निकाल पल में परिणाम ;
ग्राम-धाम में तो चलने दे उनका प्राणद चक्र ललाम।
हे अधीर ! कटु यन्त्र-धार से साम्यवाद की जड़े न काट;
चरखे ही का कर्म-चक्र है भारत का उद्योग विराट।
यन्त्र-नहर से शहर दैत्य सा शक्ति-लहर को लेगा खींच,
तथा सीच कर जहर पाप का फैलावे मदिरा की मीच।
नीच कर्म का दुराचार का फैल जायगा कालिख-कीच ,
यन्त्र-वाद हो कज्जल-गिरि सा सात लाख ग्रामों के बीच।
क्रान्ति-चक्र यह, साम्य गान की तान इसीसे निकले वीर,
सत्य-चरण के साम्य-चक्र की सेवा करले तरुण अधीर।
लंकाशायर ने जादू के सूत्र-तार को गल मे डाल ;
खींच लिया है भारत-भू की आजादी का सब धन-माल।
यह गान्धी का कूट चक्र भी काते नीति-सूत्र का तार ;
वापिस घरमें खींचेगा यह आजादी का वैभव-सार।
पुण्य-चक्र का गुञ्जन सुन कर जगती के गुण-गण-मणि-रत्न;
खिचे चले आते हैं घरमे सभी मुग्ध से बिना प्रयत्न।
यों चरखे की हृदय-माल फिर बन जाती रत्नों की माल;
हे भारत के नौ निहाल ! तू विजय-चक्र का चक्र सँभाल।

बनारसी

तू तो चक्र-धेनु के पय से भारत माँ के चरण पखार ;
स्वतन्त्रता सखि आवे दौड़ी लेकर रत्न-हार उपहार।
बेकारी आकस्मिक घटना वृद्धावस्था दैवी कोप,
इनका बीमा बेच, चक्र की जीवन-निधि को खतरा सौंप।
नृपति चक्रवर्ती जगती का खोले चक्र-कोप के द्वार ;
वही कोटि वृद्धों को देगा प्रीति-पेन्शन का आधार।
सात लाख ग्रामों मे परवश रहा लँगोटी का परिधान,
यह कुबेर का चक्र भले ही उन्नत करदे जीवन-मान।
भारत-व्यापी गृहोद्योग की अग्नि-चिता में से ही आज ;
पनपा है वह वैभव-वट सा लंकाशायर का सुख-साज।
अब तो केवल विमल चक्र-जल चिता ज्वाल कर सकता शान्त;
इसी सुधा से अनुप्राणित हो दग्ध मुमूर्षु जीवन प्रान्त
देश-प्रेम के जीवात्मा का तपश्शुद्ध पावनतम देह,
स्नेह-शान्ति-गति सुमति-कान्ति-मय स्वास्थ्य भरा चरखा है गेह।
भौतिक गौरव मे मत भूलो प्रभु-पद-चक्र गहो अंग्रेज ;
रस सहेजलो गुञ्जन सुनलो खोजो आत्मिक जीवन तेज।
कमसे कम गुञ्जन तो सुनले हृदय-चक्र का, शासक श्वेत,
वर्ना रहे कोप मे केवल मोह-खेत की तृष्णा-रेत।
विभव, संगठन, बल, प्रभुता, मद, वक्र नीति अरु सैनिक शक्ति,
जाने कौन रसातल-तम मे लेजावे भौतिक अनुरक्ति।
ओ गरवीले पथभूले। यह आत्म-रहित जड़ता का गर्व ;
तजो मूल यह सर्वनाश का तभी लगे तव गौरव-पर्व।

'तियासी

अरे पतन के अभिमानी ! तू हुआ दुरित-दानव का छात्र;
दलित दीन दुर्बल दुःखित से तू है अधिक दया का पात्र।
ओ पीड़ित से अधिक अभागे ! अरे दर्प के विवश शिकार।
तुझमे पश्चाताप कहां से होवे जब हैं भरे विकार।
गर्व-गर्त्त में गिरकर शोषक ! रहे भाग्य तव तममय घोर,
दलित-पतन की छाया पडकर गहरा हुआ अन्धेरा और।
जले दंभ पापानल तेरे भरे भवन मे ओ गुमराह।
दलित-आह की आहुतियों से वही भभक कर करे तवाह।
कहीं खेत को चिड़ियाँ चुगलें चेत समय रहते अँग्रेज।
कुछ तो अन्तर-चक्र चलाकर प्रेम-पीर का नीर सहेज।
विभव-गर्व का मिथ्या गौरव भीषण संघर्षण-संवाद,
याद नहीं क्या महायुद्ध वह हुआ विश्व जिससे बरबाद।
किसी दॉव से कैसे भी रण-जूवे मे पाकर जय-सिद्धि,
मिली तुम्हें निधि ऋद्धि विश्व की हुई कोषमें इच्छित वृद्धि।
किन्तु तुम्हारा यही कोष-धन युद्धजयी अँग्रेज कुवेर।
प्रवल लुटेरे-चोर-दलों को लेगा चारों ओर विखेर।
वली छली गे सभ्य जगली अमित शक्ति शाली विकराल,
उठे सगठित डाकू-दल वहु लेकर पशु-वल वहुत विशाल।
यही द्रव्य-धन धनी ! वहुत सा वने एक दिन तेरा काल,
विभव शाप हो, प्रभुता डाइन, भोग वनेगा विपधर व्याल।
अरे श्वेत-नृप ! न्याय-चूक के साम्य-सूत्र ही से हो त्राण;
इतर स्वत्व-धन के वितरण से मिले शान्ति होवे कल्याण।

समुचित-द्रव्य-विभाजन से जब

रोकड हलकी होवे सेठ।

तुझे निरत कर्त्तव्य-चक्र मे

लख कर डाकू जावें वैठ।११०

४

करुणालय के हृदय-चक्र से विनयभरी करुणा-झरि कात,
पुण्य गात जलजात हँसेंगे रात नशेगी खिले प्रभात।
रे नर। हृदयासन पर हरि के चरण-चक्र की प्रतिमा थाप;
पाप-ताप-सन्ताप मिटेंगे मुक्ति मिलेगी अपने आप।
किसे आदि शकर के जैसा मिले विश्व मे बौद्धिक तेज?
वे कहते—नर हृदय-सेज पर भक्ति-भाव के सुमन सहेज।
सतनारायण के दर्शन का यदि है मानव तुझको चाव,
तो प्रभाव तू देख चक्र का कात पुण्य-सवेदन-भाव।
जब तू प्रेम-चक्र के बल पर खुडकावेगा प्रभु का द्वार;
गत-विकार जब विनय करेगा—'आनेदो 'हे प्राणाधार'!
जब करुणा-घन पूछें हँसकर-'क्यों प्रवेश का तेरा स्वत्व?
तत्व-ज्ञान के किस प्रमाण से पिया चाहता तू अमरत्व?
कहदेना-' हे सत्यप्राण-धन। किया एकही मैंने कृत्य;
दीन भृत्य यह रहा चलाता प्रेम-चक्र हरि। तेरा नित्य।"

"है प्रमाण मे यह दृगाम्बु जो देखे तव चरणों की राह,
चाहभरे दृग चरण पखारें द्वार खुलाओ हे नर-नाह।"
"हे घट घट के शाह! हमारा तूही सबसे बड़ा गवाह,
तुझे दीन आगाह करे क्या? सब तेरा ही प्रभा-प्रवाह!"
"तेरी ही गति-किरण चलावे हृदय-चक्र को शाहन्शाह!
नाम मात्र के कतवय्ये को चरण-धूलि मे मिले पनाह!"
"तेरा चक्र चला कर श्रीहरि! किस विकार का रहूँ गुलाम?
दूँ सलाम अब अन्य कौन को तेज-धाम हे मेरे राम!"
"हे हरि! अब तो पट खुलवादो सुधा-ग्राम मे दो विश्राम,
हे अनाम! निष्काम भाव से चक्र चलाऊँ मे निशियाम!"
यह स्वेच्छा का घोर परिश्रम सूत्र-समर्पण का शुभयज्ञ,
प्रेम-कर्म प्रभु-चक्र यही है कातेजा मानव मधु-विज्ञ!
हिन्दू मुस्लिम भाव-तिलो को न्याय-चक्र पर लें यदि पेल,
तैल खीच कर सवेदन का हृदय-दीप को भरे उड़ेल—
दीप-चक्र यह धरें भक्ति से निज मन्दिर-मस्जिद मे नित्य,
जीवन-मजहब जगमग होवे पाकर प्रीति-ज्योति का सत्य।
हिन्दू-मुस्लिम! कातो मिलकर ऐक्य-चक्र से पोषक तार,
जाने दो इस मलिन खिजाँ को तनिक वस्ल की लखो बहार।
जलज-वर्ण हरि पतित-शरण हरि जन-जन तारण-तरण कृपालु,
विश्व-भरण तव चरण-चक्र की ताप-हरण है धूरि दयालु।
जलज-नयन हरि जलधि-शयन हरि मधुर-वयन घन-वदन उदार,
प्रेत-अयन प्रभु लोक-पालिनी है तेरी मधु-चक्र बहार।

रमा-रमण हरि शोक-शमन हरि दुरित दमन ,जीवन-धन नाथ,
शान्ति-सदन रस-भवन सुहावन चक्र हाथ धर करो कृतार्थ।
हे करुणा-वरुणालय । मधुमय मलय-चक्र की लय से आज
सदय हृदय की सविनय जय हो जय होवे भव भीति-समाज।
पुण्य-पुञ्ज हरि-चरण-कञ्ज के कमल-चक्र की पँखुरी देख,
जिन पर निखरी है भक्तों की भक्ति-टेक की रस मय रेख।
क्षमा-चक्र यह दया-चक्र यह प्रीति गीत का पुण्यावास ;
पूरित है इस हृदय चक्र में प्रभु के चरणों का विश्वास।
धन्य चक्र के पद्म-कोष में भरी त्याग-अनुराग-सुवास ,
पँखुरी पँखुरी हरी भरी है कण-कण में मकरन्द-विलास।
सुमन-चक्र। तू त्याग करे जब जग में फैले तभी सुगन्ध ;
सौरभ है पर्याय त्याग का गन्ध हीन होता प्रतिबन्ध।
पाप-कर्म की लाख मुहर पर नगर-सेठ यदि डाले राख
पुण्य-चक्र की कौडी ही से रहे रावरे कुल की साख ।
सृष्टि आसुरी आदि काल से यज्ञ-कर्म का करे विरोध ;
तभी धनी को प्रभुता-मद को सून-यज्ञ का रुचे न बोध।
हे मेधावी। चक्र-यज्ञ से पूरे त्रिविध पुण्य के कार्य ,
काम-क्रोध-मल हिंसक-पशु दल इन सब की बलि दे दे आर्य ।
सोम-शिखा के द्वारा त्यागी तर्पित होता भोगी प्राज्ञ ;
जागृति सुप्तावस्था से तब सूक्ष्म जगत में जाता विज्ञ ।
देख अनाहत चक्र प्रेम का जो पट चक्रों के हृदयस्थ ,
सुधा कमल है वहीं सोहता उसतक पहुँच मुमुक्षु । स्वस्थ।

विश्व-वृत्त में प्रकृति परिधि है प्रभु माधव है जीवन-केन्द्र,
है अनन्त आत्मायें रेखा खेल रहे है यहां उपेन्द्र ।
नचा रहे है तीन भुवन को प्रीति-बांसुरी के लय-कार ;
मुग्ध गोपिया नाच रही है कला-योग्यता-रुचि-अनुसार ।
त्याग-तटा उर-सरि के तट पर शील-कुञ्ज तरुवर विश्वास ,
रास-विहारी हरि का निरूपम मधुर चक्र है क्रीडा-लास ।
तज ममत्व नर ! मान न अपना बाह्याभ्यन्तर का सर्वस्व ;
प्रेम-चक्र मे तन्मय होजा तुझे स्वय खोजेगा विश्व ।
भक्ति-चक्र से जब द्विजसत्तम ! प्राप्त करे प्रभु-प्रेमादर्श ;
। भु-दर्शन हो, तभी अपरिमित प्रभा-मण्डलों सा दुदर्श ।
महाभाग हे तरुण तपस्वी ! महामहिम सुन्दर विधु-कान्ति ,
मिली तुम्हे अमिताभ सुदर्शन प्रेम-चक्र ही से सुख-शान्ति ।
देवानाप्रिय प्रियदर्शी ! जब भक्ति-चक्र का हो उत्कर्ष ;
ज्योतिर्मय का दर्शन ही क्या मिले तुझे हरि का सुख-स्पर्श ।
प्रेम-चक्र-चिन्ता-मणि सी निधि उरमे पाकर भी नर अन्ध ।
वृथा कॉच के टुकडों से फिर किस जीवन का करे प्रबन्ध ?
पाकर भी निर्वाण-सुधा का प्रेम-चक्र सा साधन श्रेष्ठ ,
महाश्चर्य ! क्यो मिलता मलमे ओ नर शान्ति प्रिया के प्रेष्ठ ।
शरण गहो हरि-चरण चक्र की मृत्यु भगे आवे अमरत्व ,
दु:ख मिटे शाश्वत सुख 'जागे मिले प्रेम का जीवन तत्व ।
मिटें मोह-मद ज्ञानोदय हो जड़ न रहे जागे चैतन्य ;
मिले शान्ति उद्वेग मिटें सब बढें पुण्य मन होवे धन्य ।

दान, यज्ञ, स्वाध्याय, तपस्या, शम, दम, साधन, त्याग, विराग ;
चक्र-वृत्त मे आते सारे चला चक्र नर-वर बडभाग ।
सूत्र-यज्ञ यह अधिक सुलभ है तुमको हे निर्धन ! हे रक ।
सजा हृदय-पर्यङ्क सलोना प्रेम-चक्र से तू निश्शक ।
गाथा पढते हुये चक्र को चला पारसी ! भागे शोक ;
हृदय-आरसी मे कुछ झुक कर प्रीति-चक्र की छटा विलोक ।
महा क्षुधा की अग्नि पारसी ! जले हिन्द मे आठो याम :
अग्नि-चक्र सा प्रतिनिधि उसका रहे भवन मे थिर अविराम ।
दादाभाई नौरोजी का हृदय-चक्र गजा था पूत ;
था स्वदेश हित काता उनने सारे ही जीवन का सूत ।
आज पोतियॉ उनकी अरु ये तरुण-हृदय तय्यबजी वृद्ध ,
पारस जैसे विमल पारसी करें दूसरो को भी शुद्ध ।
इसी प्रेम के अग्नि-चक्र को स्थिर रखते है ये दिन रात ,
प्राणो की हेमाभ कान्ति मे तप कर वृद्धि करें अवदात ।
गुरु नानक के सिक्ख ! साहसी कान्ति-चक्र नित चला विशाल ,
सदा गोलियां झेली तैने कह के जय श्री सत्त अकाल ।
अरघा घटा कलश दीप शुचि छत्र चॅवर या धूपाधार ,
प्रभु पद-पूजन साधन है सब हृदय-चक्र सम चक्राकार ।
गिरिजाघर के क्रास-चक्र का चरखा ही है प्रतिनिधि-शुद्ध ,
रह सकता है कहीं ईसाई प्रेम-चक्र से कभी विरुद्ध ?
प्रेम-चक्र का गुञ्जन सुन कर धन्य हुई विदुषी बेसेंट ,
धन्य सुधी एण्डरूज जिन्होंने किया चक्र को जीवन भेंट ।

सुधा-चक्र पर कते हुये वे प्रीति-प्रभा के प्राणद तार ;
प्रभु ईसू बुनकर ने जिनको दिया 'क्रूस' पर वस्त्राकार ।
बुना क्रूस के शुचि करघे पर अमर वस्त्र का मधुर वितान ,
नव विहान सा फैला जगमें ख्रिस्त-वसन का पावन थान ।
यही प्रीति-पट फैला बँटकर बनकर 'टाई' बन्धन भव्य ;
कोटि हृदय अरु कंठ-देश में बँधे प्रेम के बन्धन दिव्य ।
'टाई' की किरणों में विलसे प्रभु ईसू का प्रेम-प्रकाश ,
गले गले में लिपट रहा है प्रीति-पगा आलिंगन-पाश ।
जन-मन-मन्दिर-वासी विभु के पद में 'टाई' के उपहार ,
धन्य मसीहा चढ़ा गया तू प्रीति-सूत्र के अगणित हार ।
आर्य-बाल रे तू प्रभात के शीत-काल में अपने आप ,
मधुर धूप में चक्र चला नित करता जा गायत्री जाप
बालसूर्य के किरण स्पर्श की सुखद उष्णता शोधे देह ,
स्नेह-चक्र-घन बरसें उरमें संयम बल मेधा का मेह ।
आर्य-तरुण तू ब्रह्म-यज्ञ कर आया पावन कार्तिक मास ;
चार याम नित चक्र चला अरु गायत्री जप पूरे आस ।
सुधा-मधुर हवि चक्र-यज्ञ का अरे प्राज्ञ ! है प्राणद शान्त ,
क्रान्ति शक्ति की सञ्जीवन से चमक उठेगा अन्तर प्रान्त ।
भजो एक सौ आठ गजों की माणिक माला पर हरि-नाम ,
दे ललाम सी ग्रन्थि मेरु-सम भक्त-पाणि को प्रथम विराम ।
प्रति गज पर गायत्री जप कर तनिक आर्य ! अब दिखा विवेक,
भक्ति-सूत्र की तुलसी-माला कम से कम जप प्रतिदिन एक ।

वृद्धा माँ। है ज्ञात तुझे तो अमित चक्र के गुण अवदात ;
जात तुम्हारे पलें इसी से कात रात-दिन जननी कात।
शिथिल काँपती ऊँगली तेरी पाकर चरखे का आधार ;
जमे चक्र पर ठप से निश्चल यह इनका है प्रिय व्यापार।
तथा पुराना बहुत दिनों का माँ की उँगली को अभ्यास,
नई आश का स्नेह मिले तो चमक उठेगा कला-प्रकाश।
किन्तु हिन्द मे तन ढकना ही आज कला का है शृङ्गार,
यही बहुत यदि कोटि कोटि जन पालें पूरा अन्नाधार।
तथा हिन्द के कोटि गृहो से भाग जाय आलस्य विकार,
पीछे स्वय सहज ही घर घर पुण्य-कला होवे साकार।
फिर फहरावे कीर्ति-पताका भारत-माँ का ढाका वीर,
फिर से करे कला का साका जागे जब रण-बांका धीर।
काते बुने कलाधर ढाका पुन' कला-राका के तार ;
चारु चन्द्रिका की मल मल मे भरे प्यार शृङ्गार अपार।
कोमल दिलसी निर्बल मल मल अमर कला-मकड़ी का जाल,
चाल धन्य है उस ऊंगली की जिसने काता बुना कमाल
शबनम-शोभा बुनने वाली विमला कला-कुमारी धन्य ;
रसोच्छ्वास वाष्प की मलमल कौन बुने कातेगा अन्य ?
हृदय-चक्र-धर नारायण के नर-कर से उपकरण महान,
इनके जीवित कला-दृश्य को कब पहुँचे जड यन्त्र-विधान।
सर्व ग्राह्य यह कला-चक्र है अन्तर-बाह्य उभय हो शुद्ध,
सबको सुलभ सुगम बुद्धि को चालक इसके रहें प्रबुद्ध।

सुमन-सुरभि सी सुर-सरि-जल सी सर्व ग्राहिणी कला अनूप ;
धूप चन्द्रिका निशा उषा सी मलयानिल सी विमल स्वरूप ।
प्रति प्रभात सी प्रभा माधुरी विभा चन्द्र-शोभा सा रूप ;
धन्य कला जो मति-विकास की प्रति गति के होवे अनुरूप ।
शुद्ध आत्मजा कला-कुमारी वितरण करती सब को पुण्य ,
प्रभु-पद-माला सुन्दर बाला विश्व-नन्दिनी नलिनी धन्य ।
विश्व-बाग मे हृदय-चक्र ले कला-बालिका खेले खेल ;
सर्व-मगला विमला रखती क्रीड़ा ही मे हृदय उँडेल ।
नटखट भोली क्रीड़ा से प्रति दर्शक को देती आल्हाद ,
लखते ही आती है इसके पितृ-पाद हरि-पद की याद ।
सुरुचि शील-सरि कला-जाह्नवी प्रभु-चरणों से चलकर धन्य ,
चरण-कीर्ति कलरव मे गाती धरा हरी हो पीकर पुण्य ।
भरत-भूमि के धर्म-चक्र का निर्मल मंगल कला प्रकाश ,
परम पावनी सर्व तोषिनी करे भारती विश्व-विकास ।
पुण्य-कला से देवानां प्रिय् लखता हरि-मुख-शोभा-सार ,
शेषशयन प्रभु रमा रमण की जल-विहारिणी छवि साकार ।
देखे प्रभु के रुद्र-रूप का डमरू ताण्डव नाग भभूत ;
भरे पूत श्रद्धा से भोला हृदय धरे शिव-भक्ति प्रभूत ।
प्रभु की विविध शक्ति सुन्दर विश्व चित्र के अमिताकार ;
कला-माधुरी धन्य दिखावे जन-जन को हरि के शृङ्गार ।
विज्ञ-बुद्धि की सञ्चित हरि हैं अन्तर-वीर-विहारी ईश ;
रमण-मोहिनी प्रकृति-रमा के विश्व-शेष-शायी जगदीश ।

धन्य महाभारत रामायण पुण्य-कला का खिला प्रकाश,
प्रीति-पाथ गुण-गाथ नाथ की पूरे जन-जन-मन की आश।
विश्व-भारती कला-प्रभा का रवि-किरणों का पुण्यालोक,
हृदय-कोक को सुलभ रुचिर शुचि लोक लोक को करे विशोक।
ऋषि कवियों की भक्ति-भारती करे आरती भरे बहार,
कला-धार प्रभु-पाद पखारे हृदय-दीप दृग-कलश उदार।
सर्व-सुहावन गुहा अजन्ता प्रभु-मन्दिर अरु बौद्ध-विहार,
कला-द्वार हरि-रसागार के सर्व सुलभ शुचिता शृङ्गार।
अलकार शृङ्गार कला के सुधा-माधुरी चित्राधार;
है उन पर अधिकार सभी का सजा सुरुचि शोभा का सार।
हरि-कमलारुण चरण-नखों पर भक्ति-मेंहदी के मृदु चित्र,
छवि विचित्र यों आँक प्रवीणा कला-मगला हुई पवित्र।
प्रभु-पदाब्ज पर कला-तुलसिका चढी, भाग से मिला पराग;
दृगाम्बु-अर्घ्य मे घुला उसी को आँक दिया नख पर अनुराग।
सुरुचि अनन्ता धरे अजन्ता बहा रही है कला-प्रवाह;
गहा गुहाने चक्र भक्ति का हुआ शील-शोभा-निर्वाह।
कलाकार का कला-दान यह शिल्प-कला के गल का हार,
बापू तेरा चक्रोद्यम है अजर अमर मनहर उपहार।
सर्व सुलभ मृदु सर्व ग्राह्य है चरखा प्रेम-चक्र साकार,
वचन-देह-मन के कण-कण को पावन करता यह व्यापार।
अखिल कला है अन्तर-कलि के रस-विकास का आविर्भाव,
आतम-हीन जड़ कला चला है फूल कागजी व्यर्थ दिखाव।

वह सञ्चित की आत्म-रागनी सौम्य शील शोभा साकार,
विश्व-रञ्जिनी कला सत्य है शिव की सुन्दर उर-झनकार।
धन्य आत्म-दर्शन का साधन कला-चक्र चरखे का राग,
भक्ति-सुरभि का भला विधायक खिला कला विमला का बाग।
कला, मैथिली सावित्री सी पुण्य तेज शोभा की मूर्ति;
उमा उर्मिला शकुन्तला सी तपस शील मार्दव की पूर्ति।
गौरव-गरिमा पुण्य-मधुरिमा तेज मई महिमा साकार,
शुचि महीयसी सौम्य रूपसी प्रिया नागरी शोभाधार।
कला-किशोरी वीर-वधू है, इसके रूप चातुरी हाव—
शील धर्म के है पटु पूरक लाघव कौशल नागर भाव।
कला नहीं है भोगाभरण, गाती नही वासना-गान,
नहीं नर्तकी रभा की ज्यों व्यर्थ काम-वीणा की तान।
नहीं कला को वार-वधू के रुचते भोग भरे अभिसार,
सुरा सुरभि ताम्बूल नशीले काम-केलि कज्जल-शृङ्गार।
लज्जा नम्रमुखी अभिरामा कला उषासी शुचिता-वेलि,
उसे न सोहे वेश्या की सी काम-कुशलता मादक केलि।
बापू! तेरे चरित-चक्र की तरण-तारिणी कला अनूप;
विमला हमें दिखाती प्रति दिन प्रभु-करुणा का सुधा-स्वरूप।
उषा-गान बालारुण-शोभा नैश सान्ध्य सौन्दर्य बहार;
सरि हिमाभ हिमधर मधु-झरने प्रकृति-सुन्दरी के अभिसार।
सुमनाभरणा वन-देवी के वन-उपवन के रास-विलास,
सुरभि आर्द्रता हरियाली के दृश्य मधुरिमा के आवास।

धन्य दृश्य ये देते हरि के चरण-चक्र का मृदु आभास
इसीलिये तो कला भरे हैं २ रें हृदय मे भला प्रकाश।
वही धन्य है कला-चक्र जो इङ्गित करता बारबार—
है अजस्र सौन्दर्य-श्रोत वह लखो हमारा सिरजनहार।
कलाकार का अमर मसीहा क्रूस-चक्र का सिरजन हार ;
प्रेमामृत का चित्र खैंचकर दिया बाइबिल का उपहार।
कौन आदि शकर के जैसा कलाकार होवेगा अन्य ?
जिनकी दर्शन-काव्य-माधुरी है अनन्य तेजोमय धन्य।
सत कबीर दादू से निर्मल कला-चक्र के चालक धीर,
अमर शील के पालक प्रति पल बुनते प्रीति-ज्ञान का चीर।
गुरु नानक की मति का बानक सत का माणिक सदा अकाल,
बाल-वृद्ध क्या सुलभ सभी को सिक्ख-हृदय का कला-रसाल।
कलाकार-गुरु की तूली ने रचा ग्रन्थ साहब का चित्र,
इत्र ज्ञान-मेधा का सीधा भक्ति-प्रीति का तीर्थ पवित्र। ११३

५

भारत माँ की जाई बहनो चक्र क्रान्ति का चले प्रभूत,
भ्रातृ-प्रेम के पूत दूत सा कातो रक्षा-बन्धन सूत।
पुण्य नीर यह बहन-नयन का खिला पीर-रोली का रग,
नीका टीका लगवाले अब भय्या रे। उमग के सग।
वज्र-करों पर बँधवा ले रे रँगे स्नेह कुकुम के तार,
हृदय चक्र से करते हुये ये गौरव-रक्षा के उद्गार।

 पिघानवे

स्नेह-चक्र पर प्यारी बहनो कातो नव गौरव की धार ;
महा मेरु सा ढेर लगा दो कातो अमर शौर्य का सार।
प्यार-तार से करें सहोदरा रक्षा-बन्धन का सत्कार ;
कोटि करों पर कोटि उरों पर पडे पुण्य-बन्धन का भार।
तरुण धीर धागे के बँधुये कहें अभय भाई प्रण-वीर—
"जीजी। तैने बाँधे मेरे हृदय प्राण संसार शरीर"।
"मेरे कर पर धरा बहन ने यद्यपि गिरि सा गौरव-भार ;
पार करे पर समर-धार मे एक टेक की रण-पतवार"।
"तार-तार के बदले जीवन न्योछावर हो शत-शत-वार,
जीजी तेरे स्नेह-सार मे है मेरा गौरव-साकार"।
"है जीजी के स्नेह-चक्र की स्वर-लहरी जीवन-झनकार,
नाच उठे मन दिव्य समर-हित पडे कान में जब झनकार"।
"भव्य विरुद की नव्य भावना जाग उठे उर मे अविकार,
मन-घन मे चपलासी चमके दिव्य अहिंसा की तलवार"।
"री माँ जाई बहन लाडिली, क्यों है तेरे दृग मे नीर ?
आज अमर साके की खातिर है अधीर यह तेरा वीर"।
"बहन भावती आज नयन से लुटा रही क्यों मुक्ता-हीर ?
सहन करू कैसे निधि लुटते री मै तेरा निर्धन वीर" ?
"और चुकाऊँ किन प्राणों से इन दृग-हीरो का ऋण-भार ?
दीन कृषक हूँ मुझको हरि के क्रान्ति-चक्र ही का आधार"।
कृषक बन्धु की बहन बता क्यों तेरी मुख-छवि इतनी मन्द ?
तेरे एक वसन मे भी क्यों लगे हुये इतने पैबन्द।

कृषक-हिन्द की कन्यात्रों की आज न बुझती पूरी भूख,
यौवन ही मे देह-लतायें आज रही बहनों की सूख।
ओ बहनों के कृषक बन्धु! तू चला क्रान्ति का ज्योतित चक्र,
सीधी होवे तेज-दण्ड से कुटिल भाग्य की रेखा वक्र,
देख अहिंसा-महामन्त्र से मन्त्रित शौर्य-सूत्र का पाश
त्रास कटे बान्धेगा यह ही दस्यु-राज को रख विश्वास।
जननी! अपनी हृदय-चक्र की पुण्य-रागिनी का अह्लाद,
जलद-नाद सा मधुर सनातन चरखे का जीवन-सवाद।
हमे सुनादे बार बार माँ। खींच खींच कर जीवन-तार,
कभी न भूलेंगे चरखे के सर्वोदय की मृदु झनकार।
माँ इन कन्या-वधुओं को भी सिखला प्राणद मारू-राग,
अजिर अजिर का भाग जगे जो भूख-भेडिया जावे भाग।
हे तपस्विनी विधवा भगिनी! धैर्य धारिणी तुझको, धन्य,
काते जा हे धर्म-चारिणी! हृदय-चक्र से निशि-दिन पुण्य।
हे विरागिनी! भोग-त्यागिनी योग-चक्र यह तेरा पूत,
समुद्भूत होता है जिससे रग गेरुये वाला सूत।
कौन कहे तू चिर वियोगिनी पुण्य-पालिनी महिला गण्य,
योग-चक्र की सफल साधिका कौन योगिनी तुझसी अन्य?
भोग-विविर के वे भुजग से लहराते विषमाते केश,
उन्हें कटा कर घटा रहित हो खिला उजला विधु सा वेष।
योग-चक्र से शुद्धि कातकर बुनले वहन! प्रेम का थान,
उसे भक्ति-सूई से सीकर पहन जोगिया पट-परिधान।

यद्यपि प्राणाधार तुम्हारे अमर-लोक को गये सिधार ,
चिर सुहाग का सुधा-चक्र पर तुम्हें दे गये हैं भरतार।
मिला स्वत. ही मुक्ति-चक्र के महायोग का शुभ सयोग;
रोग-भोग हैं भगे सहज ही किया न यद्यपि कुछ उद्योग।
मोह-नृत्य के बदले पाया चिर सतीत्व का शाश्वत सत्य;
पति-दीपक क्या? तुझे मिला है नित्य ज्योति का चक्रादित्य।
गहले विभु के चरण-चक्र को होवे तेरा अमर सुहाग;
मोहन की मुरली मे मिलकर घट घट मे फैले अनुराग।
प्रभु-पदाब्ज के प्रिय पराग का लगे माँग पर जब सेंदूर,
नूर खिलेगा चिर यौवन का क्रूर कलुष-मल भागें दूर।
पहन अखडित चूड़ा प्रभु का, सयम का चिर जूड़ा बान्ध,
पुण्य-मलय की बेन्दी देले, पीले हरि-पद-सुधा अगाध।
प्रभु-पद-रज का दिव्य दृगाञ्जन शम-दम साधन-भूषण धार,
निराधार-आधार सावरा वर तेरा, करले श्रृङ्गार।
शील-वलय से शोभित-प्रमुदित लगन-मेहंन्दी वाला हाथ;
आत्म-तेज का चक्र चलावे निष्ठा-योग-साधना-साथ।
सर्व मगला पुण्य-पिंगला कामधेनु गगा की मूर्त्ति।
तू है चिर सौभाग्य-यज्ञ के वह्नि-चक्र की आहुति-पूर्ति।
गौरव-मण्डित हृदय-चक्र से चिर सुहाग का धागा कात;
त्याग-तेज से ओस शोषले, आर्द्र रहें क्यो दृग-जलजात?
हे महीयसी! श्रम-शाला में सयम-चक्र चलाकर हाथ;
प्राप्त करे नव गौरव-कौशल विकसित प्राण-तेज के साथ।

जीजी ! तेरे योग-चक्र की पावन ध्वनि से अब भी देख ;
भारत मां के धुन्धले दृग मे लगी चमकने आशा-रेख ।
महा क्षुधा के घने कुहुक मे स्वर्गिक चमक दिखावे मार्ग ,
बहन ! तुझी को देख रहा है जननी का गहरा अनुराग ।
अग्नि-चक्र मे स्वाहा करदो अपने 'घर' को 'मम' को आज ,
इसी यज्ञ से सभव होगा सफल तीर्थ-यात्रा का साज ।
हरि के चरण-चक्र को गहना मुक्ति-मर्म यह विधवा-कर्म ,
बहुत पुरातन पावन सस्था विधुर तथा विधवा का धर्म ।
प्रेम-योग का चरखा भगिनी ! सदा चलाओ बैठ समीप ,
भारत मा की कुटिया मे तो है छोटा सा यही प्रदीप ।
इसके ऊपर रखना अपना विमल गेरुआ आचल दिव्य '
पश्चिम का जड छली वायु यदि आवे गन्ध लगाकर नव्य—
हे विरागिनी ! उन झोको को कभी न देना निज आतिथ्य ,
हृदय-दीप की रक्षा ही है जड काया का जीवित तथ्य ।
यह पछवाहीं हवा चले जब दीन कृषक रहते है खिन्न
इसके झोंके सदाचार के मेवों को कर देते छिन्न ।
जले शील सयम का दीपक सदा अजिर मे वृत्ताकार ,
बहन-नयन मे शान्ति भरे यह गहन अन्धेरे का आधार ।
अमर दीप घृत स्नेह-चक्र का कभी न हो भगिनी ! निर्वाण,
प्राण गँवाकर भी तुम करना निर्मल चरित-चक्र का त्राण ।
भाभी ! तेरा शील-चक्र है कला भरा रस भीना शुभ्र ,
श्वसुरालय के कार्य मोद मे सदा व्यग्र रहता है नम्र ।

कविता जैसी मधुर रसिकता व्यङ्ग्य-कला तेरी अवदात ,
भाभी ! पावन मर्यादा से कात रात-दिन मधुर-रस कात ।
स्नेह मई तू भाभी प्यारी मनहर नारी शुचिता-मूर्त्ति,
हे गृहस्थ-भारत की कविता ! गेह-कला की अनुपम पूर्त्ति ।
स्वजनि भामिनी भगिनी जननी चतुर, हृदय की रुचिर उदार,
भाभी ! तेरे शील-चक्र मे भरे हुये है भाव अपार ।
पुण्य-पालिनी शान्ति-कमलिनी विमल शील-वाले ! सुकुमार ,
धर्म-मधुरिमा मोद-त्रिवेणी कात स्नेह-कल-रव की धार ।
मनोरमे ! तव हृदय चक्र मे निहित मधुर वात्सल्य-मरन्द ;
कात सुधर देवर की खातिर भाभी हृदयानन्द अमन्द ।
किन्तु कातना रस-भाषा मे कला सहित प्राणों का प्यार ;
मातृ-भावना भगिनि-स्नेह को देना नवल मधुर आकार ।
क्योंकि श्वसुर-कुल-दीपक यह भी है प्रियतम-छवि के अनुरूप,
कान्त-चित्र देवर हित भाभी कात स्नेह का सरस स्वरूप ।
भाभी ! तेरे हृदय-चक्र मे मृदुल शील का यह पीयूष ;
आया भव मे अमर-नगर का नागर भावों का प्रत्यूष ।
तरुणी रमणी से तरुणों का ऐसा पावन रस-सम्बन्ध ,
भारत ही मे पनपा ऐसा सुरुचि शील का मधुर प्रबन्ध ।
देवर-भाभी की सरथा है आर्य-गेह का अजिरोद्यान ,
विमल शील-रस शुचि विनोद का गृही-गगन में अरुण विहान ।
भाभी ! तू तो हृदय-चक्र से काते जा ऐसा ही नेह ;
फूले शुचिता-लता अजिर मे हरा रहे गेही का गेह ।

देख अनुज के लिये तुम्हारे प्यार भरे उर का व्यवहार ;
रसिके। देखो रमण तुम्हारे तुम्हें चावसे रहे निहार।
शील-चक्र से जब तुम कातो देवि। गेह मे निर्मल नेह,
देख देख कर कान्त-हृदय मे वरसे मोद-मधुरिया-मेह।
कहें सजन मृदु मुग्ध भाव से– "प्रिये सुशीले तू है धन्य,
काते दयिते। भरे अजिर मे तुमने मगल शोभा पुण्य।
धन्य चातुरी वहुत वुहारे सभी कक्ष आङ्गण गृह-द्वार ;
शील धार से हास्य-कला से धोये सारे कलुप-विकार।
स्वजनि सुनयने हृदय-हारिणी स्नेह-धारिणी तरुणी धन्य।
रमणी गृहणी मगल भरनी गृह-जीवन की तरुणी धन्य,
प्रिये। हमारे हरे अजिर मे रहे रात-दिन यही वहार,
हृदय-चक्र से कातो रानी स्नेह-शील, झनकार फुहार।
हे आर्ये। हे अग्रज आर्ये। हे विनोदिनी कातो प्यार ;
देवर खातिर कातो भाभी चरण-नूपुरों की झनकार।

———

६

जेष्ठ-वधू। यह लता पराई लाई किशलय दल-सुकुमार,
स्नेह-चक्र से इसे सींच तू फूले सौरभ-सुमन-वहार।
श्वसुर-गेह के अजिर-वाग मे आई लतिका कोमल देह,
रुचे रमे यह खुल कर फैले ज्येष्ठ-वधू। सींचो नित नेह।
छाह करेगी कुसुम भरेगी श्वसुर-अजिर से फैले गन्ध ;
अवगुण्ठन-प्रतिवन्ध हटा के इसे सिखा निज शील-निवन्ध।

फैल प्रेम-प्राचीर सरीखी इस मधु-निधि के चारों ओर,
हृदय-चक्र की प्रेम-पाश से बँधे स्वजनि का हृदय किशोर,
इसे सिखा फिर शक्ति-चक्र से नित्य कातना गौरव-मान,
बने मानिनी वीर-वधू यह करे देश-हित निज निधि दान।
मातृ भूमि हित समराङ्गण मे जॉय तुम्हारे प्यारे कान्त,
क्लान्त न होना तुम दोनों ही रखना निज नयनों को शान्त।
स्वय सजाओ रण-सज्जा से प्राणाधिक रमणो के गात,
'सुप्रभात मे कीर्ति कातना रखना दोनो कुल की बात।
विकसित मुख-जलजात प्रात मे रख कर, कहना जीवन-नाथ।
जाओ रण मे हाथ तुम्हारा गह कर हम भी हुई सनाथ।
स्वजन प्राण-धन सत्याग्रह मे विजई होकर आओ वीर,
रहें चलाती मान-चक्र हम पीर न मानें हे रण-धीर।
नयन-नीर भी राह तकेगा हे उदार। हे प्राणाधार।
पद पखार कर विजई वर के करें द्वार पर ही मनुहार।
फिर तुम गाना कला-प्रवीणा उर-वीणा पर प्रीति-विहाग,
त्याग सुरस से तुम दोनों ही सीचो भारत माँ का बाग।
वधू विजयिनी हृदय-चक्र से कातो पुष्कल गौरव-मान
शीघ्र बनो तुम वीर-प्रसविनी दो फिर सिंह-सुतों का दान।
जात तुम्हारे पलें रात-दिन सुनते मान-चक्र की तान;
पान करें पय प्राणद पोषक भरें नसों मे गौरव-गान।
भारत-नन्दन रत्न तुम्हारे धीर वीर हों भरत समान;
मान-धनी वे शौर्य-चक्र-धर क्या न करें नव शक्ति-निधान?

कीर्ति-केतु थे शौर्य-सेतु में समर हेतु जब करें पयान,
प्राण बिछावें अथवा विजई रचें अवनि पर अरुण-विहान।
नारी! तेरे अजिर-हृदय के प्रेम-चक्र पर निर्भर प्राण
उसी सुधा-गुञ्जन की गति में तू ही कात मधुर कल्याण।
श्वसुरालय की मलय लता तू कात शील की लय में पुण्य,
सास श्वसुर भी तुम्हें देख कर कहें वधू कमला सी धन्य।
धन्य वृद्ध घर में ही मांगें जग में जीवित स्वर्ग-विलास;
पुण्य-चक्र की महिमा से हो ऋद्धि सिद्धि वैभव का वास।
देव पितर सब शुभाशीष से करें सुमन-मंगल की वृष्टि,
प्रेम-चक्र का सूत्र अजिर में करे सुमति सम्पद की सृष्टि।
विश्व-हृदय-मधु-चक्र-धारिणी हृदय-हारिणी 'नारी धन्य,
तू ही सुर-सरि तरण-तारणी है प्राणाधिक प्यारी धन्य।
शैशव में तू दुर्गा गौरी उमा किशोरी कन्या कान्ति,
तरुणी सखी प्रिया सहेली भाभी भगिनी जननी शान्ति।
चक्र चलाओ देवि भारती कातो कविता शुचिता प्रीति,
साम्य-चक्र-लय-रीति तुम्हारी है भारत की कीर्ति-प्रतीति;
हे राजा की शोभा-रानी। कात चक्र पर कला-बहार,
कलापूर्ण कर-कमलों द्वारा कान्ते। कात चक्र पर तार।
चन्दन के चरखे पर रानी रुचिर हेम के घुंघरू बांध,
मुक्ता-हीरक-मणि-झालर से सजे चक्र का रूप अगाध।
रानी! कल कंठी कोकिल सी प्रीति-भैरवी गाकर कात,
बैठे प्रात में तरु रसाल-तल विकसे हृदय-चक्र-जलजात।

राज-वाटिका दूर्वासन पर कात चक्र की मधुर हिलोर ,
वुनो प्रभाती-शबनम खादी कला मई रानी प्रति भोर ।
मुक्ता-हीरक-हार पहन कर करले रजत-धवल श्रृङ्गार ,
चन्द्र-महल की छत पर रानी ! करो चन्द्रिका-रैन-विहार ।
स्फटिका सन पर, रजत-चक्र से कते चन्द्रिका जैसे तार ,
वुने चान्दनी ही सी मलमल कलामई महिषी का प्यार ।
रसभीनी रजनी मे सजनी रमणी मिल कर गावे गीत ,
केदारे की लय पर राजे चक्र-चन्द्र का जशन पुनीत ।
हे महिषी । मध्याह्न-काल मे महल-अटा पर बैठी कात ,
प्रेम-छटा सी हेम पीठ पर वातायन ढिग नित अवदात ।
दशा उड़ीसा की है कैसी सभी दैन्य से हैं वेहाल ,
भरे हुये है प्राण-शून्य से जड़ पशु जैसे नर-ककाल ।
मान हीन अति दीन आलसी भिक्षा जिनका प्रियतम कर्म ,
प्रेम-चक्र ही इन दलितों को सिखलावे उजला श्रम धर्म ।
ओ उपदेशक । चरित-चक्र से दे इनको जीवित सन्देश ;
इसी प्राण के पोषक रस से हरा हो सके हृदय निवेश ।
रोटी रेशम दुग्ध सिताका जिन अजिरो मे होवे कीच ,
जो जन भूखे नगे उनमे रह सकते हों वीचों बीच ।
है हजार बाजार सृष्टि मे किन्तु न देखे जिनकी दृष्टि ,
अनावृष्टि का फल देती है जिनके नयनों की अति वृष्टि ।
यष्टि मिले यदि उन्हे चक्र की होवे फिर कुछ उदर-प्रबन्ध ,
पुष्टि-मार्ग को खोज निकालें लाठी के आश्रम से अन्ध ।

जिनकी भूखी रातें देखें रोटी-मधु के असफल स्वप्न,
जिनकी आतें भग्न हृदय में रहें अन्न-चिन्तन में मग्न
सहो सहो हे सुधको उनके हृदय-चक्र का जलता नाद ;
स्वेच्छा से स्वीकार करो रे सुवर्ण-शोषक पीड़ा याद।
शान्त चक्र यह किन्तु सन्त तू खोज शान्ति मे मिले अनन्त ;
क्यों दिगन्त मे कोई भटके हृदय-प्रान्त मे रहते सन्त।
नगर-निवासी! इस मद माते यन्त्र-दुर्ग पर तू मत फूल,
समझ शूल सम इन यन्त्रो को धनिकों के धन में मत भूल।
चढते धन का मोह धनिक का खोजे शासन का सहयोग,
भोग सदा पशु-बल का साधक पाप भरा है यन्त्रोद्योग।
भारत वालो! होश सँभालो सदा चलाओ सब मधु-चक्र ;
बढा आरहा है वह देखो बुद्धि-वाद का दुर्दम नक्र।
बुद्धि-वाद के दम्भ-दैत्य ने किये मृत्यु के आविष्कार ;
निठुर यन्त्र-व्यापार नाश का तीव्र धार के ये हथियार।
ये शैतानी यन्त्र भयकर जिनका स्रष्टा है विज्ञान,
अरे मनुज! नादान उसे ही तू न मान सर्वज्ञ भगवान।
निज मति को सर्वज्ञ समझ कर क्यों करता नर! भीषण भूल?
शूल बिछाता क्यो निज पथ मे, क्यों नयनों मे भरता धूल?
अति अपूर्ण को पूर्ण मान कर नर विनाश-गह्वर मत खोद,
हाय! गोद मे साप पाल कर मान रहा रे अन्धे मोद।
विविध यन्त्र ये जिन्हें देख कर फूल गया है तेरा गर्व ;
शक्ति-पर्व तू इन्हें समझता यही पतन का कारण सर्व।

मृत्यु-यन्त्र की सृष्टि आसुरी रचकर स्वय किया सुख चूर्ण ;
यह प्रमाण ही स्पष्ट बताता मानव ! तेरी बुद्धि अपूर्ण ।
जो अपनी सुख-शान्ति नशावे उस मति-गति का क्या विश्वास ?
प्रीति-लता में गर्व-गरल जो सींचे उससे कैसी आस ?
बुद्धि रूप-मद-बौरी गौरी तीखी है इसकी दृग-धार ,
कर मे इसके तर्क-युक्ति की चमक रही विषभुजी कटार ।
दभ-वारुणी पीकर तो यह मृत्यु-त्रास का करे विकास ;
नाग-पाश सी श्वास घोट कर मानवता का करे विनाश ।
जड़ यन्त्रों के गुणाकार से प्रभु-प्रदत्त मानव-तन-यन्त्र ,
चूसा जाकर सूख रहा है वसुधा के तल पर सर्वत्र ।
यन्त्रासुर को पाल पोपके खिला-पिला कर घर का माल ,
सब देशों ने स्वय बसाया अपने अपने घरमे काल कराल ।
जब था दानव-पशु यह शिशु सा इसकी गति पर रीझे लोग ;
विविध देह-उद्योग छोड़ कर इस पर चढकर भोगे भोग ।
सहस्र अश्व सा वेगवान पशु पाकर फूला मानव-गर्व ,
दभ-यान पर चढ कर भूला भूलो सुमति नशे मे सर्व ।
खेल खेल मे झट यौवन में पहुँचा यन्त्रासुर विकराल ,
दानव-पशु का रूप देख अब बिगड गया है नर का हाल ।
उदर-कन्दरा में भर कर सब क्षिति के विभव शान्ति सुख-साज;
मॉग रहा है भूखा दानव नर का तन-जीवन भी आज ।
यन्त्र-दैत्य ये पश्चिम वाले लिये कन्दरा जैसा पेट ,
कोटि जनों का भोजन-वैभव इनकी एक दिवस की भेंट ।

ये पश्चिम की दुर्मति-दिति के यन्त्र नामके दानव-पुत्र,
इनने हाहाकार मचाया वसुधा के तल पर सर्वत्र।
जिनकी रसद जुटाने ही मे अति विशाल भारत अरु चीन,
पराधीन धन-धान्य गंवाकर आज हुये है कितने दीन।
सामग्री तो दैत्य लूटते यहाँ शेष रहती है भूख,
कोटि कोटि की शोषित काया यहाँ रही है बिल्कुल सूख।
यदि अब भारत वाले भी यो पालें मति से दानव-यन्त्र
तब तो भूखो मर जायेगा मर्त्य-लोक का मानव-तन्त्र।
हम इतनो की बुद्धि आसुरी यन्त्र जनेंगी जब दुर्दान्त
त्रिभुवन को खाकर भी उनकी भूख नहीं होवेगी शान्त।
यो भी भारत की खातिर तो चरखा ही मंगल-गुन-मन्त्र,
वलि वलि स्नेह-सूत्र का स्रष्टा यही हमारा सात्विक यन्त्र,
यन्त्रासुर से थकके जगके सभी राष्ट्र है सुरझे म्लान;
भटके रहे अब मरु मे प्यासे खोज रहे है नखलिस्तान।
प्रेम-चक्र ही प्यासे नर को देगा सञ्जीवन मधु-दान,
पुण्य-पान सा चक्र-गान ही नर-रोगी का उचित निदान।
देह-यज्ञ का चिन्ह मांगलिक प्रेमोद्यम का पुण्य प्रतीक,
मधुर परिश्रम-धर्म-चक्र से पडे धरा पर रस की लीक।
एक दिवस संसार गहेगा सारा चरखे का हथियार;
गान्धी ने है दिया विश्व को यज्ञ-चक्र का नव उपहार।
यज्ञ-परिश्रम रहित खाद्य सब है चोरी का भरे विकार,
प्रेम चक्र से जडता मिटती मिलता भोजन का अधिकार।

पारस-मणि तो काम-धेनु तो कृष्ण-वेणु या सुरसरि-धार ।
कल्प-वृक्ष सञ्जीवन-लतिका मगल की प्रतिमा साकार ।
यह भारत की चक्र-धारिणी अमर भारती पुण्य स्वरूप ।
है गान्धी की लोक-तारिणी हृदय-हारिणी देवि अनूप ।
विश्व-तन्त्र को गान्धी-युग की बहुत बड़ी चरखे की देन ,
चैन-बाँसुरी बजे इसी से शान्ति-वैन विकसें दिन रैन ।
प्रभु-प्रकाश से परिचालित है भव-विकाश का सुन्दर चक्र ,
और चीज का जिक्र व्यर्थ है किसे तक्र का होवे फख्र ?
राव-रंक हित कोटि अक्र का बुद्धि सरीखा सूत महीन ;
काते जो प्रभु-चक्र मनोहर उसे खोज रे नर स्वाधीन ।
बुरे ग्रहों से फैल रहे है मानव-शुभ के शोपक यन्त्र ।
मित्र-चक्र सम रुज-शोपक अरु जीवन-पोपक चरखा-मन्त्र ।
अरे आधुनिक शिक्षित बाबू ! दुर्बल ऐनकधारी क्लीव ,
भीरु आलसी गलित भोग-रत मूर्त श्वेत-शोषण के जीव ।
ओज हीन तू दीन स्वार्थ-वश पशु नवीन रस-वीर्य-विहीन ,
क्षीन हृदय आधीन सभी का काम-भोग-पकिल-सरि-मीन ।
श्वेत-राज्य के मुन्शी पुर्जे । कायर तेरा स्वार्थ-विलास ,
मृतालस्य आराम नाम का प्रति-दिन कसे दास्य का पाश ।
बना यही आलस्य तुम्हारा राज्य-नौकरी का अनुराग ,
और यही आलस्य-रस सींचे दास्य-अर्क—विटपो का बाग ।
अरे अभागे ! चक्रोद्यम पर हँसकर हाथ हिलाना सीख ।
भली मान की रूखी रोटी भली न वैभव की भी भीख ।

श्रम-गौरव के शुष्क-धान मे निहित आत्म-रस का नवनीत ;
किन्तु कामना-खिचडी मे है घृत सा स्वार्थ-पक विपरीत ।
इसी पाप मय राग-पक को रस समझे तू यह है भूल ,
कूल नहीं, यह कीच फिसलना फूल नहीं, यह तो है शूल ।
खिचडी मे बस दसनोद्यम का नहीं चबाने का कुछ काम ,
इसी लाभ की खातिर क्या तू युवक बना है दृग्या गलाम ?
चक्र चला उठ, चक्रोद्यम से तुझे मिलेगा प्रेमादर्श ,
स्पर्श-लाभ अमिताभ सत्य का स्वालोक का सात्विक हर्ष ।
चले भगीरथ चक्रोद्यम-रथ, निकले निमल त्रिपथगा-धार ;
पीले, उसका श्रम-रस प्रागान अवगाहन कर जन्म सुधार ।
कर्म-चक्र से दूर रहेंगे गलित आलसी याचक देश ,
कर्म-भूमि इस भारत का तो कर्म-चक्र ही शुभ सन्देश ।
उद्यम ही से मिले स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर सकता क्लीब ;
उस तरुणी को तनिक न भावे भीरु आलसी भिक्षुक जीव ।
इसीलिये गान्धी है देते जागृत चक्रोद्यम-उपदेश ,
पुरुष सिंह उद्योगी नर ही सफल करे निज भाग्यावेश ।
अगर कहो रोटी के बदले देते हम तो उद्यम-दान ;
हमे मान का त्राण न चहिये हम याचक सहले अपमान ।
तो भय्या तुम सडो नरक मे उसी योग्य तुम आलस्य-दास ,
रौरव-कीट न कभी समझता गौरव-उद्यम-मान-प्रकाश
कभी नहीं मिलती भिक्षुक को—आजादी जैसी बख्शीश ,
उसको वे रण-दूलह पावें धरें हथेली पर जो शीश ।

विश्व-विभव-गौरव से भारी तुलती यह शीषों के तोल ;
फणि-पति की प्राणाधिक मणि सी प्राण सहस्रों इसका मोल।
आज़ादी है क्षत्रिय-बाला उसे वरे वह क्षत्रिय-वीर ;
जो नर-नाहर बाहर झूमे फिरे खोजता रण-सरि-तीर।
जब सुपात्र रण-कुशल तरुण वर लग्न-योग्य हो वीर-कुमार ;
स्वयं वरे आज़ादी बाला डाल गले मे मुक्ता-हार।
क्रान्ति-चक्र का चालक क्षत्रिय कर्म-वीर योद्धा रण-धीर,
योग्य-पात्र है विजय-उषाका बालारुण सा तरुण गभीर।
आजादी की गौरव-हलचल जीवित जागृति है साकार ;
चरखा उसका मर्म-स्थल है कर्म-धर्म का पुण्याधार।
जब भारत को उद्यम प्रिय था थे हम अति समृद्ध सजीव ;
भरी परिश्रम चक्रोद्यम से थी मजबूत हमारी नींव।
गुरु-गृह में श्रम काता करते नृप-कुमार सुन्दर सुकुमार ;
राव रक सब साम्य-भाव से सीखा करते पुण्याचार।
इन्धन लाते भिक्षा खाते सभी तरुण करते सब काम ;
तन-मन-वाणी के सब उद्यम करते ये निशि-दिन अविराम।
शस्त्र शास्त्र नय सदाचार की शिक्षा पूरी करके वीर ;
भरत-भूमि के नागर बनते तरुण ब्रह्म-चारी रण-धीर।
तभी सुदामा कृष्ण पार्थ से था भारत में सुवर्ण-विहान ;
तान-तान में अणु-अणु मे था जीवित गौरव-गान महान।
चक्रोद्यम से हीन आज हम हुये आलसी पतित अधीन ;
श्रम मे हम को लज्जा आती अतः दास हैं विभव-विहीन ;

गर्व दर्प शोषण वैभव अरु भोग रहित यह चर्खोद्योग :
है याज्ञिक का शम-दम-साधन कर्म-यज्ञ का शुभ संयोग।
प्रति आहूति सूत्र-यज्ञ की करती दीन-बन्धु की तृप्ति
घट-घट-वासी दरिद्र-प्रभु की यज्ञ-यज्ञ ही सच्ची भक्ति।
मिले प्रीति-हवि याज्ञिक-कवि को तृप्त रहे विभु दलिताधार
तथा तार प्रत्येक सूत्र का धरता रोटी का आकार।
जगहित रवि-कवि किरण-कला सी चक्र-कला गान्धी की दिव्य,
वधिक पतित अरु गणिका सब की तारक पारस-मणिका भव्य।
सेवे जितना स्वच्छ भाव से देगी उतना अधिक प्रभाव,
प्रभा-वायु सा कुसुम-सुरभि सा इसका प्राणद शुद्ध स्वभाव।
चक्र चलावे खादी पहने सीखे गुण-गहने का साज,
वेश्या को भी लाभ मिलेगा लाज चढे बदले आवाज।
चरखे की पँखुरी पँखुरी पर साम्य-सूत्र संवेदन प्यार,
स्वर्गिक लिपि में लिखा हुआ है अर्थ-शास्त्र का सारा सार।

रुक न सके गति चक्र प्रेमका
पूजेगा इसको संसार,
चक्रोद्यम ही करे एक दिन
ग्रामोन्नति का पुनरुद्धार। ११२

———

यह कल कंठी विहग स्वर्ग का बैठा अजिर-सरोवर तीर ;
मधुर गीत का श्रौत बहा है कूज रहा है चरखा कीर ।
खींच चितेरे ! दीन-हृदय के करुण पुण्य-आङ्गण का चित्र ,
जिसे कामदा चक्र-धेनु ने नित्य रंभाकर किया पवित्र ।
चित्रकार ! श्रद्धा-तूली से प्रीति-पीर को दे आकार ;
हृदय-चक्र के करुण तार को कात चित्र-पट पर अविकार ,
ओ गायक ! निज हृदय-गीत में भरदे जीवन का संगीत ;
वेणु-चक्र से गाकर दिखला प्रीति-रीति से भरा अतीत ।
करुण-कसक से भरा हुआ है यह तेरा उर-चक्र शितार ,
हृदय-चीरती पीर अलापे तार-तार के ये उद्गार ।
गायक इतनी आर्द्र हुई क्यों तेरी हृद तन्त्री की तान ?
दीन-अजिर के नयन-चक्र से शायद किया सुधा-रस-पान ?
देख दरिद्र के नयन-चक्र मे सूख चुका है रस का श्रोत्र ,
व्यथा-गर्त वह गहरा दृग का गायक ! तुझे रहा है न्योत ।
महा क्षुधा के अग्नि-गीत की चिनगारी हों झनकार ,
खींच ज्वाल-लयकार चक्र के इक तारे से नव लय-तार ।
ओ कलकंठी मधुर अलापी ! व्यापी घर-घर भव-भय-तान ,
चक्र-गान से अरुण उषा सी आशा-सखि का खींचो ध्यान ।
हे लय चक्र-विधायक गायक स्वर-झरि-नायक भावुक वीर ;
हृदय-माधुरी के उन्नायक रागो जीवन-दायक नीर ।

ग्राम-अजिर के मरु में स्वर गुरु । नहीं एक भी तरु की छाँह ;
नहीं सरोवर, भरा वहाँ तो क्षुधा दाह का अग्नि-प्रवाह ।
हे प्रवीण ! उर चक्र-वीण के तार-तार से झंकृत मल्हार ,
जो दरिद्रता वालू में कुछ बरसें जीवन-मेघ फुहार ।
अब तो गायक ! राग हृदय से केवल चक्र-मेघ का राग ,
आग बुझेगी तभी वासुरी करे वासुरी से अनुराग ।
कवि ! गान्धी के प्रेम चक्र की छवि की महिमा अमित अपार
रवि मण्डल का प्रतिनिधि मानो विधि ने भेजा चक्राकार ।
हृदय-चक्र पर काते गान्धी आजादी-खादी के तार ,
उसी प्रीति के महा थान की देखो फली अमर बहार ।
महा थान यह वृहद व्योम सा दीन बन्धु का है परिधान
ताने कोटि हृदय-भवनो की सूनी छत पर सौम्य वितान ।
मधुर सुधा सा रुचिर उषा सा प्रेम देव सा स्पर्श-प्रभाव
पुण्य समय सा सुद्ध टिकाऊ पावन अव्यय शान्त स्वभाव ।
बापू ! तुमने चरितामृत का बुना बहुत ही बढ़िया थान ,
तभी रुचा माधव को उज्ज्वल यही दिव्य खादी परिधान ।
बुद्ध खिस्त से अमर-पुत्र ही इने गिने कोई दो चार ,
सहस्त्र युगो मे बुन पाये है चरित-वस्त्र ऐसे अविकार ।
सूर्य-चक्र प्रभु स्वय चलावें चरखा उसका छोटा रूप ,
भक्त-राज गान्धी को हरि ने सौंपा यह रवि-चित्र अनूप ।
भारत वालो तुम दिन-मणि को पुण्य-अर्घ्य देते हो नित्य ,
सनियम प्रति दिन पूजो, उतरा आज अवनि पर प्रेमादित्य ।

यह कल कंठी विहग स्वर्ग का बैठा अजिर-सरोवर तीर ;
मधुर गीत का श्रौत बहा है कूज रहा है चरखा कीर ।
खीच चितेरे । दीन-हृदय के करुण पुण्य-आङ्गण का चित्र ,
जिसे कामदा चक्र-धेनु ने नित्य रभाकर किया पवित्र ।
चित्रकार । श्रद्धा-तूली से प्रीति-पीर को दे आकार ;
हृदय-चक्र के करुण तार को कात चित्र-पट पर अविकार ;
ओ गायक । निज हृदय-गीत मे भरदे जीवन का संगीत ,
वेणु-चक्र से गाकर दिखला प्रीति-रीति से भरा अतीत ।
करुण-कसक से भरा हुआ है यह तेरा उर-चक्र शितार ,
हृदय-चीरती पीर अलापे तार-तार के ये उद्गार ।
गायक इतनी आर्द्र हुई क्यों तेरी हृद तन्त्री की तान ?
दीन-अजिर के नयन-चक्र से शायद किया सुधा-रस-पान ?
देख दरिद्र के नयन--चक्र में सूख चूका है रस का श्रोत्र ,
व्यथा-गर्त वह गहरा दृग का गायक । तुझे रहा है न्योत ।
महा क्षुधा के अग्नि-गीत की चिनगारी हों झनकार ,
खीच ज्वाल-लयकार चक्र के इक तारे से नव लय-तार ।
ओ कलकठी मधुर अलापी । व्यापी घर-घर भव-भय-तान ;
चक्र-गान से अरुण उषा सी आशा-सखि का खींचो ध्यान ।
हे लय चक्र-विधायक गायक स्वर-झरि-नायक भावुक वीर ;
हृदय-माधुरी के उन्नायक रागो जीवन-दायक नीर ।

ग्राम-अजिर के मरु मे स्वर-गुरु ! नहीं एक भी तरु की छाँह ,
नहीं सरोवर, भरा वहा तो क्षुधा दाह का अग्नि-प्रवाह ।
हे प्रवीण ! उर चक्र-वीण के तार-तार से झरे मलार ,
जो दरिद्रता वालू मे कुछ वरसें जीवन-मेघ फुहार ।
अव तो गायक ! राग हृदय से केवल चक्र-मेघ का राग ,
आग वुझेगी तभी वासुरी करे वासुरी से अनुराग ।
कवि ! गान्धी के प्रेम चक्र की छवि की महिमा अमित अपार ,
रवि मण्डल का प्रतिनिधि मानो विधिने भेजा चक्राकार ।
हृदय-चक्र पर काते गान्धी आजादी-खादी के तार ;
उसी प्रीति के महा थान की देखो फैली अमर वहार ।
महा थान यह वृहद व्योम सा दीन वन्धु का है परिधान ;
ताने कोटि हृदय-भवनो की सूनी छत पर सौम्य-वितान ।
मधुर सुधा सा रुचिर उषा सा प्रेम देव सा स्पर्श-प्रभाव ,
पुण्य समय सा सुद्ध टिकाऊ पावन अव्यय शान्त स्वभाव ।
वापू ! तुमने चरितामृत का वुना वहुत ही वढिया थान ,
तभी रुचा माधव को उज्ज्वल यही दिव्य खादी परिधान ।
वुद्ध खिस्त से अमर-पुत्र ही इने गिने कोई दो चार ,
सहस्त्र युगो मे वुन पाये है चरित-वस्त्र ऐसे अविकार ।
सूर्य-चक्र प्रभु स्वय चलावें चरखा उसका छोटा रूप ,
भक्त-राज गान्धी को हरि ने सौंपा यह रवि-चित्र अनूप ।
भारत वालो तुम दिन-मणि को पुण्य-अर्घ्य देते हो नित्य ,
सनियम प्रति दिन पूजो, उतरा आज अवनि पर प्रेमादित्य ।

करुणा-वरुणालय का प्रतिनिधि चक्र-कूप यह पुण्य-स्वरूप ;
सात लाख ग्रामों में जब यह खुद जायेगा मधु का कूप ।
फैल जायगी मरु मे आशा प्यासा नहीं रहेगा एक ,
नेक चक्र-चल-सूत्र-धार से होवेगा जीवन-उद्रेक ।
सजे सरोवर देख नगर के तजो तैरने का सब मोह ;
तृष्णा-सरि की लोभ-बाढ का कभी नहीं होता अवरोह ।
निर्जल प्यासे सूख रहे हैं ये जीवन के लाखों बाग ;
इन गाँवों के मरु में भाई बनें कहा से रुचिर तड़ाग ।
गांवों मे जल-चक्र-कूप ही नीरेंगे प्राणों का छोर ;
प्यासे नहीं रहेगे गेही या उनके प्यारे पशु ढोर ।
सदा भोर ही नीर खींचने चक्र चलेंगे पनघट तीर ;
सब गाँवो की पीर हरेगी यही प्रेम-पनघट की भीर ;
रहट-चक्र के चालक माली कोई कोई याज्ञिक-वीर ;
भरें कूप पर हौज यज्ञ के खींचें पर-हित खातिर नीर ।
जब यह शुचि जल-धारा नीरें छिति पर करे प्रेमकी केलि ,
स्नेह-शील की फुलवारी मे खिले कला-क्यारी की बेली ।
हे बापू ! मधु-चक्र रावरा नव वसन्त का चिर सन्देश ;
सुधी-मधुप इस रस-निवेश को देख रहे निशिदिन अनिमेष ।
ये दृग-तारे हठी हमारे हुये उघारे तजकर लाज ,
टरें न टारे इन्हें मिला है आज चक्र का नव रस-साज ।
प्रेम-गगन में बापू । तेरे चन्द्र-चक्र का रास-विलास ;
लखकर आवे नहीं नयन तल और दूसरा कला-प्रकाश ।

चन्द्र-चक्र के आगे जगके तारक दीपक अरु खद्योत,
नयन-कुमुद को फीके लगते ये उद्योत के सारे श्रोत।
लखे चक्र के प्रभा-झकोरे पीये सुरस-कटोरे आज,
ये मधु-चौरे नयन निगोरे भूलगये औरे रस-साज।
मुग्ध हुये मधु-चक्र लखें सब कला-भ्रमर कवि वर शालीन,
बापू। तेरे प्रेम-चक्र का मैं तो चारण ढाढी दीन।
तेरे पावन प्रेम-चक्र का पीकर एक बिन्दु मकरन्द,
प्रेमानन्द पगा मन-मधुकर रहे न चञ्चल यह मतिमन्द।
चाह नहीं है अन्य सुमन की पाकर चक्र-चमन की राह;
तृष्णा-दाह तजे उर-मधुकर पाया है रसभरा प्रवाह।
बापू। तेरे प्रेम-चक्र का वृहद वृत है सूत्राकार,
स्नेह-तार के शुचि घेरे मे कोटि हृदय पावें रस-सार,
तव मधु-चक्र-वृत के वासी कोटि जनो में से प्रत्येक,
रहे मध्य मे प्रीति-केन्द्र के घिरा रहे अपनो से नेक।
तेरे मधुमय मलय-चक्र के विनय-प्रेम का गुञ्जन-गान;
प्राण-क्षीर के मन्थन से जो निशि-दिन करे सुधा-सन्धान।
तव ज्योतिर्मय प्रेम-चक्र को लख कर मुझसा तेज विहीन,
अधम दीन भी हो जाता है तनिक आत्म निर्भर स्वाधीन।
बापू। तव मधु-चक्र-चरित का मुझसा पतित करे जब ध्यान;
अरे तपोधन। ऊँचा होवे मन का प्रेम-पान-रुचि-मान।
जब सुनता हूँ दूर खड़ा भी तेरे प्रेम-चक्र की तान,
हृदय शिहर उठता है बापू। सुन कर ऐसा अद्भुत गान।

जब लखता हूँ दूरी से भी तेरे चरित-चक्र का तेज ;
तथा बिछी दिखती जब तेरी जलते अगारों की सेज ।
स्तब्ध हृदय भौंचक रह जाता नयनों में छा जाती चौन्ध ।
बोध न रहता अन्य वस्तु का होता मानो वृति-निरोध ।
कहाँ सत्य का महा सूर्य वह पाया जिससे इतना तेज ?
बता कौन से महा केन्द्र से इतना तप-बल लिया सहेज ?
किस नन्दन के किन कुसुमों से यह मधु-चक्र रचा रस-राज ?
अरे आज तक सुना न देखा ज्योति-किरण के मधु का साज ।
जब लखताहू चरित-चक्र की विद्युतगति का अद्भुत वेग ,
स्नेह-सूत्र को देख हृदय में भर जाते बहुविधि आवेग ।
सजल मेघ से प्रेम-चक्र की तार-धार मे झरता प्यार ,
कृषक हृदय- उद्गार तुम्हे ही खोज रहे है प्राणाधार ।
तेरे चरण-चक्र का चारण धारण करे पदाब्ज-पराग ,
राग रोग का करे निवारण तारण-तरण चक्र का राग ।
जब साखी के चरण-चरण मे व्यापे चरण-चक्र की धूरि ;
चारण का भी मोह हरण हो पाकर दिव्य दृगाञ्जन-मूरि ।
गाथा गाकर पुण्य-चरण की करे सफल निज चारण-नाम ;
चरण-शरण जो गहे मरण तक धन्य वही चारण शुभ काम ।
चारण का यह चक्र-गीत है जन-जन तारण-तरण उदार ,
ताप हरण सुख शान्ति करण है करे आमरण भरण सुधार ।
चक्र-विरुद के उच्चारण से तर जावे तू चारण दीन ,
इस उद्धारण-उदाहरण से चौंक पड़े कवि-मणि शालीन ।

भक्ति-भाव से करता जा तू टूटा-फूटा शब्दोच्चार ;
रसागार मधु-चक्र स्वय ही कर देगा तेरा उद्धार।
प्रेम-चक्र यह गान्धीजी का चिर वहार का है अवतार,
भक्ति भरे निज हरे हार का चरण-चक्र मे धर उपहार।
हीर-हार के पहले होवे तेरे तन्दुल का स्वीकार,
सूत्र-गीत की इस साखी को चरण-धूरि का हो आधार।
इस मिट्टी के अरघे से भी अर्घ्य रक का हो स्वीकार ;
कैसी कविता प्रतिमा कैसी तरे करे जो पाद पखार।
चखे न कवि। यदि तेरी रसना सुरसरि सा पद-चक्र पखार ;
तव तो कविता कला माधुरी व्यङ्ग्य-चातुरी है निस्सार।
धन्य कल्पना-भ्रमरी तेरी लखे प्रेम-मधु-चक्र-वहार,
गिरा-मालती के कानों मे करे चक्र-गौरव-गुञ्जार।
कला-कोकिला कूजे कवि वर। पाकर चक्र आम की डाल ;
कविता-वाला पूजे लखकर कुसुमाकर का अमर रसाल।
कवि-मणि कविता-कान्त तुम्हारी प्रिया रागिनी रानी आज ;
यदि रसाल-तरु-चक्र पूजले चिर मंगल मय हो ऋतुराज
चक्र-मञ्जरी पर भ्रमरी सी कवि की मुग्धा भ्रमरी वाल ;
हृदय रञ्जिनी सजनी गावे डाल डाल पर गीत रसाल।
मेरी साखी अपढ चारणी क्या जाने मृदु लय-रस-रीति,
चक्र-गीत तुम गाओ कवि-रवि भरदो सुधालोक-सगीत।
लखो महाकवि प्रेम-चक्र-छवि गिरा-रूप दो इसे अनूप,
सुरस-भूप सवेदन-मसि लो प्रतिमा तूली पुण्य स्वरूप।

रचो छन्द के पटपर कविवर चक्र गीत का स्वर्गिक चित्र ;
तेरी कविता कला कुशलता हो जावेगी परम पवित्र ।
कवि-सविता तव कविता-बनिता प्रभा-लता ललिता हो धन्य ,
सुर-सरिता सी चरण-कमल को छूकर प्राप्त करेगी पुण्य ।
कवि-विधु तू तो हृदय-चक्र पर प्रीति-चान्दनी कविता कात ,
रात रावरी प्राप्त करेगी स्वर्ग-विभा का रस अवदात ।

हे कवि । काव्य-चक्र मे कातो सर्वोदय का सूत ललाम ,
पूर्ण काम हो विश्व-बन्धुता तुम्हे कर्म ही हो विश्राम ।
हों विवेक के शब्द सलोने प्रेमभाव के छन्द अमन्द ,
कातो कविवर । हृदय-चक्र से मुक्त-काव्य का परमानन्द ।
वर्ण-वर्ण मे प्रेम-पीर हो चरण-चरण मे शुचि दृग-नीर ,
हे कवि । तेरी कविता पहने रूचिर छन्द-सूतों का चीर ।
संस्कृति शील कला की शोभा तथा सूक्ति-सौष्ठव-शृङ्गार ,
अलकार सुकुमार गुणों से खिले स्वजनि का योवन-भार ।
बैठ भारती के मन्दिर मे गाओ भक्ति-शक्ति-सगीत ,
चक्र-गीत की लय मे लाओ भारत का हेमाभ अतीत ।
चारण-कुल-चूडा मणि । गाओ राष्ट्र-चक्र का गौरव-गीत ,
अरुण-चूड से जगो जगाओ, लाओ लय मे शक्ति-प्रतीति ।

सत्य-काव्य के अग्नि-चक्र से कातो चिनगारी के तार ;
भीति-भार भारत का अजरे विखरे नव विप्लव की धार ।
कला कहाँ की शिला सरीखी शाखी मेरी रही कठोर ;
चरण-चक्र को छूकर पर यह हुई अहल्या विमला और ।

बापू! यह है रूखी साखी नहीं काव्य-रस का नव नीत,
गिरातीत तव प्रेम-चक्र का कहाँ मिले इसमे सगीत।
पर दरिद्र-नारायण का है बापू तेरा चक्र प्रतीक,
गुह-शबरी की कुटियों मे यह प्रति दिन होता रहे शरीक।
सूखी रोटी रूखे तन्दुल शाक-पात या जूठे बेर
इसे दीन के भाव भरे ये भोजन रूचते साँझ-सवेर।
राज-भोग पर्यङ्क त्याग कर रुचे रक का सूखा बान,
अवनगे का चक्र बुने यह खद्दर का रूखा परिधान।
मेरी रूखी साखी को है तेरे इसी भाव का तोप,
तेरा विकसित चरित-चक्र है हरा भरा नव रस का कोप।
शाक विदुर का अमर हुआ है पाकर प्रभु-पद-कृपा-प्रसाद;
सदा भिल्लिनी के बेरो पर न्योछावर है स्वर्गिक स्वाद।
मेरी रूखी साखी मे है नाम रावरा रस-नवनीत,
इस बबूल की झाडी मे भी तू तो है मधु-चक्र पुनीत।
मेरी साखी भी है बापू! छूकर पद-मधु-चक्र पुनीत,
क्यों न कहावेगी बड भागिन तेरे प्रेम-चक्र का गीत?
यदि मेरे प्रोत्साहन हित भी कहदे कोई ज्ञानी मीत—
'सुनो भई गाया है इसने भक्ति सहित चरखे का गीत'।
मेरा लघु आयास सफल हो खिले आस फूले विश्वास,
त्रास कटे उर-प्यास मिटेगी तेरे दीन चरणो का दास।
पहिले तो मधु-चक्र-मेघ तव शोपे अमित दृगो का नीर,
गूँज गरज कर मधु बरसे फिर हरे कोटि अजिरो की भीर।

घन जलधर के सजल चक्र का प्रेम नूर लख कर रस-पूर ;
पीहू की पुन रुक्ति करे बस नाच नाच कर मुदित मयूर ,
मन भावन सावन-घन बरसे पावन जीवन भरी फुहार ,
हृदय-चक्र की गति-विहार से करे प्रेम पावस साकार ।
घटा-चक्र की छटा देख कर लूटे प्रेम-नृत्य क पुण्य ,
भक्ति-चक्र-माला सी फेरे पीहू ध्वनि से शिखिनी धन्य ।
प्रेम-लास के रस-विलास में मुग्ध बर्हिणी रमे विभोर ,
उमडे भावा वेश हृदय में प्रेम घटा घुमड़े ज्यो घोर ।
चाहे रसिक सराहें उसको अथवा समझें कला विहीन ;
किन्तु निबाहे भाव-चक्र-लय पीहू-ध्वनि से के की दीन ।
क्रान्ति-दामिनी कौन्धे रह-रह पावस-विप्लव भरे प्रमोद ,
प्रेम-मेघ के घटा-चक्र से हरी भरी हो क्षिति की गोद ।

जब निदाघ का बाघ दभ मे घर घर भरे त्रास का ताप ,
तव पावस के रस प्रताप का क्रान्ति-चक्र हरता सन्ताप ।
जय बादल, जय क्रान्ति-दामिनी, मधुर चक्र की धन रस-रीत ,
धन्य बर्हिणी चक्र-चारिणी गावे सजल विरुद के गीत ।

चक्र-चारिणी चरण-विरुद की पावे तरण-तारिणी धूरि ;
ताप-हारिणी मोद-कारिणी धर्म-धारिणी जीवन-भूरि ।
हों विपरीत कुरीति नष्ट सब, बढ़ें प्रतीति प्रीति-नवनीत ,
अजिर अजिर में गूजे जिस दिन मधुर प्रेम-चक्र का गीत ।
हरे हृदय के प्रेम-चक्र का चरखे सा प्रतिनिधि साकार ;
मिला तभी से गान्धी जी ने किया उसे प्रिय प्राणाधार ।

गान्धी जी का हृदय-राग मृदु अरु चरखे का गुञ्जन-गीत,
दोनो मिलकर एक हुये हैं छिडा मुक्त स्वर्गिक सगीत।
ब्रह्म-सूत्र यह सरल स्पष्ट मृदु कहीं न आवश्यक है भाष्य,
चक्र सूत्र के भय से भागे अन्तर वाहिर का सव दास्य।
एक शब्द 'कातो' मे आता त्रिविध समुन्नति का सन्देश,
यश-नरेश गान्धी हैं देते इसी सूत्र का मन्त्रादेश।
इस कातो मे खींच लिया है गान्धी ने जीवन का इत्र,
यह पवित्र मधु-मन्त्र तेज का अपरिग्रह का मगल-चित्र।
शान्ति आत्म-गौरव से पूरी विनय शिष्ठता शील विवेक,
चरखा कातो, चक्र-यज्ञ से तुम्हे मिलेंगे सुगुण अनेक।
प्रभु अनिद्र का रुद्र रूप है सहस्र सूर्य सा भीपण उग्र,
वहुत भयकर फिर भी शकर डोलें लखकर लोक समग्र।
भूमि-भार भव-भय का हर्त्ता है भर्त्ता का ताण्डव नृत्य,
अग्नि-चरित से हरे दुरित को तेजोमय का जगमग कृत्य।
त्यो उर-नीर-विहारी हरि का शान्त मधुर शाश्वत सुख-रूप,
विश्व-विकासकने धारा है चिर वसन्त सा सरस अनूप।
गान्धी के सत्याग्रह के भी ऐसे ही हैं दो आकार,
एक उग्र अरु क्रान्ति पूर्ण जो दर्प-तिमिर का है प्रतिकार।
तथा दूसरी रचनात्मक छवि शान्त मधुर शुभ सुन्दर स्निग्ध,
पर दोनो मे निहित एक ही नित्य सत्य का आग्रह शुद्ध।

एक प्रेम का मुखर रूप है तथा दूसरा मौन प्रकार ;
पर दोनों में परम प्रेम की आभा ही का भरा प्रसार ।
एक शुष्क पत्तो का पतझड़ तथा दूसरा चिर ऋतुराज ;
झड़ें एक से विश्व-कलुष-दल, वह देता शाश्वत मधु-साज ।
झाड़ पोंछ कर प्रथम प्रभञ्जन पतझड़ करे पात्र तय्यार ;
क्रान्ति-युद्ध से शुद्ध क्षेत्र मे भरता ऋतु पति सुरभि-बहार ।
कलुष-महिष-कलि-दर्प-मर्दिनी क्रान्ति-भैरवी दुर्गा उग्र ;
शक्ति कराली काली चंडी भीमा सिंहवाहिनी व्यग्र ।
किन्तु वही है शिव की गौरी शैल-वासिनी शोभा-केलि ;
चिर मंगल-गणपति की जननी वन-विहारिणी रमणी-वेलि ।
काली दुर्गा अथवा गौरी शक्ति-धार की एक बहार ,
वेष-भेद बाहर से दिखता घटना क्रम अवसर अनुसार ।
अब गान्धी की क्रान्ति-कालि का धार चुकी थी गौरी-रूप ;
रचा राष्ट्र-रचना हित सखि ने रुचिर शान्त शुभ वेष अनूप ।
प्रेम-चक्र-मानस की धारा लगी मिटाने छूआछूत ,
आर्य-कीर्ति अस्पृश्य-कलुष से होने तनिक लगी थी पूत ।
गान्धी—मानस उद्गम-स्थल से बहती पुण्य-त्रिवेणी-धार ;
जीवन-सलिला सुरसरि-खादी ऐक्य-धार अरु दलितोद्धार ।
'गान्धी' के सन्यस्त हृदय ने तजा गृहस्थो का उपवीत ;
इन्हीं तीन तारों का पहना दिव्य जनेऊ परम पुनीत ।

त्रिविध शक्ति-धर विधि-हरि-हर का मन्त्र हरे यह भारत-ताप ;
बापू खाते पीते चलते इसी ॐ का करते जाप।

मनुज-देह के तमस-गेह में
प्रभु-चरणो का चन्द्रालोक ;
तीन लोक के तम मे प्रभु का
लीला-चक्र हरे सब शोक। १२०

श्री गान्धी-मानस
(पूर्वार्द्ध)
समाप्त